3

सुविख्यात सांसद
मोनोग्राफ सीरीज

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी

H
923.254
MUK-b

LOK SABHA SECRETARIAT

(Library, Reference, Research, Documentation and Information Service)

PARLIAMENT LIBRARY

This book will be on display upto........3-8-90.........

Call No. 923.254 H MUK-b   Acc. No. RC81281 (1)

This book may please be returned to the Library on or before the date last noted.

29 FEB 2012		
01 NOV 2016		

सुविख्यात सांसद
मोनोग्राफ सीरीज़

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1990

एल एस एस (पी०आर०आई०एस०—एल०सी०) / ई०पी०एम० / 3

© 1990 प्रतिलिप्याधिकार लोक सभा सचिवालय

जून, 1990

H
923.254
MUK-b

मूल्य : 30 रुपये

PARLIAMENT LIBRARY
Central Govts. Publications
Acc. No. RC....81281(1)
Date..........16/7/1990

लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम (सातवां संस्करण) के नियम 382 के अन्तर्गत प्रकाशित और प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, फोटोलिथो यूनिट, मिंटो रोड, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

आमुख

सुविख्यात सांसदों को श्रद्धांजलि अर्पित करने, स्मरण करने तथा हमारे राष्ट्रीय और संसदीय जीवन में उनके योगदान को स्मरण करने तथा लेखबद्ध करने की दृष्टि से भारतीय संसदीय ग्रुप कुछ समय से अपने कुछ प्रख्यात सांसदों की जन्म ~~शताब्दि~~ वर्षगांठ मनाता आ रहा है। इस सम्बन्ध में 'सुविख्यात सांसद मोनोग्राफ सीरीज़' के नाम से एक नई सीरीज़ मार्च, 1990 में डा० राम मनोहर लोहिया सम्बन्धी मोनोग्राफ से प्रारम्भ की गई थी। वर्तमान मोनोग्राफ — जो इस सीरीज़ का तीसरा मोनोग्राफ है, महान सांसद डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी द्वारा की गई सेवाओं और योगदान को स्मरण करने का प्रयास मात्र है।

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी जैसे अनुभवी सांसद की जन्म ~~शताब्दि~~ वर्षगांठ मनाने के लिए 6 जुलाई 1990 को एक समारोह का आयोजन किया जा रहा है और इस अवसर पर प्रकाशित किए जाने वाले वर्तमान मोनोग्राफ के हिन्दी और अंग्रेजी संस्करण का विमोचन किया जाएगा।

इस मोनोग्राफ के तीन भाग हैं। प्रथम भाग में डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी का संक्षिप्त जीवन परिचय है जिसमें उनके घटनापूर्ण जीवन की कुछ झलक दी गई है। द्वितीय भाग में चार लेख हैं—प्रथम लेख प्रोफेसर बलराज मधोक का है जो कि एक भूतपूर्व सांसद हैं तथा डा० मुखर्जी के बहुत निकट सहयोगी रहे हैं; द्वितीय लेख प्रोफेसर हीरेन मुखर्जी का है जो हमारे प्रारम्भिक संसदीय जीवन के विख्यात सांसद रहे हैं तथा डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी के समकालीन हैं, जिन्होंने विचारधारा में मतभेद होने के बावजूद इस 'महान जनप्रतिनिधि और सांसद' को अपना नमन किया है; तीसरा लेख चौधरी रणबीर सिंह ने लिखा है जो संविधान सभा और संसद के भूतपूर्व सदस्य थे और जिन्हें डा० मुखर्जी के सहयोगी के रूप में उन्हें निकट से समझने का अवसर मिला था तथा चौथा लेख विख्यात पत्रकार श्री के० आर० मलकानी का है जो इस समय दीनदयाल रिसर्च इन्स्टीट्यूट से सम्बद्ध हैं। इन अमूल्य लेखों के लिए, हम उनके, अत्यधिक आभारी हैं।

भाग तीन में डा० मुखर्जी द्वारा संविधान सभा, अस्थायी संसद तथा प्रथम लोक सभा में दिये गये चुने हुए भाषणों के अंश सम्मिलित किए गए हैं, जो उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले तथा तुरन्त पश्चात् राष्ट्र की समस्याओं पर वाद-विवाद के दौरान भाग लेते समय दिये थे। भाषणों का सम्पादन करते समय सम्भावित सीमा तक उनकी अद्वितीय शैली को सुरक्षित रखने का पूरा प्रयास किया गया है।

जन्म शताब्दी के अवसर पर हम डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी की स्मृति में उन्हें सादर श्रृद्धांजलि अर्पित करते हैं तथा आशा करते हैं कि इस मोनोग्राफ को रुचिपूर्वक पढ़ा जायेगा और यह उपयोगी सिद्ध होगा।

सुभाष काश्यप,
महासचिव, लोक सभा
और
महासचिव,
भारतीय संसदीय ग्रुप।

नई दिल्ली;
जून, 1990

विषय सूची

भाग एक

उनका जीवन

1

डा॰ श्यामा प्रसाद मुखर्जी : जीवन वृत्त

(3)

भाग दो

लेख

2

डा॰ मुखर्जी और कश्मीर:

प्रो॰ बलराज मधोक

(17)

3

डा॰ श्यामा प्रसाद मुखर्जी : कुछ संस्मरण

चौ॰ रणबीर सिंह

(25)

4

डा॰ श्यामा प्रसाद मुखर्जी की स्मृति में:

हिरेन मुखर्जी

(28)

5

डा॰ श्यामा प्रसाद मुखर्जी
महानता से जिया गया एक महान जीवन
के॰ आर॰ मलकानी

(33)

भाग तीन

उनके विचार

संविधान सभा/अंतरिम संसद/लोक सभा में
डा॰ मुखर्जी द्वारा दिये गए कुछ चुनींदा
भाषणों से उद्धरण

6

संविधान सभा : इसका गठन और स्वरूप

(41)

7

हिन्दी राष्ट्र भाषा के रूप में
(48)

8

भारत तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति

(55)

9

निवारक नजरबन्दी

(62)

10

हिन्दू कोड बिल

(80)

11

भाषाई राज्य

(94)

12

कश्मीर समस्या

(102)

13

पाकिस्तान और भारत के मध्य
आप्रवासियों की आवाजाही

(116)

14

भारत की विदेश नीति

(140)

15

चुनाव सुधार

(149)

16

सिविल सेवक तथा कतिपय संगठनों
के साथ उनकी सहबद्धता

(153)

17

उद्योगपति तथा आपूर्ति मंत्री के रूप में
डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी द्वारा अपना त्यागपत्र देने पर
उनके द्वारा दिया गया वक्तव्य

(159)

भाग—एक
जीवन वृत्त

1

डा॰ श्यामा प्रसाद मुखर्जी : जीवन वृत्त

स्वतंत्र प्रभुतासम्पन्न भारत के निर्माताओं में से एक डा॰ श्यामा प्रसाद मुखर्जी थे जो एक महान देशभक्त, शिक्षाविद्, संसदविज्ञ, राजनेता, मानवतावादी और इन सबसे ऊपर राष्ट्रीय एकता और अखंडता के समर्थक थे। 6 जुलाई, 1901 को कलकत्ता में जन्मे श्यामा प्रसाद को विद्धत्ता, राष्ट्रीयता की भावना और निर्भयता अपने पिता श्री आशुतोष मुखर्जी से विरासत में प्राप्त हुई थी। जिनका कलकत्ता विश्वविद्यालय के उप-कुलपति और कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होने के नाते बंगाल में एक विशिष्ट स्थान था। उनकी माता श्रीमती जोगमाया देवी एक श्रृद्धामयी हिन्दू महिला थी जो अपने पति, परिवार और धर्म के प्रति पूर्णतः समर्पित थी। उच्च ब्राह्मण परिवार होने और समाज में ऊंचा स्थान प्राप्त होने के कारण मुखर्जी परिवार का घर भवानीपुर, कलकत्ता में जहां एक ओर "पूजा-भाव" के लिए प्रसिद्ध था वहीं दूसरी ओर उसे सरस्वति का मंदिर भी माना जाता था।

युवा श्यामा प्रसाद का लालन-पालन एक ऐसे वातावरण में हुआ था जहां उन्हें पूजा, अनुष्ठानों, धार्मिक कृत्यों और उत्सवों को देखने का सौभाग्य तथा अपने पिता और भारत के सभी भागों एवं विदेशों से आये महान विद्वानों के बीच अद्यतन और वैज्ञानिक विषयों पर हुई चर्चा को सुनने का सौभाग्य प्राप्त था। वास्तव में, इससे उनमें भारत की पुरातन संस्कृति के प्रति गहरी आस्था और पाश्चात्य विचारों और ज्ञान के प्रति लगाव पैदा हुआ। श्यामा प्रसाद के जीवन की विशेषता यह है कि उनमें हिन्दुओं के आध्यात्मवाद, सहनशीलता और मानवीयता गुणों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं गहरी समझ के साथ सुन्दर समन्वय हो गया था। यह विशेषता शिक्षाविद् और संसदविद के रूप में उनके पूरे जीवन में परिलक्षित होती रही।

उनकी शिक्षा

श्यामा प्रसाद ने अपनी स्कूली शिक्षा मित्तर इन्स्टीट्यूट, भवानीपुर से ग्रहण की जिसकी

स्थापना श्री विश्वेश्वर मित्तर ने विशेषकर उनके पिता श्री अशुतोष की प्रेरणा से की थी। सर अशुतोष के वात्सल्यपूर्ण संरक्षण में प्राप्त घर एवं विद्यालय में दिये गये उचित प्रशिक्षण से श्यामा प्रसाद के जन्मजात गुण एवं प्रतिभा उत्तरोत्तर निखरती गई। विद्यालय स्तर पर ही उन्होंने एफ॰ ए॰ और बी॰ ए॰ के पाठ्यक्रमों के लिए निर्धारित पुस्तकों को पढ़ लिया था। उनके पिता उन्हें अक्सर कलकत्ता विश्वविद्यालय ले जाया करते थे जहां उन्हें विश्वविद्यालय के प्राध्यपकों के साथ विचारों के आदान-प्रदान का अवसर प्राप्त होता था।

सोलह वर्ष की आयु में उन्होंने मित्तर इन्स्टीट्यूट से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की जिसमें उन्हें छात्रवृति प्राप्त हुई और प्रजीडेंसी कालेज, कलकत्ता में प्रवेश प्राप्त किया। वर्ष 1919 में उन्हें इंटर आर्ट्स की परीक्षा में विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ और 1921 में अंग्रेजी में बी॰ए॰ आनर्स की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। परन्तु राष्ट्रीयता की उद्दात्त भावना ने श्यामा प्रसाद को एम॰ए॰ में अंग्रेजी विषय लेने से रोक दिया। इसलिए एम॰ ए॰ में अंग्रेजी के स्थान पर भारतीय भाषायें — बंगला और एक अन्य भारतीय भाषा लेकर उन्होंने वर्ष 1923 में एम॰ ए॰ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। एम॰ ए॰ में उन्होने एक भारतीय भाषा अपने पिता की इस नीति के अनुसरण में ली थी कि बंगला और अन्य भारतीय भाषाओं को विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा में उचित स्थान प्राप्त हो, क्योंकि तब तक विश्वविद्यालय स्तर पर केवल अंग्रेजी का प्रभुत्व था। अप्रैल, 1922 में जब वह एम॰ ए॰ कर रहे थे, उनका विवाह सुधा देवी से हुआ जिन्होंने चार बच्चों को जन्म देकर 1934 में स्वर्ग सिधारा। श्यामा प्रसाद उस समय केवल 33 वर्ष के थें, फिर भी उन्होंने पुनर्विवाह न करने का निर्णय लिया।

विश्वविद्यालय में एक मेधावी विद्यार्थी के रूप में उनकी ख्याति फैल गई थी और इसी कारण उन्हें प्रेजीडेंसी कालेज पत्रिका का महासचिव नियुक्त किया गया जोकि युवा श्यामा प्रसाद के लिए बहुत बड़ा सम्मान था। कालेज पत्रिका का सम्पादक होने के नाते उन्हें अपने को अभिव्यक्त करने और कुछ समय के लिए पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने 1922 में एक बंगाली पत्रिका ''बंग वाणी'' प्रारम्भ की और 1923-24 में उन्होंने पेट लावेल द्वारा ''डिच'' उप छद्म नाम से सम्पादित पत्रिका ''केपिटल'' के लिए नियमित रूप से लेख भी लिखे। प्रारम्भ में पत्रकारिता के प्रति उनका संबंध थोड़े समय ही रहा था किन्तु उन्होंने पांचवे दशक में पुनः पत्रकारिता का कार्य प्रारम्भ किया और उन्होंने कलकता से अपना ''द नेशनलिस्ट'' नामक दैनिक समाचार पत्र निकालना आरम्भ किया।

वर्ष 1924 में उन्होंने बी॰ एल॰ उत्तीर्ण किया और इस परीक्षा में भी विश्वविद्यालय में प्रथम रहे। उन्होंने डी॰ लिट और एल॰एल॰डी॰ की उपाधियां भी प्राप्त कीं। 1926 में वह

लिंकन्स इन (इंग्लैंड) में कार्य करने लगे थे किन्तु 1927 में उन्हें वहां से "इंग्लिस बार" में बुला लिया गया। किन्तु उन्होंने वकालत नहीं की। इंग्लैंड में रहते हुए उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के विश्वविद्यालयों के सम्मेलन में कलकत्ता विश्वविद्यालय का बखूबी प्रतिनिधित्व किया और तब से ही उनकी गिनती भारत के शीर्षस्थ शिक्षाविदों में की जाने लगी।

सबसे कम आयु के कुलपति

विद्यार्थी जीवन से ही वह कलकत्ता विश्वविद्यालय का कामकाज देखने में अपने पिता की सहायता करते रहे थे। किन्तु 1923 में अपने पिता की मृत्यु के बाद तो वह विद्यार्थी होते हुए भी शिक्षा के क्षेत्र में उतर आये। कुलपति के रूप में अपने पिता की शिक्षा योजनाओं और नीतियों की उन्हें गहरी समझ थी। 1924 में वह विश्वविद्यालय सीनेट और सिंडीकेट के लिए चुने गये और उन्होंने बंगाल विधान परिषद में कांग्रेस के उम्मीदवार के रूप में कलकत्ता विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व किया। 1930 में जब कांग्रेस ने विधान मंडलों का बहिष्कार करने का निर्णय किया तो उन्होंने विधान परिषद से त्यागपत्र दे दिया परन्तु शीघ्र ही अपने विश्वविद्यालय के हितों की रक्षा के लिए स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में पुनः विधान परिषद के सदस्य बन गये किन्तु उनका मुख्य कार्य शिक्षा क्षेत्र की सेवा करना ही रहा।

1934 में श्यामा प्रसाद कलकत्ता विश्वविद्यालय के सबसे कम आयु के कुलपति बने और इससे उन्हें अपने देशवासियों की शिक्षा के संबंध में अपने उद्देश्यों और आदर्शों को साकार बनाने का अवसर प्राप्त हो गया। कुलपति के रूप में उनके कार्यकाल के दौरान रविन्द्र नाथ टैगोर ने दीक्षांत समारोह में बंगला में भाषण दिया और इसके साथ ही बंगला और अन्य भारतीय भाषाओं पर अंग्रेजी के प्रभुत्व का युग समाप्त हो गया।

एक राष्ट्रवादी के रूप में

भारत सरकार अधिनियम 1935 के प्रांतीय भाग को वर्ष 1937 में लागू किये जाने और प्रांतीय विधान मंडलों के लिए चुनावों से देश में स्थिति ने एक नया मोड़ लिया। वह विश्वविद्यालय निर्वाचन क्षेत्र से पुनः बंगाल विधान मंडल में सदस्य बने और इससे उन्हें प्रांतीय स्वायत्ता के कार्यकरण का निकट से अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। 250 सदस्यों के सदन में हिन्दुओं को केवल 80 स्थान दिये गये थे जिन पर अधिकतर कांग्रेस पार्टी के लोग निर्वाचित होकर आये थे। शेष सदस्य मुस्लिम और ब्रिटिश हितों की रक्षार्थ थे। मुस्लिम सदस्य मुस्लिम लीग और कृषक प्रजा पार्टी में बंटे हुए थे। यदि कांग्रेस पार्टी ने कृषक प्रजा पार्टी के साथ मिलका सरकार बना ली होती तो

बंगाल में मुस्लिम लीग के बिना ही स्थायी सरकार बन जाती। विधान मंडल में और उससे बाहर कांग्रेस इस स्थिति से जिस ढंग से निपटी उसने श्यामा प्रसाद को कांग्रेस की नीतियों और राजनैतिक विचारधारा के संबंध में नये सिरे से विचार करने के लिए मजबूर कर दिया।

अपनी सरकार बनाते हुए मुस्लिम लीग ने शैक्षिक ढांचे पर, जिसे उनके पिता और स्वयं उन्होंने बड़ी लगन से तैयार किया था, प्रहार करने का निर्णय लिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्पष्ट और महत्वपूर्ण राष्ट्रीय हितों की अनदेखी करके मुस्लिम लीग के साथ समझौता करने की नीति उनकी सहज राष्ट्रवादी भावना के प्रतिकूल थी और इसी कारण उन की अंतरात्मा ने उन्हें सक्रिय बना दिया। जब वह कांग्रेस नेताओं को इस बात के लिए मनाने में सफल न हुए कि मुस्लिम लीग को पूरी अवधि तक सत्ता में न रहने दिया जाये तो उन्होंने अकेले ही मुस्लिम लीग सरकार को गिराने का प्रयास करने का निर्णय किया। उन्होंने विधान मंडल में सभी गैर-कांग्रेस हिन्दू ताकतों को एक जुट किया और कृषक प्रजा पार्टी से मिलकर फजल-उल-हक के नेतृत्व में प्रगतिशील संयुक्त सरकार बनायी जिसमें वे स्वयं वित्त मंत्री बने। इस प्रयास से वे एक व्यावहारिक और दूरदर्शी राजनेता के रूप में प्रतिष्ठित हो गये।

इसी अवधि के दौरान, वीर सावरकर की प्रेरणा से वह हिन्दू महासभा में शामिल हुए और उन्होंने इसे राष्ट्र विरोधी ताकतों को पराजित करने का साधन बनाया। इसके तुरंत बाद 1939 में वह इसके कार्यवाहक अध्यक्ष बने और घोषणा की कि हिन्दू महासभा का राजनैतिक लक्ष्य भारत को पूर्ण स्वाधीनता दिलाना है। महात्मा गांधी ने उनके हिन्दू महासभा में शामिल होने का स्वागत किया क्योंकि गांधी जी यह मानते थे कि मालवीय जी के बाद हिन्दुओं का मार्गदर्शन करने के लिये किसी योग्य व्यक्ति की जरूरत थी। गांधी जी श्यामा प्रसाद के पूर्ण राष्ट्रीयतावादी दृष्टिकोण से प्रभावित थे और बताया जाता है कि उन्होंने श्यामा प्रसाद जी से यह कहा भी था कि ''पटेल हिन्दू समर्थक विचार धारा वाले कांग्रेसी हैं आप कांग्रेस की विचारधारा सहित हिन्दू सभा के सदस्य बने रहें।''

1943 में, श्यामप्रसाद ने पुलिस और सामान्य प्रशासन में प्रान्तीय सरकार के कामकाज में गवर्नर और नौकरशाही द्वारा किए गए हस्तक्षेप के विरोध में बंगाल मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया और बहुप्रचारित प्रांतीय स्वायत्ता को 'हास्यापद' बताया। मंत्रिपद ठुकराने के उनके तरीके से यह साफ जाहिर हो गया कि किसी भी प्रकार का प्रलोभन उन जैसे व्यक्ति को अपने कर्त्तव्य-पथ से डिगा नहीं सकता। लार्ड लिनलिथगो के साथ हुए उनके पत्र व्यवहार, जिसमें उन्होंने बन्दी नेताओं को रिहा करने, जनता पर विश्वास करने और जापान की धमकी का सामना करने के लिए नेशनल डिफेंस फोर्स

तैयार करने का आग्रह किया था, अपने आप में इस बात का सबूत है कि वह राष्ट्रीय हितों के प्रति दृढ़ता से समर्पित होते हुए भी दूसरों को अपनी बात मनवाने का प्रयास करते थे।

मानवतावादी के रूप में

1943 में बंगाल में पड़े अकाल के दौरान श्यामा प्रसाद का मानवतावादी पक्ष निखर कर सामने आया, जिसे बंगाल के लोग कभी भुला नहीं सकते। भले ही उनमें से कुछ को उनकी राजनीति पसंद नहीं थी। बंगाल पर आए संकट की ओर देश का ध्यान आकर्षित करने के लिए और अकाल-ग्रस्त लोगों के लिए व्यापक पैमाने पर राहत जुटाने के लिए उन्होंने प्रमुख राजनेताओं, व्यापारियों समाजसेवी व्यक्तियों को जरूरतमंद और पीड़ितों को राहत पहुंचाने के उपाय खोजने के लिए आमंत्रित किया। फलस्वरूप बंगाल राहत समिति गठित की गई और हिन्दू महासभा राहत समिति भी बना दी गई। श्यामा प्रसाद इन दोनों ही संगठनों के लिए प्रेरणा के स्रोत थे। लोगों से धन देने की उनकी अपील का देश-भर में इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि बड़ी-बड़ी राशियां इस प्रयोनार्थ आनी शुरू हो गईं। इस बात का श्रेय उन्हीं को जाता है कि पूरा देश एकजुट होकर राहत देने में लग गया और लाखों लोग मौत के मुँह में जाने से बच गए।

वह केवल मौखिक सहानुभूति प्रकट नहीं करते थे बल्कि ऐसे व्यावहारिक सुझाव भी देते थे, जिनमें सहृदय मानव-हृदय की झलक मिलती जो मानव पीड़ा को हरने के लिए सदैव लालायित और तत्पर रहता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उन्होंने संसद में एक बार कहा था: "अब हमें 40 रु० प्रतिदिन मिलते हैं, पता नहीं भविष्य में लोक सभा के सदस्यों के भत्ते क्या होंगे। हमें स्वेच्छा से इस दैनिक भत्ते में 10 रुपए प्रतिदिन की कटौती करनी चाहिए और इस कटौती से प्राप्त धन को हमें इन महिलाओं और बच्चों (अकाल ग्रस्त क्षेत्रों के) के रहने के लिए मकान बनाने और खाने-पीने की व्यवस्था करने के लिए रख देना चाहिए।"

अखंड भारत के लिए संघर्षशील व्यक्ति के रूप में

क्रिप्स प्रस्ताव, जिसमें पहली बार धर्म के आधार पर भारत के विभाजन के सिद्धांत को स्वीकार किया गया था, को अस्वीकार कर दिए जाने के कारण अधिकतर कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया था और इसी से मुस्लिम लीग को ढुलमुल मुस्लिमों का दिल जीतकर स्वयं को उनकी बात कहने वाली संस्था के रूप में स्थापित करने का उपयुक्त अवसर मिल गया। देश के विभाजन की मांग पर दृढ़ मुस्लिम लोग ने प्रांतीय विधानमंडलों के चुनाव इसी मुद्दे को लेकर लड़ने का निर्णय

किया परिणामतः चुनाव में मुस्लिम लीग को सिंध, पंजाब और बंगाल में स्पष्ट बहुमत मिल गया जिसके कारण मुस्लिम लीग विभाजन की मांग को अधिक जोरदार ढंग से करने लगी।

श्री सी० राजगोपालाचारी द्वारा तैयार की गई योजना जिसे 'सी०आर० फार्मूला' नाम से जाना जाता है, में देश के विभाजन को व्यावहारिक रूप से स्वीकार कर लिया गया था। श्यामा प्रसाद की राय में यह बड़ी खतरनाक और भारी चिंता का विषय था। उन्होंने देश के विभाजन के विरुद्ध देशव्यापी अभियान छेड़ा। उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि ब्रिटिश केबिनेट मिशन ने, जिसके समक्ष वह देश-विभाजन के विरुद्ध बोल रहे थे, उनके सामने कांग्रेस कार्यकारी समिति का वह पूरा-संकल्प रखा, जिसमें कहा गया था कि कांग्रेस ऐसे किसी भी पक्ष के साथ जोर-जबरदस्ती नहीं करेगी, जो भारत में रहने का इच्छुक न हो। उन्होंने वर्ष 1946 के चुनावों में कांग्रेस का इसलिए समर्थन किया था; क्योंकि सरदार पटेल ने उनहें यह विश्वास दिलाया था कि कांग्रेस कभी भी विभाजन को स्वीकार नहीं करेगी। उन्हें तब तक यह पता ही नहीं चला था, कि कांग्रेस कार्यकारी समिति पहले ही मुस्लिम प्रांतों को भारत से अलग होने के अधिकार को मान चुकी है।

तत्पश्चात्, श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने भारत के हितों की सुरक्षा के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दी। उनके बंगाल विभाजन के बारे में तर्कसंगत और प्रभावी विचारों को शीघ्र ही समस्त बंगाली हिन्दु जगत का भरपूर समर्थन मिला। कुछ भागों में विरोध के बावजूद पाकिस्तान बनने की मांग मान लिए जाने की स्थिति में बंगाल विभाजन की मांग इतनी जोर पकड़ गई कि ब्रिटिश सरकार, कांग्रेस और मुस्लिम लीग के लिए इसका सामना करना असंभव हो गया। अतः उनके प्रयासों से आधा पंजाब और आधा बंगाल, भारत के लिए बचाया जा सका। उनकी यह उक्ति उनके प्रत्युत्तर की भावना को स्पष्ट करती है—"कांग्रेस ने भारत का विभाजन किया है और मैंने पाकिस्तान का विभाजन किया है।"

एक मंत्री के रूप में

अगस्त, 1947 में गांधी जी ने श्यामा प्रसाद को प्रथम राष्ट्रीय सरकार में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया। उनहोंने इस आशा के साथ यह आमंत्रण स्वीकार किया कि वह स्वतंत्र भारत की नीतियों को, इसके आरंभिक चरण में ही प्रभावित कर सकेंगे और करोड़ों ऐसे हिन्दुओं के हितों की रक्षा कर सकेंगे, जो अपनी इच्छा के विरुद्ध पाकिस्तान में ही छूट गए थे। उनको उद्योग और पूर्ति मंत्रालय का प्रभारी मंत्री बनाना ही उनकी निष्ठा और देश के महत्वपूर्ण औद्योगिक और आर्थिक समस्याओं को समझने की उनकी शक्ति पर पूरा-पूरा विश्वास करना था।

केन्द्रीय मंत्रिमंडल में, उद्योग और पूर्ति मंत्री होने के नाते, उन्होंने देश में तीन विशाल औद्योगिक उपक्रमों अर्थात् चितरंजन लोकोमोटिव फैक्ट्रीज, सिंदरी, उर्वरक निगम और हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट्स फैक्टरी, बंगलौर की स्थापना करके देश के औद्योगिक विकास की मजबूत आधार शिला रख दी थी। वह प्रत्येक योजना को, जनहित में इसकी उपयोगिता और व्यवहारिता के आधार पर आंकते थे, और इस संबंध में वह किसी भी हठधर्मिता या विचार से बंधे हुए नहीं थे।

नीति संबंधी प्रमुख मामलों में, विशेषकर पाकिस्तान के मामले में, पंडित नेहरू के साथ उनके मतभेद प्रारंभ में ही उभर कर सामने आ गए। शरणार्थियों के प्रति उनका मन इतना दुःखी हुआ कि वह शारीरिक रूप से उस दौरान बहुत कमजोर हो गए जब पाकिस्तानियों द्वारा पूर्वी बंगाल के शांतिप्रिय हिन्दुओं का कत्लेआम किया जाना जारी था। जब उन्होंने पाया कि पंडित नेहरू उनकी इस सलाह को नहीं मान रहे कि सरदार पटेल की पाकिस्तान संबंधी इस मांग को स्वीकार किया जाए कि पूर्वी पाकिस्तान से भारत में आए हिन्दुओं की, पाकिस्तान में रह़ गई जमीन के बराबर भूमि की पाकिस्तान से मांग की जाए तथा इन शरणार्थियों के पुनर्वास के लिए पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं और इन अभागे शरणार्थियों को पाकिस्तान में उनकी छूटी हुई सम्पत्ति की एवज में संतोजषजनक मुआवजा प्रदान किया जाए तो नेहरू की नीतियों से उनके मतभेद और बढ़ गए। वह नेहरू के साथ इन मतभेदों को विवाद के स्तर तक ले जाने में भी नहीं हिचके। वर्ष 1950 में हुए नेहरू-लियाकत समझौते से यह मतभेद चर्मसीमा तक पहुँच गए। इस समझौते पर हस्ताक्षर को न होने देने से न रोक पाने के कारण, उन्होंने मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया और सरकार के बाहर रहते हुए नेहरू की नीतियों के विरुद्ध विपक्ष को संगठित किया। इसका असर हुआ और नेहरू-लियाकत समझौते के मूल मसौदे में विधान सभाओं और सेवाओं में मुसलमानों के लिए आरक्षण की जो व्यवस्था की जा रही थी। उसे संशोधित कर इन प्रावधानों को समाप्त कर दिया गया।

दिनांक, 19 अप्रैल, 1950 को संसद में अपने त्यागपत्र के बारे में उन्होंने जो वक्तव्य दिया, वह भारत-पाक संबंधों के बारे में एक गरिमायुक्त और भावात्मक दस्तावेज है। नेहरू-लियाकत समझौते से किसी भी समस्या का हल क्यों नहीं होगा, इसके बारे में उन्होंने 1950 में ही जो कारण बताए थे, वे आज भी उतने ही सत्य हैं।

जनसंघ के संस्थापक

मंत्रिमंडल से हटने के पश्चात् श्यामा प्रसाद ने अपनी शक्ति एक ऐसा राजनैतिक मंच तैयार करने के लिए लगाई, जहां से वे अपने विचारों और नीतियों से लोगों को अवगत करा सकें। हिन्दू महासभा वह पहले ही छोड़ चुके थे, क्योंकि महासभा ने उनके इस

सुझाव को अस्वीकार कर दिया था कि इसे अपने दरवाजे जाति और नस्ल का विचार किए बिना सभी भारतीयों के लिए खोल देने चाहिए।

श्यामा प्रसाद ने विपक्ष में एक नए राष्ट्रीय नेतृत्व का सृजन करने का निश्चय किया। उनके प्रयासों के फलस्वरूप, अक्तूबर, 1950 में अखिल भारतीय जनसंघ की विधिवत स्थापना हुई। उन्हें इस नए संगठन का प्रथम अखिल भारतीय अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। जनसंघ को देश में राष्ट्रीय शक्तियों के एक प्रमुख संगठन के रूप में देखने की उनकी इच्छा थी और वे चाहते थे कि इसका आधार इतना व्यापक हो कि यह सभी को साथ लेकर एक राजनैतिक संगठन बनने में सक्षम हो सके। इसके दरवाजे उन सभी नागरिकों के लिए खुले हों, जिनकी ..रत तथा इसकी महान संस्कृति और विरासत के प्रति पूरी निष्ठा हो।

नए दल की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए उनहोंने कहा थाः कांग्रेस शासन में तानाशाही का एक मुख्य कारण, सुव्यवस्थित रूप से संगठित ऐसे विपक्षी दलों का अस्तित्व में न होना है, जो सत्ता दल पर प्रभावी ढंग से अंकुश रख सके और देश के सामने एक वैकल्पिक सरकार की सम्भावना को उजागर कर सके। श्यामा प्रसाद ने अपना शेष जीवन इस संगठन को तत्कालीन सत्तारूढ़ दल का विकल्प तैयार करने के लिए, अर्पित कर दिया।

एक संसदविद् के रूप में

श्यामा प्रसाद वर्ष, 1952 में हुए प्रथम आम चुनाव में प्रथम लोक सभा के लिए निर्वाचित हुए। हालांकि उनके द्वारा स्थापित दल, जनसंघ के केवल दो ही अन्य सदस्य निर्वाचित हो पाये थे, लेकिन इससे वे निराश होने वाले व्यक्ति नहीं थे। डा० श्यामा प्रसाद विपक्ष के सबसे प्रभावशाली व्यक्ति थे।

उनकी श्रेष्ठता को सभी जानते थे और उनके मित्रों तथा विरोधियों दोनों ने ही इस बात को स्वीकार किया कि भारत की प्रथम निर्वाचित संसद में वे विपक्ष के प्रमुख प्रवक्ता थे। उन्होंने संसद में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक दल का गठन करने हेतु, जिसके वे निर्वाचित नेता थे, उड़ीसा की गणतंत्र परिषद्, पंजाब के अकाली दल, दि हिन्दू महासभा तथा अनेक निर्दलीय सांसदों सहित कई छोटी-छोटी पार्टियों को एक किया। वे सभी उन्हें अपना मुख्य प्रवक्ता मानते थे और इन सभी ने उन्हें विपक्ष की ओर से सभी प्रमुख प्रश्नों का उत्तर देने का अधिकार दिया था। यहां तक कि सत्तारूढ़ दल भी उन्हें विपक्ष का अनौपचारिक नेता के रूप में मानती थी।

राजनेता के रूप में उनकी महत्ता एवं उनकी कुशाग्रता, उनकी संसदीय प्रवीणता तथा

वाकपटुता, देश की समस्याओं के प्रति उनकी गहन सूझबूझ और रचनात्मक दृष्टिकोण तथा संसद के बाहर उनके जनाधार ने उन्हें सरकार का एक मात्र वास्तविक प्रतिद्वंदी बना दिया था। सत्तारूढ़ दल भी संसद के समक्ष आने वाले विषयों एवं समस्याओं के प्रति उनकी गहन सूझबूझ एवं उनके विवेचन के कारण उनका सम्मान करता था। सरकार की नीतियों तथा कार्यों के प्रति उनका सूक्ष्म और मर्मज्ञ परीक्षण तथा सत्तारूढ़ दल के तर्कों का उनके द्वारा सहजता एवं निश्चयता से खण्डन करना अत्यन्त विश्वसनीय प्रतीत होता था।

टाइम्स ऑफ इंडिया द्वारा अत्यन्त उल्लेखनीय श्रद्धांजलि दी गई, इसमें कहा गया कि "डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी सरदार पटेल की प्रतिमूर्ति थे"। यह एक अत्यन्त उपर्युक्त श्रद्धांजलि थी क्योंकि डा० मुखर्जी नेहरू सरकार पर बाहर से उसी प्रकार का संतुलित और नियंत्रित प्रभाव बनाए हुए थे जिस प्रकार का प्रभाव सरकार पर अपने जीवन काल में सरदार पटेल का था। राष्ट्र-विरोधी और एक दलीय शासनपद्धति की सभी नीतियों तथा प्रवृत्तियों के प्रति उनकी रचनात्मक एवं राष्ट्रवादी विचारधारा तथा उनके प्रबुद्ध एवं सुदृढ़ प्रतिरोध ने उन्हें देश में स्वतंत्रता और लोकतंत्र का प्राचीर बना दिया था। संसद में विपक्ष के नेता के रूप में उनकी भूमिका से उन्हें "संसद का शेर" की उपाधि अर्जित हुई।

भारत की एकता के लिए शहीदः इस महान राजनेता और संसद्विद् के संसदीय जीवन में अंतिम कार्य वर्ष, 1953 में संपन्न हुआ। इस समय उनके दिमाग पर अलगाववादी गतिविधियों को समाप्त करने की बात को ध्यान में रखकर जम्मू एवं कश्मीर की समस्या पूरी तरह छायी हुई थी। उन्होंने जम्मू एवं कश्मीर प्रजा परिषद् के मुद्दे पर बातचीत करने का निर्णय किया। जो मांग कर रही थी कि इस राज्य का भारत के साथ पूर्णतः विलय किया जाये और इस पर भी वही संविधान लागू हो जो अन्य राज्यों पर लागू है। वर्ष 1952 में अपने जम्मू दौरे के दौरान उन्होंने एक विशाल जनसमूह की बैठक में घोषणा की "मैं आपको भारतीय संविधान के अंतर्गत लाऊंगा अन्यथा इसके लिए मैं अपना जीवन बलिदान कर दूंगा"। उनके शब्द भविष्यवाणी बने। जम्मू में व्याप्त स्थिति का जायजा लेने हेतु उन्होंने मई 1953 में पुनः जम्मू का दौरा करने का निर्णय किया। उस समय उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। हिंदुओं के प्रति उनका प्यार इतना महान था तथा जम्मू एवं कश्मीर राज्य को भारतीय संघ में शामिल करने के प्रति उनका उत्साह इतना अप्रतिरोध्य था कि वे तुरन्त जम्मू चल दिए जहां उन्हें गिरफ्तार किया गया। वे जेल में गंभीर रूप से बीमार पड़ गए और भारतीय एकता के लिए शहीद हो गए।

उनकी मृत्यु पर श्रद्धांजलि

संसद, राज्य विधान मंडल, प्रेस एवं दलगत भावना से ऊपर उठकर जन नेताओं, दक्षिण-पूर्व एशिया के बौद्ध धर्म मानने वाले देशों के नेताओं और शासकों ने भी उनकी

मृत्यु पर शोक प्रकट किया और इसे महान क्षति बताया तथा इस महान आत्मा को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की जो जीवनपर्यन्त अपनी मातृभूमि की सेवा में समर्पित रहे।

लोक सभा में डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी के अप्रत्याशित निधन पर शौक प्रकट करते हुए तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष श्री जी०वी० मावलंकार ने कहाः—

"....वे हमारे महान देशभक्तों में से एक थे और राष्ट्र के लिए उनकी सेवाएं भी उतनी ही महान थीं। जिस स्थिति में उनका निधन हुआ वह स्थिति बड़ी ही दुखदाई है। यही ईश्व की इच्छा थी और इसमें कोई क्या कर सकता था? ....उनकी योग्यता, उनकी निष्कपटता, अपने कार्यभार को कौशलपूर्वक निभाने की उनकी दक्षता, उनकी वाक्पटुता और सबसे अधिक उनकी देशभक्ति एवं अपने देशवासियों के प्रति उनके प्यार ने उन्हें हमारे सम्मान का हकदार बना दिया।"

* उनके निधन का उल्लेख करते हुए तत्कालीन प्रधान मंत्री और सभा के नेता जवाहर लाल नेहरू ने उनकी मृत्यु की परिस्थितियों का उल्लेख किया और उन्हें अत्यन्त दुर्भाग्य-पूर्ण बताया "उन्होंने डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी को" इस सभा की महाविभूतियों में से एक बताया और उन्हें विपक्ष का एक ऐसा नेता बताया जिसने इस सभा की कार्यवाही में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

विभिन्न मुद्दों पर डा० मुखर्जी के साथ अपनी सहमति और असहमति को स्वीकारते हुए पंडित नेहरू ने कहाः—

"....चाहे हमने एक साथ काम किया अथवा हमारा किसी मुद्दे पर मतभेद रहा, हमने परस्पर एक-दूसरे के प्रति पूरा आदर किया और मतभेद के बावजूद अपने कार्यभार को उसी सम्मान के साथ निभाने का प्रयास किया जो मतभेद के बावजूद किया जाना चाहिए।"

मुझे अनेक वर्षों तक सरकार में डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी के साथ कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और बाद में जब वे सरकार से अलग हो गये तब विपक्ष में....। हम दोनों में कभी-कभी अनेक मुद्दों पर गम्भीर मतभेद होते रहते थे और अनेक मुद्दों पर सहमति भी होती थी। मेरे लिए यह अत्यन्त खेद और दुख का विषय है कि उनके जीवन के आखिरी दिनों में एक अवसर ऐसा आया जब हम दोनों में काफी गम्भीर मतभेद हो गए। तथापि....हम ऐसी प्रतिभा से वंचित हो गए हैं जिसने देश में एक

---

*लो०स० वाद-विवाद, 3 अगस्त, 1953

उल्लेखनीय और महान भूमिका अदा की, लेकिन उनकी असामयिक मृत्यु हो गई। इस तरह हम उनकी सेवाओं से वंचित हो गए।''

स्रोतः

1. मधोक, बलराजः **पोरट्रेट ऑफ ए मार्ट्अ,** बंबई, जैयको पब्लिशिंग हाऊस, 1969
2. सेन, एस०पी० (सम्पादित): **डिक्शनरी ऑफ नेशनल बायोग्राफीज,** खंड-III, कलकत्ता, इन्स्ट्यूट ऑफ हिस्टोरिकल स्टडीज़, 1973।
3. वर्मा, वी०पी० (सम्पादित): **मॉडर्न इंडियन पॉलिटिकल थॉट,** आगरा, एजुकेशनल पब्लिशर्स, 1967।
4. रंगा, एन०जी०: **डिस्टिंग्वीस्ड एक्वेन्टेन्सेज** (हैदराबाद, देशी बुक हाऊस, 1976।
5. **लोक सभा वाद-विवाद** : 3 अगस्त, 1953।

भाग—दो

लेख

[illegible]

[illegible]

[illegible] 1989

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

2

डा० मुखर्जी और कश्मीर

—प्रो० बलराज मधोक*

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी भारत के महानतम विद्वानों, राजनीतिज्ञों तथा सांसदों में से एक थे। उन्होंने हमारे इतिहास के एक बहुत ही नाजुक काल में हमारे राष्ट्रीय जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान किया।

डा० मुखर्जी ने अपना सार्वजनिक जीवन सन् 1934 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में आरंभ किया। वह कलकत्ता विश्वविद्यालय के सब से कम आयु के कुलपति थे और असम, बंगाल और उड़ीसा का सम्पूर्ण क्षेत्र उस समय उस विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आता था। वह नेशनलिस्ट पार्टी और फज्ल-उल-हक की कृषक प्रजा पार्टी की संयुक्त सरकार के निर्माता थे जिसने वर्ष 1940 में मुसलिम लीग को अपदस्थ किया और संयुक्त बंगाल को राष्ट्रीय सरकार दी उन्होंने भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड लिनलिथगो का विरोध करने के लिए वर्ष 1942 में फज्ल-उल-हक मंत्रालय से, जिसमें वह वित्त मंत्री थे, त्यागपत्र दे दिया। लार्ड लिनलिथगों ने भारत छोड़ो आन्दोलन को देखते हुए आतंक फैला रखा था। कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता चूंकि जेलों में बन्द कर दिए गए थे अतः उन कठिन दिनों में राष्ट्रवादी भारत का प्रवक्ता होने का भार डा० मुखर्जी को संभालना पड़ा। वर्ष 1943 के अकृत्तिम दुर्मिक्ष के दौरान बंगाल की दुःखी मानवता के प्रति सेवाओं के कारण उनको राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई और उनको सम्पूर्ण देश के साथ बांध दिया।

डा० मुखर्जी ने तब हिन्दु महासभा का नेतृत्व ग्रहण किया और तथ्यों एवं तर्कों के साथ केबिनेट मिशन के समक्ष संयुक्त भारत की मांग पेश की परंतु जब लार्ड पेथिक लारेंस द्वारा उनको बताया गया कि कांग्रेस अपने पूना संकल्प के द्वारा देश की विभाजन को पहले ही स्वीकार कर चुकी है तो उनके पैरों तले से जमीन ही निकल गई। उस

*प्रो० बलराज मधोक, भूतपूर्व सांसद डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी के निकट सहयोगी थे।

संकल्प के द्वारा यह स्पष्ट घोषणा की गई थी कि कांग्रेस किसी भी ऐसे भाग के साथ जोर-जबरदस्ती नहीं करेगी जो भारत के साथ नहीं मिलना चाहता।

विभाजन की मूल योजना के अनुसार सम्पूर्ण पंजाब और बंगाल पाकिस्तान को दिये जाने थे। डा० मुखर्जी ने तब बंगाल और पंजाब के हिन्दु बहुल क्षेत्रों को बचाने में अपना जोर लगाया। वह उचित रूप से यह कह सकते थे कि "जिन्ना ने भारत का विभाजन किया और मैंने पाकिस्तान का विभाजन किया"।

वह वर्ष 1946 में भारत की संविधान सभा के लिए चुने गये थे और 15 अगस्त, 1947 को गठित हुई प्रथम राष्ट्रीय सरकार में उनको उद्योग तथा वाणिज्य मंत्री बनाया गया। स्वाधीन भारत के प्रारंभिक वर्षों में मंत्री के रूप में उनका योगदान सब को मालूम है। भारत की औद्योगिक नीति की नींव उनके द्वारा ही डाली गई थी।

डा० मुखर्जी के जीवन का अत्यधिक प्रभावी चरण 8 अप्रैल, 1950 को उस समय प्रारंभ हुआ जब उन्होंने पाकिस्तान के प्रति नीति के मामले पर मंत्रि-परिषद् से त्यागपत्र दे दिया। वह स्वतंत्र भारत के मंत्रीमंडल स्तर के प्रथम ऐसे मंत्री थे जिन्होंने नीति के प्रश्न पर कुर्सी का त्याग किया। इस प्रकार उन्होंने संसदीय लोकतंत्र की सर्वोत्तम परम्पराओं के अनुसार कार्य किया और दूसरों के सामने एक अनुसरणीय उदाहरण पेश किया।

सरकार से त्यागपत्र देने के पश्चात् उन्होंने सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी, जिसको सरदार पटेल की मृत्यु के उपरांत पंडित नेहरू द्वारा वामपंथी बनाया जा रहा था, के राष्ट्रवादी और दक्षिणपंथी विकल्प का गठन करने का मार्ग अपनाया। उनके अपने स्वयं के प्रयासों के फलस्वरूप 21 अक्तूबर 1951 को उनके नेतृत्व के अंतर्गत भारतीय जन संघ का गठन हुआ जो देश को उनका सबसे बड़ा उपहार है।

डा० मुखर्जी प्रथम लोक सभा के लिए दक्षिण कलकत्ता से जन संघ के प्रत्याशी के रूप में चुने गए। अपने चुने जाने के एक महीने के भीतर ही उन्होंने जन संघ, हिन्दु महासभा, राम राज्य परिषद्, गणतन्त्र परिषद् और कुछ निर्दलीय लोक सभा सदस्यों को एक सर्वमान्य कार्यक्रम के आधार पर मिला दिया और नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी का गठन किया विचारधारा के आधार पर देश में राजनैतिक शक्तियों के ध्रुवीकरण का यह प्रथम प्रयास था। नेशनल डोमोक्रेटिक पार्टी के अस्तित्व में आने के परिणाम स्वरूप, जो उस समय विपक्ष की सब से बड़ी पार्टी थी, डा० मुखर्जी ने विपक्ष के प्रभावी नेता और पंडित नेहरू के एक सशक्त विकल्प के रूप में अपना स्थान बनाया।

अत्यधिक प्रशासकीय अनुभव एवं संसदीय क्रियाकलापों पर पकड़ वाले एक महान बुद्धिवादी होने के कारण तत्कालीन सत्तापक्ष के सदस्य उनसे भयभीत रहते थे।

सभी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति उनका स्पष्ट दृष्टिकोण था। परंतु जिन समस्याओं की ओर उन्होंने अत्यधिक ध्यान दिया। वह भी जम्मू और काश्मीर राज्य का शेष भारत के साथ विलय, पाकिस्तान में रह गये हिन्दुओं का भाग्य और सीमा पार से आने वाले हिन्दु शरणार्थियों की हालत।

डा० मुखर्जी ने सब से पहले काश्मीर समस्या को उठाया और उसे निपटाने के बाद उनका विचार पूर्वी पाकिस्तान के हिन्दुओं की समस्या को हाथ में लेने का था। परंतु नियति ने तो कुछ और ही रचा हुआ था।

उन्होंने अपने जीवनकाल के अन्तिम 15 महीने जम्मू और काश्मीर राज्य के भारत के साथ विलय की समस्या पर ही मुख्य रूप से लगाये। शेख अब्दुल्ला की पृथकतावादी नीतियां और उनके कारण विशेष रूप से जम्मू तथा लद्दाख के लोगों एवं सामान्य रूप से सभी राष्ट्रवादियों में उत्पन्न रोष ने उनको काश्मीर को प्राथमिकता देने के लिए बाहर किया कश्मीर समस्या के प्रति उनके दृष्टिकोंण तथा राष्ट्रीय एवं तर्कसंगत हल के लिए उनके द्वारा किए गए प्रयासों को इस समय याद करने की आवश्यकता है क्योंकि काश्मीर में स्थिति आज उससे भी अधिक विस्फोटक हो गई है जितनी वर्ष 1952 में थी।

डा० मुखर्जी के साथ मेरा पहला सम्पर्क कश्मीर समस्या को लेकर उस समय हुआ जब जम्मू और कश्मीर प्रजा परिषद् के महामंत्री के रूप में मेरे कार्यों के कारण अब्दुल्ला सरकार द्वारा मुझे जम्मू और कश्मीर राज्य से निकाल दिया गया। जम्मू और कश्मीर प्रजा परिषद् जम्मू और लद्दाख क्षेत्रों के लिए स्वायत्तता के साथ राज्य के भारत के साथ पूर्ण विलय के प्रति आबद्ध थी।

मुझे सरदार पटेल से सहानुभूति भरी प्रतिक्रिया मिली, जिन्होंने मुझे बताया, "बलराज, तुम एक ऐसे व्यक्ति को सहमत कराने का प्रयास कर रहे हो जो पहले से ही सहमत है। परंतु मैं कुछ नहीं कर सकता क्योंकि कश्मीर का मामला पंडित नेहरू ने सीधे अपने नियन्त्रण में रखा हुआ है।" डा० मुखर्जी ही मंत्रीमंडल स्तर के अकेले एक ऐसे मंत्री थे जिन्होंने कश्मीर में कश्मीर की बदलती स्थिति और जम्मू में लोकप्रिय विचारों के प्रति रुचि दिखाई। मंत्रीमंडल से त्यागपत्र देने के उपरांत स्थिति का मौके पर अध्ययन करने की दृष्टि से उन्होंने जम्मू और कश्मीर का दौरा किया। वह शेख अब्दुल्ला, पंडित प्रेम नाथ डोगरा तथा आम लोगों से मिले। अपने अनुभव के आधार पर वह देश की एकता के लिए शेख अब्दुल्ला की नीतियों के खतरनाक पहलुओं और जम्मू तथा लद्दाख के लोगों के लोकतान्त्रिक अधिकारों के बारे में जान गए। अतः उन्होंने संसद के भीतर तथा

बाहर, दोनों स्थानों पर इस समस्या को बड़े जोर शोर से उठाने का निर्णय किया। डा० मुखर्जी ने 26 जून 1952 को लोक सभा में दिये गये अपने भाषण में कश्मीर के बारे में पुनर्विचार करने का जोरदार अनुरोध किया। उन्होंने अपने ऐतिहासिक भाषण के आरंभ में प्रधानमंत्री नेहरू से अपील करते हुए कहा। "उन लोगों के प्रति कुछ सहनशीलता दिखाएं जो कश्मीर संबंधी उनकी नीति के विरोधी हैं। एक दूसरे पर पत्थर फैंकने का कोई लाभ नहीं है। एक दूसरे को साम्प्रदायिक और प्रतिक्रियावादी कहने का कोई लाभ नहीं। उनको यह समझ लेना चाहिये कि कुछ ऐसी बाते हैं जिन पर उनके दृष्टिकोण तथा उस दृष्टिकोण के बीच मूलभूत अन्तर हैं जिसे हम राष्ट्रीय दृष्टिकोण मानते हैं।"

डा० मुखर्जी ने अपने भाषणों में संविधान के इस अनुच्छेद 370 का विस्तार से उल्लेख किया। उन्होंने रियासतों के विलय के इतिहास का उल्लेख किया और बताया कि कैसे पहली ही बार में वे सब तीनों मामलो-रक्षा, विदेश और संचार आदि के संदर्भ में विलय के लिए सहमत हो गए और कैसे सरदार पटेल ने राजा-महाराजाओं को संघीय ढांचे को स्वीकार करने के लिए राजी किया जिसमें सभी इकाइयां प्रत्येक मामले और विषय में समान थीं। तब उन्होंने संविधान सभा में एन० गोपाल स्वामी अयंगर द्वारा अनुच्छेद 370 को संविधान में शामिल किए जाने का प्रस्ताव रखने के समय दिए गए भाषण का विस्तार से उद्धृत किया और पूछाः कश्मीर का भारत में विलय कैसे होगा? क्या कश्मीर एक गणतंत्र के अंदर दूसरा गणतंत्र बनने जा रहा है। क्या हम इस प्रभुत्व संपन्न संसद के अतिरिक्त भारत की सीमा के अंदर एक और प्रभुत्व संपन्न संसद बनाने की सोच रहे हैं", उन्होंने चेतावनी दी "कि आप अगर तूफान से खेलना चाहते हैं और यह कहना चाहते हैं कि हम असमर्थ हैं और शेख अब्दुल्ला को अपनी मनमर्जी करने दें, तब कश्मीर को हम खो देंगे। मैं इस बात को जोर देकर कहना चाहता हूं कि हम कश्मीर को खो देंगे।

डा० मुखर्जी ने तत्पश्चात् भारतीय रियासतों के बारे में सरकार के श्वेत पत्रका उल्लेख किया और बताया कि सरदार पटेल ने बिना किसी विशेषाधिकार के शामिल होने वाले राज्यों के पूर्ण विलय के आधार, पृष्ठभूमि और आवश्यकता के बारे में क्या कहा है, और पूछा कि, "क्या जम्मू और कश्मीर के नागरिक जम्मू और कश्मीर के अतिरिक्त शेष भारत को दिए गए भूलभूत अधिकारों को पाने के हकदार हैं या नहीं? शेख अब्दुल्ला को कश्मीर में राजाओं का राजा किसने बनाया? ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि भारतीय सेना वहां गई थी। क्या हमने ऐसा इसलिए किया था कि हम एक प्रभुत्व सम्पन्न गणतंत्र में एक अन्य प्रभुत्वसम्पन्न गणतंत्र की स्थापना करें? उन्होंने कहा कि एक संघबद्ध इकाई और दूसरी संघबद्ध इकाई के बीच विभिन्न संविधानों और असमानताओं के

लिये कोई जगह नहीं है।

उन्होंने अपने ऐतिहासिक भाषण को एक रचनात्मक सुझाव के साथ समाप्त किया जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना कि वर्ष 1952 में था। सुझाव यह थाः ''प्रधानमंत्री को साफ-साफ कहना चाहिए कि हम इस प्रकार की कश्मीरी राष्ट्रीयता नहीं चाहते हैं। हम इस प्रभुत्व सम्पन्न कश्मीर के विचार को नहीं चाहते हैं। अगर आप कश्मीर के बारे में ऐसा करते हैं तो अन्य रियासते भी ऐसी मांग करेंगी''। समझौते के रूप में उन्होंने सुझाव दिया। अगर शेख अब्दुल्ला कश्मीर के सीमित विलय पर जोर देते हैं तो फिर किसी भी कीमत पर हमें एक योजना बनानी चाहिए जिसके अन्तर्गत जम्मू और लद्दाख के नागरिको को यह स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वह भारत में पूर्ण विलय करें अथवा न करें।

जम्मू और कश्मीर प्रजा परिषद् ने राज्य का भारत के साथ पूर्ण विलय तथा इसके तीन प्रांतों-कश्मीर घाटी, जम्मू और लद्दाख के लिए स्वायत्तता प्रदान करने की अपनी मांग के समर्थन में एक शांतिपूर्ण सत्याग्रह शुरू किया। इसके नेताओं ने मार्ग निर्देश और समर्थन के लिए डा० मुखर्जी से अनुरोध किया।

कोई निर्णय लेने से पहले, उन्होंने प्रधानमंत्री नेहरू और शेख अब्दुल्ला को प्रजा परिषद् की मांग पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के लिए सहमत कराने की कोशिश की। डा० मुखर्जी ने 9 जनवरी से 23 फरवरी, 1953 के बीच इन दोनों के साथ अनेक बार पत्र व्यवहार किये। ये पत्र, जो कि बाद में एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुए, कश्मीर समस्या का यथार्थवादी, राष्ट्रवादी और स्थायी हल ढूंढने में डा० मुखर्जी के सतत प्रयासों का सबसे उत्तम प्रमाणिक रिकार्ड हैं।

डा० मुखर्जी द्वारा अपनाये गये दृष्टिकोण का 3 फरवरी, 1953 को उनके द्वारा पंडित नेहरू को लिखे पत्र से पता चलता है, उन्होंने लिखा था कि 'जम्मू और कश्मीर राज्य का भारत के साथ विलय के मुद्दे को अधर में नहीं छोड़ा जाना चाहिये। इस राज्य का शेष भारत में विलय तथा जम्मू और लद्दाख क्षेत्रों का कश्मीर घाटी में विलय के प्रश्न पर शीघ्रातिशीघ्र अंतिम निर्णय अवश्य लिया जाना चाहिए।

पंडित नेहरू ने सीधा उत्तर देने के बजाय प्रजा परिषद् की निन्दा की तथा इसके दृष्टिकोण को साम्प्रदायिक और विघटनकारी बताया। उन्होंने बताया कि इससे अंतर्राष्ट्रीय जटिलताएं उत्पन्न हो सकती हैं। इससे मजबूर होकर डा० मुखर्जी ने 8 फरवरी को एक और पत्र लिखा जिसमें उन्होंने प्रजा परिषद् की इस मांग का उल्लेख किया कि शेष भारत पर जो संविधान लागू होता है वही संविधान इस पूर्ण राज्य पर भी लागू होना चाहिए और

PARLIAMENT LIBRARY
(Central Govt. Publications)
Acc. No. RC....8/28(1)
Date..........16/7/1990

यह पूछा किः

> ''क्या इस संबंध में कोई बात साम्प्रदायिक अथवा प्रतिक्रियावादी अथवा राष्ट्र-विरोधी है? यदि शेष भारत के लिए भारत का संविधान पर्याप्त है तो यह जम्मू और कश्मीर राज्य को क्यों स्वीकार्य नहीं होना चाहिए?....

यह आश्चर्य की बात है कि शेख अब्दुल्ला और उनके सहयोगियों के पृथकतावादी कदम की आप राष्ट्रवादी और देशभक्ति के रूप में प्रशंसा कर रहे हैं तथा भारत की मौलिक एकता और अखण्डता सुरक्षित रखने और आम भारतीय नागरिक के रूप में रहने संबंधी प्रजा परिषद् की यथार्थ इच्छा को विश्वासघाती की संज्ञा दे रहे हैं।

डा॰ मुखर्जी ने अपने विरुद्ध लगाये गये साम्प्रदायिकता के आरोपों का खण्डन करते हुए पंडित नेहरू से अपील की किः

> ''आप अपने ठण्डे दिमाग से सोचो कि अपने जीवन-काल में भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता का विरोध करने में आपकी असफलता के कैसे भयंकर परिणाम निकले है। शायद आपने और अन्य व्यक्तियों ने किसी बड़े उद्देश्य से रियायत तथा तुष्टिकरण की नीति अपनाई परन्तु अन्त में आपकी अपनी बार-बार की गई घोषणाओं के विपरीत देश दो टुकड़ों में बंट गया। उस समय एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात जो हमारे विरूद्ध सिद्ध हुई एक विदेशी शक्ति का विद्यमान होना था, जो फूट डालो राज करो की नीति के अनुसार कार्य करना चाहती थी। यदि आज हम सतर्क होना तथा पिछली दुःखद गलतियों से बचना चाहते हैं तो हमें ऐसा देश के सर्वोच्च हित में न कि किसी प्रकार के संकीर्ण साम्प्रदायिक उद्देश्यों अथवा धार्मिक कट्टरपन के हितों में ऐसा करना चाहिये।''

पण्डित नेहरू द्वारा राज्य की पूर्ण अखण्डता संबंधी आन्दोलन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली सम्भावित अंतर्राष्ट्रीय जटिलताओं का बार-बार जिक्र किये जाने के संबंध में डा॰ मुकर्जी ने उन्हें उसी पत्र में लिखाः

> ''आज कोई भी व्यक्ति इस बात का दावा नहीं कर सकता कि आपके कश्मीर समस्या के निपटाने के ढंग से हमारी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति बढ़ी है अथवा इससे हमें व्यापक अंतर्राष्ट्रीय समर्थन तथा सहानुभूति प्राप्त हुई है। दूसरी ओर, इस बारे में आपकी नीति के कारण देश तथा विदेश दोनों में समस्याएं बढ़ी हैं। राजनीतिकता के लिये यह अपेक्षित है कि आप इस समूचे मामले की निष्पक्षता से पुनः जांच कराएं और झूठे अंतर्राष्ट्रीयवाद के चक्कर में पड़ने की

बजाए, आप विभिन्न विचारों और हितों के उचित सामंजस्य के आधार पर राष्ट्रीय अखण्डता के लिये सख्ती से परिस्थितियां तैयार करें। यदि आप इस में सफल हो जाते हैं तो इससे अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में आपको अधिक ताकत तथा ख्याति मिलेगी।''

उन्होंने इस हृदयस्पर्शी शब्दों के साथ इस पत्र को समाप्त किया:

''जहां हम कुछ महत्वपूर्ण मामलों पर सहमत नहीं हैं वहीं हम एक ही मां की औलाद हैं और यदि दोनों पक्षों में थोड़ी सद्भावना तथा सहनशीलता प्रदर्शित होती तो हम गम्भीर मतभेद से बच सकते थे।''

जब डा॰ मुखर्जी के पंडित नेहरू को एक यथार्थवादी नीति अपनाने के लिये मनाने के सभी प्रयास असफल हो गए तो उन्होंने उन देशभक्त लोगों के साथ जो राष्ट्रीय एकता के लिये बहुत कष्ट झेल रहे थे। अपनी हमदर्दी दर्शाने के लिये जम्मू का दौरा करने का निर्णय लिया। संसद का बजट सत्र समाप्त होने के तत्काल बाद वह मई के मध्य में दिल्ली से जम्मू के लिये रवाना हुए। ज्योंही उन्होंने रावी पर माधोपुर पुल का आधा रास्ता पार किया, कश्मीर पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उन्हें जम्मू में इसलिये गिरफ्तार किया गया ताकि उन्हें भारत के उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा जा सके। इसके बाद उन्हें श्रीनगर लाया गया और उन्हें वहां से दस मील दूर एक छोटे से काटेज में नजरबंद रखा गया। लोक सभा में उनके साथी बैरिस्टर यू॰एम॰ त्रिवेदी ने श्रीनगर स्थित कश्मीर उच्च न्यायालय में बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर की। न्यायमूर्ति किल्म ने 23 जून को मामले की सुनवाई की। अगले दिन निर्णय दिया जाना था। त्रिवेदी जी को यह विश्वास था कि याचिका स्वीकार कर ली जाएगी तथा डा॰ मुखर्जी को छोड़ दिया जाएगा। उस समय तक डा॰ मुखर्जी को श्रीनगर में सरकारी अस्पताल में स्थानान्तरित कर दिया गया था त्रिवेदी जी न्यायालय से सीधे अस्पताल गये तथा शाम को 7 बजे तक डा॰ मुखर्जी के साथ रहे। उन्होंने उन्हें खूब स्वस्थ तथा प्रसन्नचित्त पाया। त्रिवेदी जी के अपने होटल लौटने के बाद अलीजान नाम के एक डाक्टर ने डा॰ मुखर्जी को एक इन्जेक्शन लगाया। उसका अनर्थकारी असर हुआ। डा॰ मुखर्जी का रात लगभग 11 बजे स्वर्गवास हो गया। कांग्रेस सहित सभी राजनैतिक दलों के नेताओं ने उनकी रहस्मय मृत्यु की न्यायिक जांच कराने की संसद में मांग की। लेकिन पंडित नेहरू ने यह मांग स्वीकार नहीं की। जिसके परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु के संबंध में सच्चाई का सरकारी तौर पर कभी पता नहीं चल सका। तथापि, मैंने उनकी मृत्यु की परिस्थितियों के बारे में श्रीनगर में व्यापक जांच-पड़ताल की। इससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि यह एक स्वाभाविक मृत्यु नहीं थी बल्कि एक डाक्टरी हत्या

थी। मैंने अपनी पुस्तक डा० मुखर्जी की जीवनी "एक शहीद का चित्र" में इस सम्पूर्ण मामले का विस्तृत वर्णन किया है।

इस समय, जब कश्मीर में अलगाववादी तथा विघटनकारी शक्तियों ने तबाही मचायी हुई है तथा राष्ट्रीय एकता के लिए एक वास्तविक खतरा पैदा हो गया है, राष्ट्र द्वारा डा० मुखर्जी को दी जाने वाली सबसे बड़ी श्रद्धांजलि यही हो सकती है कि हम कश्मीर को शेष भारत के साथ मिलाने तथा अन्य संबद्ध मामलों से निपटने के लिए डा० मुखर्जी द्वारा सुझाये गये उपायों पर ध्यान दें।

डा० मुखर्जी विभाजित भारत की आजादी के बाद राष्ट्रीय एकता की राह में प्रथम शहीद थे। उन्होंने कश्मीर का शेष भारत के साथ पूरी तरह विलय कराने के लिए अपना बलिदान दिया। आइये उनके बलिदान को व्यर्थ न जाने दें।

3

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी: कुछ संस्मरण

—चौधरी रणबीर सिंह*

विख्यात स्वतंत्रता सेनानियों में, डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी का नाम एक तारे की भांति दीप्तिमान है। वह अपने जीवनकाल में ही भारत की एकता और अखंडता को अक्षुण बनाने के अपने योगदान के कारण विख्यात हो गए थे। उस असाधारण व्यक्तित्व के साथ व्यतीत किए गए समय में से कुछ क्षणों को याद करने मात्र से एक अद्‌भुत आनन्द की प्राप्ति होती है।

मैं वर्ष 1935 से ही प्रारम्भ करता हूं। इस वर्ष भारत सरकार अधिनियम, 1935 अधिनियमित किया गया था। इस अधिनियम के अंतर्गत भारत को ब्रितानी प्रांतों; रियासतों और दिल्ली जैसे कुछ सीधे प्रशासित क्षेत्रों को मिलाकर एक संघ बनाया जाना था। एक द्विसदनीय संघीय विधानमंडल की स्थापना की जानी थी जिसमें रियासतों को अत्याधिक महत्व प्रदान किया जाना था। ग्यारह ब्रितानी प्रांतों में से केवल चार प्रांतों में, अर्थात् उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत, सिन्ध, पंजाब और बंगाल में मुसलमानों का बाहुल्य था। इस अधिनियम के अंतर्गत 1937 में प्रांतीय असेम्बलियों के लिए चुनाव कराये गए। इन चुनाओं में जिन दलों ने भाग लियां वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, जमींदारी लीग (जिसकी स्थापना सर फजल हुसैन, सर सिंकदर हयात खान और सर छोटू राम ने की थी।) और श्री ए० के० फजल हक की कृषक प्रजा पार्टी ने भाग लिया था। जुलाई 1937 में ग्यारह में से सात प्रांतों में कांग्रेस की सरकारें बनीं। हैरानी की बात यह थी कि मुस्लिम लीग चार मुस्लिम बहुल प्रांतों में से एक में भी बहुमत प्राप्त नहीं कर सकी। बंगाल में मुस्लिम लीग के चुनावी हथकंडों को बेकार करने का सारा श्रेय डा० मुखर्जी को जाता है। उनके प्रयासों से ही श्री ए० के० फजल हक की अध्यक्षता वाली कृषक प्रजा पार्टी बंगाल में सरकार बना सकी थी।

*चौधरी रणबीर सिंह भूतपूर्व संसद सदस्य और डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी के समकालीन हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध (1939), और युद्ध के प्रति भारत के राष्ट्रीय नेताओं का तीव्र विरोध, कांग्रेसी सरकारों द्वारा त्यागपत्र दिया जाना और महात्मा गांधी द्वारा एकता सत्याग्रह के बारे में सभी भली भांति जानते हैं। वर्ष 1940 और उसके बाद की घटनाओं से अविभाजित भारत के राजनैतिक क्षेत्र में विशाद के बादल छा गये। 1940 में मोहम्मद अली जिन्ना की अध्यक्षता में मुस्लिम लीग ने देश का विभाजन करने की मांग करते हुए एक संकल्प पारित किया और बंगाल, पंजाब, सिन्ध और उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत के मुस्लिम अधिसंख्यक क्षेत्रों को मिलाकर 'पाकिस्तान' के नाम से एक अलग राष्ट्र बनाये जाने की मांग की। इस नाजुक मौके पर डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी मुस्लिम लीग के इस कपटपूर्ण षडयंत्र का जोरदार विरोध करने के लिए आगे आये। डा० मुखर्जी द्वारा श्री ए० के० फजल हक को बंगाल में मुस्लिम लीग की सरकार न बनने देने में दिया गया सहयोग और सहायता उस महान देशभक्त का बहुत बड़ा योगदान था। हालांकि बाद में निजामुद्दीन की अध्यक्षता में मुस्लिम लीग अंग्रेजों के सहयोग से बंगाल में सरकार बनाने में सफल हो गई परन्तु डा० मुखर्जी द्वारा विभाजन के कट्टर विरोध में कभी कोई कमी नहीं आई।

1946 में प्रांतीय असेंम्बलियों के चुनाव हुए। मुस्लिम लीग बंगाल और सिंध में सरकार बनाने में सफल हो गई, जबकि अन्य राज्यों में कांग्रेस की सरकार बनी। पंजाब में मिलीजुली सरकार की स्थापना हुई।

मुस्लिम लीग द्वारा की गई सीधी कार्यवाई के परिणामस्वरूप बंगाल, पंजाब और देश के अन्य शहरी क्षेत्रों में हुए दंगों से डा० मुखर्जी अत्यन्त व्यथित हुए। उन्होंने साम्प्रदायिक दंगों की विभीषिका को कम करने के लिए भरपूर प्रयत्न किए।

वर्ष 1947 में ब्रिटिश सरकार द्वारा देश का विभाजन करने का निर्णय इन अप्रिय घटनाओं के लिए और भी दुर्भाग्यपूर्ण रहा। डा० मुखर्जी ने जोकि विभाजन के कट्टर विरोधी थे, जब यह जान लिया कि देश का विभाजन होना अब अपरिहार्य है तो उन्होंने बंगाल और पंजाब की एकता के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दी। यह स्मरणीय है कि मुस्लिम लीग कलकत्ता और लाहौर को पाकिस्तान में मिलाने के लिए कटिबद्ध थी। डा० मुखर्जी अन्य दलों विशेषकर कांग्रेस के नेताओं के सहयोग से कलकत्ता को भारत में ही रहने देने में सफल हुए।

15 अगस्त, 1947 को भारत एक स्वतंत्र देश बना, परन्तु विभाजन का कलंक उस पर लग गया। उसके बाद का समय परीक्षा और कठिनाइयों का था। रजवाड़ों को भारत संघ

में मिलाने का कार्य स्वतंत्र भारत के नेताओं के लिए भारी चिंता का विषय था। दो रजवाड़ों पहला जम्मू और कश्मीर—जोकि क्षेत्रफल के हिसाब से सबसे बड़े राज्यों में से एक था—और दूसरा हैदराबाद—जो जनसंख्या में सबसे बड़ा था स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत पश्चात भारत में मिलने से मना कर दिया।

स्वतंत्र भारत में डा० मुखर्जी द्वारा विभिन्न रूपों में दिया गया योगदान स्वतंता प्राप्ति से पूर्व के दिनों में बंगाल की एकता को अक्षुण्ण बनाए रखने के उनके प्रयासों के समान ही प्रशंसनीय है। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने श्यामा प्रसाद मुखर्जी को अपने मंत्रीमंडल में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया। मुझे भी संसद सदस्य बनने और उनकी कार्यशैली को निकट से देखने का अवसर प्राप्त हुआ। केन्द्रीय सरकार में उद्योग और वाणिज्य मंत्री के रूप में उन्होंने जन नेता के रूप में अपनी दक्षता और कुशलता का पूर्ण परिचय दिया।

अन्य सब बातों के अतिरिक्त, डा० मुखर्जी एक असाधारण सांसद थे। वह संसद में वाद-विवाद में गहरी रुचि लेते थे। मुझे आज भी वह दिन याद है जब मैंने सिंचाई के लिए प्रयोग में आने वाले डीजल इंजनों के मूल्यों पर नियंत्रण लगाने की मांग प्रस्तुत की थी तो उस पर उन्होंने टिप्पणी की कि उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ है कि जो माननीय सदस्य नियंत्रण का विरोध करता रहा है और नियंत्रण मुक्त अर्थव्यवस्था का पक्षधर रहा है वही आज डीजल इंजन के मूल्यों पर नियंत्रण की बात कर रहा है। दरअसल मैंने किसानों के हित में खाद्यान्नों पर नियंत्रण के विरुद्ध बोलने का कोई भी अवसर नहीं खोया था।

अथक परिश्रमी डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी अपनी बातों के धनी थे। उनके साहसिक कार्यों के अद्वितीय उदाहरण हैं। वह अनुच्छेद 370 और जम्मू और कश्मीर में बिना पूर्वानुमति के प्रवेश न करने जैसे अन्य प्रतिबंधों के विरुद्ध थे। वह जम्मू और काश्मीर राज्य के भारत में पूर्ण विलय के पक्षधर थे। सरकार से त्यागपत्र देने के पश्चात् उन्होंने भारतीय जनसंघ की स्थापना की और उसके पहले अध्यक्ष बने। लोक सभा में विपक्ष के नेता के रूप में वह स्पष्टवादी और दूसरों को निरूत्तर कर देने वाले व्यक्ति थे। वह अपनी टिप्पणियों के प्रति प्रतिकूल टिप्पणियां विशेषकर पंडित नेहरू से आमंत्रित किया करते थे जोकि उनकी राजनीतिक नीतियों के लिए सहायक होती थीं।

भारत की एकता और अखंडता के प्रति उनकी उदान्त भावना से उन्हें सभी लोगों का आदर मिला। 1952 में जम्मू और कश्मीर में उनके प्रवेश पर लगे प्रतिबंधों का उल्लंघन करने की सदन में उनकी घोषणा उनकी राष्ट्रभक्ति के उत्साह के बारे में बहुत कुछ कह जाती है। वह भारत के एकीकरण के लिए, जिसके लिए उन्होंने अपने जीवन का बलिदान किया, अपने सारे जीवन लड़ते रहे।

4

श्यामा प्रसाद मुखर्जी की स्मृति में

—हिरेन मुखर्जी

एक उत्कृष्ट जन-नेता और सांसद श्यामा प्रसाद मुखर्जी को स्मरण करना और उन्हें सम्मान देना हमारे लिए एक हर्ष का विषय है तथा यह हमारा नैतिक दायित्व भी है। वर्ष 1953 में उनके असामयिक निधन से उत्पन्न शून्य को अब तक नहीं भरा जा सका है। हमारे लिए यही परमादेश है कि हम ऐसे महान् व्यक्तियों का गुणगान करें।

महान् आशुतोष मुखर्जी के सुपुत्र ने वर्ष 1917 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर विभागों का निर्माण किया और भारत को आधुनिक विश्व के शोध मानचित्र में स्थान दिलाने के लिए इतना अधिक कार्य किया जितना कोई भी व्यक्ति नहीं कर सका। श्यामा प्रसाद मुखर्जी को कुछ गुण विरासत में प्राप्त हुए थे, किन्तु उन्होंने अपनी प्रतिभा द्वारा उन्हें न्यायोचित सिद्ध कर दिया। विश्वविद्यालय सिंडीकेट में नियुक्त होने वाले वह अपने समय तक के सबसे कम उम्र के सदस्य थे। जब उनकी आयु मात्र तीस वर्ष से कुछ अधिक थी, वह भारत में सबसे कम आयु के उपकुलपति बन गए थे। इस बात से पुनः सिद्ध होता है कि उनका सम्मान उनके गुणों के बल पर किया जाता था। अपनी व्यापक रुचियों के कारण वह सार्वजनिक जीवन में खिंचे चले आए और स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारत के वातावरण के बावजूद उन्होंने तत्कालीन सीमित किन्तु प्रतिभाशाली ढंग से कार्य कर के विधान मंडलों में अपना स्थान बना लिया था। जब उनकी आयु चालीस वर्ष से कुछ अधिक थी, तो उनके गुणों को देखते हुए उन्हें बंगाल के तत्कालीन अविभाजित प्रान्त की सरकार में एक मंत्री के रूप में नियुक्त किया गया। श्यामाप्रसाद अपनी स्वतंत्र विचारधारा रखते थे और इसी विशेष गुण के कारण, उन्होंने वर्ष 1942 के उत्तरार्द्ध में आपदाग्रस्त जिले मिदनापुर में सरकार द्वारा राहत कार्य न किए जाने के कारण विरोध प्रकट करते हुए अपने पद से त्यागपत्र दे दिया।

*प्रो० हिरेन मुखर्जी एक विख्यात संसद सदस्य तथा श्यामा प्रसाद मुखर्जी के समकालीन व्यक्ति हैं।

श्यामाप्रसाद मुखर्जी स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले की प्रमुख पार्टी कांग्रेस में कभी शामिल नहीं हुए। उनका राजनैतिक दृष्टिकोण एकदम उदार था, लेकिन हिन्दू महासभा जैसी संस्थाओं की ओर उनका झुकाव रहा और वह इसके नेता भी बने। उन्हें मात्र साम्प्रदायवादी व्यक्ति की संज्ञा नहीं दी जा सकती थी, तथापि राजनीतिक जोश में उनके बर्ताव से प्रायः ऐसा लगता था। उनके दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को सदैव उदारतापूर्वक निर्णय लेना चाहिए, किन्तु इसके साथ ही इसकी कुछ सीमाएं भी होनी चाहिएं। इसमें कुछ अच्छाई ही है, उदाहरण के लिए उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में कुछ वर्षों तक अपने विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के दौरान, मुस्लिम इतिहास और संस्कृति के विशिष्ट विद्वानों की सेवाएं प्राप्त करते समय गर्व और आनन्द का अनुभव किया था। वे विचारों की स्वतंत्रता के समर्थक थे और साम्यवाद के कट्टर विरोधी थे, लेकिन मूल रूप से वह एक उदारवादी व्यक्ति थे। उदाहरणार्थ, जहां तक मुझे साफ-साफ याद है — उनकी इसी प्रवृत्ति ने वर्ष 1941 के उत्तरार्द्ध में सोवियत संघ के साथ मैत्री के लिए हमारे सहित कुछ व्यक्तियों द्वारा आरंभ किए गए आन्दोलन के साथ उन्हें जुड़ने से नहीं रोका। हिन्दू महासभा के साथ अपने सम्बन्धों को वह अधिक समय तक जारी नहीं रख सके, लेकिन वह, नागरिक स्वतंत्रता के समर्थक थे और उन्होंने स्वयं को कट्टर साम्प्रदायिकता की संकीर्णता से अलग रखा। इसकी परख उन अनेक व्यक्तियों द्वारा की गई थी, जो साम्प्रदायिक मसले पर उनसे बिल्कुल भिन्न मत रखते थे। श्यामा प्रसाद इस संबंध में स्वयं अपने विरुद्ध भी मजाक कर लिया करते थी। मुझे याद है 1952 में जब वे और मैं हमारी प्रथम लोक सभा में साथ-साथ सदस्य थे उन्होंने मुझे एक बार कहा था: "जानते हो, हीरेन, उन्होंने मुझे तुगलक क्रेसेंट में आवास आवंटित किया है — ध्यान दो कि तुगलक रोड पर नहीं बल्कि तुगलक क्रेसेंट में और मैंने अपनी पलक तक नहीं झपकाई, फिर भी कुछ लोग मुझे एक साम्प्रदायिक हिन्दू कहते हैं।"

संभवतः सैद्धांतिक तथा स्वभावगत मतभेदों के कारण उनके और जवाहरलाल नेहरू के बीच एक प्रकार की पारस्परिक ऐलर्जी थी। किन्तु इस बारे में भी कोई सन्देह नहीं है कि उनके बीच पारस्परिक प्रशंसा की भावना भी विद्यमान थी। यह महत्वपूर्ण है कि जब जवाहर लाल स्वतंत्र भारत के प्रथम मंत्रिमंडल का गठन करने लगे, तो उन्होंने श्यामा प्रसाद मुखर्जी को भी शामिल होने के लिए आमंत्रित किया और श्यामा प्रसाद ने उनके इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। दुर्भाग्य की बात है कि तत्कालीन पूर्व पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थियों की दुखद समस्या तथा अन्य संबंधित मसलों को लेकर उनके बीच मतभेद हो गया और श्यामाप्रसाद ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया तथा भारत में तत्कालीन राजनैतिक नेताओं की मुख्यधारा से स्वयं को अलग कर लिया। प्रथम सामान्य निर्वाचन (1952) तक श्यामा प्रसाद ने अपनी एक अलग पार्टी जनसंघ (आज की

भारतीय जनता पार्टी का पूर्वनाम) की स्थापना की जिसके फलस्वरूप अधिक कट्टर हिन्दू महासभा का प्रभाव कम हो गया। उनकी संसदीय कुशाग्रता तब देखने को मिली जब एक सदस्यीय पार्टी ने 'नेता' के रूप में ही उन्होंने अपने बल पर नेशनल डेमोक्रेटिक एलायंस बनाकर विपक्ष का एक बड़ा समूह इकट्ठा कर लिया।

हम मार्क्सवादियों के साथ, जो उस समय विपक्ष का एक प्रमुख अंग था, श्यामा प्रसाद ने मौलिक सैद्धांतिक मतभेद के बावजूद सरकार के विरुद्ध एक मैत्रीपूर्ण एवं कुशल सहयोग को बनाये रखा। राजनैतिक कारणों से निवारक नजरबन्दी जैसे मसलों पर हमने एक दूसरे को सहयोग दिया और एक ओजस्वी वक्ता के रूप में एवं संसदीय कार्य के अपने अुनभव के फलस्वरूप वे एक असाधारण व्यक्ति थे तथा हमारे राजनीतिक क्षेत्र में उनका योगदान अमूल्य था। उनमें चुभनेवाला मुँहतोड़ जबाब देने की क्षमता थी। एक उदाहरण है, जब राजनैतिक विरोधियों को मुकदमें के बिना नजरबन्द किए जाने पर सरकार की आलोचना की जा रही थी, तो उन्होंने सरकारी पक्ष की ओर से एक आवाज सुनीः "सच्चाई का सामना करो," और उन्होंने तुरंत उत्तर दिया "मैं कैसे सामना कर सकता हूं, क्योंकि मेरे सामने तो मंत्रीगण बैठे हैं।" दुर्भाग्य की बात है कि हमारे युग के इस असाधारण राजनीतिज्ञ का जीवनकाल बहुत कम रहा तथा जब वे भारत के साथ कश्मीर के पूर्ण विलय के लिए अपने तरीके से संघर्ष कर रहे थे तो उनका दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों में निधन हो गया। यदि वे अधिक समय तक जीवित रहते, तो शायद यह विख्यात भारतीय हमारे इतिहास में सकारात्मक और अधिक योगदान दे सकता था। तथापि उनके व्यक्तित्व एवं उनकी उत्कृष्ट प्रतिभा को कभी भी भुलाया नहीं जाना चाहिये। इस लेखक की तरह उनके जीवन-काल के दौरान जिन व्यक्तियों का उनके साथ मतभेद था, श्रद्धाजलि अर्पित करें।

भाग-दो

लेख

5

डा॰ श्यामा प्रसाद मुखर्जी महानता से जिया गया एक महान जीवन

—के॰आर॰ मलकानी*

"एक दिग्गज चला गया...... महान प्रतिभा का सूर्य अस्त हो गया......"

कश्मीर में नजरबंदी के दौरान डा॰ श्यामा प्रसाद मुखर्जी की रहस्यमय परिस्थितियों में अचानक मृत्यु हो जाने पर कवि हरीनदर नाथ चट्टोपाध्याय ने उपर्युक्त उद्गार व्यक्त किये थे। वस्तुतः डा॰ मुखर्जी एक असाधारण गुणों से संपन्न व्यक्ति, विद्वान, राजनीतिज्ञ और सज्जन व्यक्तित्व से संपन्न व्यक्ति थे।

उल्लेखनीय शैक्षणिक उपलब्धियों के पश्चात् 32 वर्ष की युवावस्था में वह कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति बने। उन्होंने संभवतः अपना संपूर्ण जीवन शैक्षणिक क्षेत्र में ही व्यतीत कर दिया होता, परन्तु राजनीति में सांप्रदायिकता का जहर फैलने की वजह से वह अपरिहार्य रूप से सार्वजनिक जीवन की ओर आकर्षित हुए। वर्ष 1930 से ही, जबकि उन्होंने बंगाल कौंसिल में विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व किया, वह एक तर्कसंगत और संतुलित आवाज को उठाते रहे। जब ढाका के नवाब के एक चचेरे भाई, शहाबुद्दीन जैसे मैट्रिक से कम शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को कुलपति नियुक्त किया गया, तो उन्हें अत्यधिक धक्का पहुंचा। डा॰ श्यामा प्रसाद ने तब तक प्रचण्ड अभियान जारी रखा, जब तक नये शिक्षा विधेयक को, जिसके माध्यम से बंगाल में शिक्षा को और अधिक सांप्रदायिक बनाने का प्रयास किया गया था, वापस नहीं ले लिया गया।

जब श्यामा प्रसाद वर्ष 1939 में राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय हुए, तो गांधीजी ने उन्हें

*श्री मलकानी एक प्रसिद्ध पत्रकार हैं।

कांग्रेस में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया, परन्तु उन्होंने हिन्दू महासभा में शामिल होने का निर्णय किया, क्योंकि वे यह महसूस करते थे कि हिन्दू महासभा ही मुस्लिम लीग के बढ़ते हुए खतरे को रोक सकती थी। महासभा शीघ्र ही बंगाल में जन-जन की पार्टी बन गयी।

कांग्रेस पार्टी ने वर्ष 1937 में फजलुल हक की कृषक प्रजा पार्टी के साथ मिली जुली सरकार में शामिल न होकर एक कूटनीतिक भूल की थी। इसके परिणामस्वरूप हक ने मुस्लिम लीग के साथ मिली जुली सरकार बनाई और वह स्वयं उस पार्टी में शामिल हो गये। परन्तु जब हक का जिन्ना के साथ मतभेद हुआ, जिन्हें वह घमंडी फेरोहा से भी अधिक घमंडी समझते थे—डा॰ मुखर्जी ने तत्काल उनके साथ सहयोग किया और दोनों ने मिलकर बंगाल में एक गैर सांप्रदायिक सरकार का गठन किया। मुस्लिम लीग के सदस्य हक पर इस बात का ताना मारते थे कि महासभा का एक नेता उनका वित्त मंत्री है। हक इस पर हंसते हुए यह जवाब देते थे—"शेर को कटघरे में बंद रखना ज्यादा सुरक्षित है अथवा उसे खुले छोड़ देना?"

हक अपनी युवावस्था के दिनों में डा॰ श्यामा प्रसाद के पिता सर आशुतोष मुखर्जी के जूनियर थे और अब डा॰ श्यामा प्रसाद और फजलुल हक दोनों गहरे दोस्त बन गये थे। श्यामा प्रसाद हक को हिन्दू महासभा की कार्यकारिणी की बैठकों में भी ले जाते थे।

परन्तु श्यामा प्रसाद जैसा शेर बहुत लम्बे समय तक 'कटघरे' में नहीं रह सका। जब राज्यपाल ने, भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय भाग लेने की वजह से मिदनापुर की बाढ़ पीड़ित जनता की सहायता करने से इंकार कर दिया, तो उन्होंने त्यागपत्र दे दिया और उनके त्यागपत्र में ब्रिटिश कुशासन की इतनी कटु आलोचना की गयी थी कि सरकार ने उसके प्रकाशन पर रोक लगा दी।

जब बंगाल में भीषण अकाल पड़ा, तो श्यामा प्रसाद ही एक मात्र ऐसे प्रमुख बंगाल के नेता थे, जो जेल से बाहर थे। उन्होंने भुखमरी के शिकार लोगों की दिन रात सेवा की। जब बाद में गांधीजी ने अकाल पीड़ित लोगों की उनके द्वारा की गयी सेवा के प्रति आभार व्यक्त किया, तो उन्होंने यह कहा कि उन्होंने केवल अपने कर्त्तव्य का पालन किया है।

जब 1946 में चुनाव घोषित किये गये तो श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने नेहरू को सुझाव दिया कि हिन्दू महासभा को कुछ स्थान जीत लेने देना चाहिये इससे मुस्लिम लीग पर कुछ अंकुश रहेगा। लेकिन नेहरू ने तो उनकी बात सुनी ही नहीं। उन्होंने कहा कि कांग्रेस सभी मुसलमानों के लिए नियत स्थानों पर चुनाव लड़ेगी और जीतेगी। परिणाम यह हुआ कि महासभा को केवल कुछ ही स्थान मिले और कांग्रेस पश्चिमोत्तर सीमांत प्रान्त के बाहर

सभी मुसलमानों के लिए नियत स्थानों पर हार गयी। विभाजन की मांग ने उग्र रूप धारण कर लिया और कांग्रेस को झुकना पड़ा।

इसी समय बंगाल को स्वतंत्र बनाने का एक प्रस्ताव रखा गया। यदि यह प्रस्ताव कार्यान्वित हो जाता तो कलकत्ता समेत सारा पश्चिम बंगाल भारत से बाहर चला जाता लेकिन डा० मुखर्जी इस प्रस्ताव से बिल्कुल सहमत नहीं हुए। उन्होंने गांधी जी से स्पष्ट कह दिया कि यह पटसन मिलों के अंग्रेज मालिकों के वाणिज्यिक हितों को सुरक्षित रखने का प्रस्ताव है जो यह नहीं चाहते कि पटसन की मिलें पाकिस्तान या भारत में रहें। उन्हें यह भी आशंका थी कि आज स्वतंत्र बंगाल की बात हो रही है कल स्वतंत्र बंबई और स्वतंत्र मद्रास की मांग भी होगी। इस तरह से यह प्रस्ताव समाप्त कर दिया गया। कुछ वर्षों के बाद जब नेहरू ने मुखर्जी से कहा कि वह भी विभाजन से सहमत हुए थे तो मुखर्जी ने तपाक से कहा "आपने भारत का विभाजन किया; मैंने पाकिस्तान का विभाजन किया है।"

जब स्वतंत्रता मिली तो गांधी जी के रचनात्मक दृष्टिकोण के कारण भारत को एक राष्ट्रीय सरकार प्राप्त हुई। यद्यपि कांग्रेस को अपार बहुमत मिला था तथापि 14 सदस्यों के नये मंत्रिमण्डल में 7 गैर कांग्रेसी मंत्री बने—डा० मुखर्जी, डा० अम्बेडकर, मथाई, बलदेव सिंह, भाभा, नियोगी और शांमुग चेत्ती। आज जब छोटे और लघु व्यक्ति राष्ट्रीय सरकार का प्रस्ताव रखते हैं और उनसे भी छोटे व्यक्ति उस प्रस्ताव का निरनुमोदन कर देते हैं उस समय उन्हें देश को हर प्रकार के प्रतिभावान व्यक्तियों वाली सरकार देने के लिए 1947 के उदाहरण को ध्यान में रखना चाहिये।

उद्योग मंत्री के रूप में श्यामा प्रसाद ने देश को सिन्दरी उर्वरक कारखाना और चितरंजन लोकोमोटिव कारखाना दिये। इस महत्वपूर्ण मंत्रालय का चार वर्ष तक कार्यभार सम्भालते हुए उनकी कभी आलोचना नहीं हुई और न ही उनकी कार्य क्षमता पर कोई आंच आयी। 1949 के आरम्भ में पूर्वी पाकिस्तान में हुए हत्याकांड के कारण लाखों हिन्दू भारत आ गये। सरदार पटेल ने पाकिस्तान से कहा कि शरणार्थियों को बसाने के लिए वह भूमि दे। नेहरू ने "अन्य तरीकों की बात की"। इसके शीघ्र बाद सरकार ने स्पंदहीन नेहरू-लियाकत समझौता किया और पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं को भुला दिया गया। श्यामा प्रसाद ने विरोध स्वरूप त्यागपत्र दे दिया। यदि नेहरू में आवश्यक दृढ़ता होती तो बंगला देश 1951 में ही बन जाता और उस के लिए 1971 तक का 20 वर्ष का समय न लगता।

अब डा० मुखर्जी बाहर हो गये और उन्होंने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के श्री गुरू जी के साथ परामर्श करके भारतीय जनसंघ (वर्तमान नाम भारतीय जनता पार्टी) की स्थापना

की। नेहरू ने भारतीय जनसंघ को कुचलने की धमकी दी और मुखर्जी ने कहा कि "हम इस कुचलने वाली प्रवृत्ति को कुचल देंगे"। यद्यपि नयी पार्टी ने काफी स्थान नहीं जीते तथापि उसे तीन प्रतिशत लोकप्रिय मत प्राप्त हुए और उसे मान्यता प्राप्त पांच राष्ट्रीय दलों में से एक माना गया। श्यामा प्रसाद ने बिना समय खोये एक संयुक्त लोकतांत्रिक फ्रंट (यू डी एफ) बनाया जिसमें भारतीय जनसंघ के अतिरिक्त समाजवादी दल और किसान मजदूर प्रजा पार्टी थे। कुछ ही दिनों के भीतर वह विपक्ष के गैर सरकारी नेता बन गये। डा० मुखर्जी का यू डी एफ 1967 में संयुक्त विधायक दल और 1977 में जनता पार्टी बनने की शुरूआत थी। इस संक्षिप्त लेकिन शानदार अवधि के बारे में हरिन्द्र नाथ ने कहा:—

> वह हमें विचारों की हरियाली से भरपूर वृक्ष का आभास देते थे... । मित्र, जब आप बोलने के लिए खड़े होते थे, उस समय के आपके व्यक्तित्व और गर्जनायुक्त वाणी की कमी हमें सदैव खलती रहेगी।

बहुत से लोग उनमें भावी प्रधान मंत्री की छवि देखते थे। परन्तु ऐसा होना नहीं था। उस समय भी कश्मीर का मामला ऐसा ही ज्वलंत था जैसा कि वह आज है। भारतीय जनसंघ ने कश्मीर को अलग से विशेष दर्जा दिये जाने का विरोध किया और यह रुख अपनाया कि "एक देश में दो विधान, एक देश में दो प्रधान, एक देश में दो निशान, नहीं चलेंगे, नहीं चलेगें।"

दिल्ली, जम्मू और कश्मीर में एक बड़ा सत्याग्रह आन्दोलन शुरू हुआ। डा० मुखर्जी ने स्वयं परमिट नियम का उल्लंघन किया और 11 मई, 1953 को बिना परमिट के राज्य में दाखिल हुये। उन्हें तुरन्त गिरफ्तार करके उसी रात श्रीनगर भेज दिया गया और अलग से एक मकान में रखा गया तथा 23 जून को उनकी मृत्यु की घोषणा कर दी गई। किसी को कभी भी यह नहीं बताया गया कि गिरफ्तारी के दौरान वे बीमार थे। जिनसे समूचा देश स्तब्ध रह गया और लोगों को इसमें षड़यंत्र की बू आने लगी। देश के सभी भागों से हृदय को छूने वाले संवेदना संदेश प्राप्त होने लगे। ढाका में फजलुल हक ने बड़े दुखी होकर कहा "इस समूचे संसार में अपने एक मात्र भाई को खोकर मैं दुख से पागल हो गया हूं।"

जब यह पता चला कि इलाज के लिये डा० मुखर्जी को एक ऐसे नर्सिंग होम में ले जाया गया जिसमें आक्सीजन का भी इंतजाम नहीं था, तो बहुत से लोगों ने उनके निधन को पर्याप्त चिकित्सा के अभाव में की गई हत्या बताया। डा० अम्बेडकर ने कहा कि गुण्डों तक को जेल में न रख कर उन्हें अपने-अपने राज्यों में भेज दिया गया। उन्होंने यह जानना चाहा कि शेख अब्दुला ने डा० मुखर्जी को जेल में क्यों रखा और वापस दिल्ली

या कलकत्ता क्यों नहीं भेजा। जब नेहरू ने श्यामा बाबू की मां श्रीमती जोग माया देवी को डा॰ मुखर्जी की मृत्यु पर संवेदना संदेश भेजते हुये उनसे पूछा कि वह उनके लिये क्या कर सकते हैं तो उन्होंने श्री नेहरू से कहा कि उसकी मृत्यु की न्यायिक जांच की जाये। परन्तु कोई जांच नहीं की गई और इस प्रकार डा॰ मुखर्जी की मृत्यु पर संदेह का पर्दा पड़ा रहा। नेहरू ने केवल इतना किया कि अब्दुल्ला को हटा दिया और परमिट प्रणाली को समाप्त कर दिया। यदि उन्होंने इस घातक अनुच्छेद 370 पर उस समय वार किया होता तो जो समस्या इस समय कश्मीर में है वह पैदा न होती।

श्यामा प्रसाद ने अपनी मृत्यु के द्वारा भी भारत की एकता और अखण्डता के लिये वही कार्य किया जो उन्होंने अपने जीवन काल में किया। इस समय भारतीय जनता पार्टी उनके जीवन, कार्य और विचारों का जीता जागता स्मारक है।

भाग - तीन

उनके विचार

संविधान सभा/अंतरिम संसद/लोक सभा में डा० मुखर्जी द्वारा दिए गए कुछ चुनींदा भाषणों से उद्धरण

6

संविधान सभाः इसका गठन और स्वरूप

मैं समझता हूं कि हमारे देश के उतार-चढ़ाव भरे इतिहास के दौरान हमने विभिन्न राजनीतिक दलों और मंचों के माध्यम से अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र और प्रभसत्ता सम्पन्न देश बनाने की मांगों को लेकर कई प्रस्ताव और संकल्प पारित किये हैं। लेकिन आज के संकल्प का विशेष महत्व है। ब्रिटिश शासन के दौरान अपने देश के इतिहास में पहली बार हम अपने संविधान का निर्माण करने के लिए इकट्ठे हुए हैं। यह भारी उत्तरदायित्व है—वास्तव में जैसा कि संकल्प के माननीय प्रस्तावक ने स्मरण कराया है, यह एक पवित्र और पावन कृत्य है, जिसके निष्पादन के लिए हम भारतीय सहमत हुए हैं और अपनी योग्यतानुसार हम इसे पूरा करेंगे। डा॰ जयकर द्वारा पेश किये गये संशोधन से कुछ मौलिक और महत्वपूर्ण प्रश्न पैदा होते हैं। खेद है कि मैं इस संशोधन का समर्थन नहीं कर सकता। व्यावहारिक रूप से इस संशोधन का प्रभाव यह है कि जब तक सभी वर्ग बैठ कर अपनी सिफारिशें नहीं दे देते तब तक हम यह संकल्प पारित नहीं कर सकते। संशोधन के प्रस्तावक डा॰ जयकर चाहते हैं कि जब तक दोनों भारतीय राज्य तथा मुस्लिम लीग संविधान में भाग नहीं लेते तब तक हमें यह संकल्प पारित नहीं करना चाहिए। जहां तक भारतीय राज्यों का संबंध है, वे चाहते हुए भी भाग नहीं ले सकते, जब तक कि वर्गों की बैठक में प्रांतीय संविधानों का फैसला नहीं हो जाता जिसका अर्थ है कि पता नहीं और कितने महीने लग जायें। निःसन्देह यह खेद की बात है कि मुस्लिम लीग ने संविधान सभा के आरम्भिक सत्र में भाग नहीं लिया। इस बात की भी क्या गारंटी है कि यदि इस संकल्प को 20 वीं शताब्दी तक स्थगित कर दिया जाये तो मुस्लिम लीग सत्र में भाग ले लेगी?

मेरे विचार से इस प्रश्न पर भिन्न दृष्किोण से विचार होना चाहिये। क्या इस संकल्प से ऐसे प्रश्न पैदा होते हैं जो 16 मई की कैबिनेट मिशन स्कीम से भिन्न हैं। यदि इस से वास्तव में भिन्न मुद्दे पैदा होते हैं तो स्पष्ट है कि इस मामले में हमारा पूर्वाग्रह है और हम ऐसे मामले उठा रहे हैं जिन्हें इस स्तर पर उठाने का हमें अधिकार नहीं है। मेरे विचार

से यह दस्तावेज उलझाने वाला है। इसे अलग-अलग दृष्टिकोण से देखा जा सकता है और उसकी अलग-अलग व्याख्या की जा सकती है। जो संकल्प रखा गया है उसे देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसमें वे आधारभूत बाते रखी गयी हैं जो स्वयं स्कीम के ढांचे में ही हैं। मेरे विचार से एक मामले अर्थात अपशिष्ट शक्तियों के बारे में मतभेद हो सकते हैं। परन्तु इस मामले को कैबिनेट मिशन स्कीम ने संविधान के प्रस्तावित ढांचें में सम्मिलित किया है। इस मामले पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने विचार व्यक्त किए हैं और मेरे विचार से मुस्लिम लीग ने भी अपने विचार व्यक्त किये हुए हैं। हममें से कुछ के विचार उनसे भिन्न हो सकते हैं और हमारा आग्रह है कि भारत के सर्वोच्च हित में एक मजबूत केन्द्र बनाया जाए। हम उपयुक्त प्रक्रम पर इसका प्रयास करेंगे। पं० जवाहर लाल नेहरू ने भी संकल्प के प्रस्तावक के रूप में यह स्पष्ट कर दिया है कि हम भारत का संविधान नहीं बना रहे हैं, इस प्रक्रम पर हम केवल संकल्प पारित कर रहे हैं, जिसमें वे मुख्य-मुख्य बातें रखी गयीं हैं जो भारत के आगामी संविधान में सम्मिलित की जाएंगी। दूसरे शब्दों में जब वास्तव में भारत के संविधान का निर्माण किया जायेगा तो मेरा विश्वास है कि उस समय सभा के समक्ष किसी भी मामले पर कोई भी सदस्य संशोधन पेश कर सकेगा जिस पर उसके गुणों के अनुसार विचार किया जायेगा। मेरे विचार से इस सभा द्वारा बाद में संविधान के मसौदे पर संशोधन पेश किये जाने के लिए किसी सदस्य पर प्रतिबंध नहीं है। यदि इन दो मामलो पर आश्वासन दिये जाते हैं अर्थात कि प्रस्तुत संकल्प केबिनेट मिशन स्कीम के मुख्य मुद्दों के विरुद्ध नहीं जाता और यह कि आगामी संविधान के विवरणों के बारे में इस संविधान सभा को किसी निश्चित रूप से प्रतिबद्ध नहीं करता, तो मैं समझता हूं कि इस प्रक्रम पर संकल्प को पास करने में कोई अड़चन नहीं डालनी चाहिए।

इस संकल्प का अपना महत्व है। हम यहां निजी रूप में नहीं बैठे हैं, बल्कि हम इस महान भूमि के लोगों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करते हैं। हमें ब्रिटिश संसद की मंजूरी नहीं चाहिए, हमें ब्रिटिश सरकार की मंजूरी नहीं चाहिए, हमें भारत के लोगों की मंजूरी चाहिए (हर्षध्वनि)। यदि यही बात है तो हमें केवल नियमों और विनियमों के गठन के बारे में ही बात नहीं कहनी है—हमें भारत के लोगों को यह ठोस बात बतानी है कि हम 9 दिसम्बर 1946 को यहां किसलिए एकत्र हुए हैं। यदि संशोधन के प्रस्तावक द्वारा कही गयी बात सही होती तो यह संविधान सभा ही न बुलाई जाती। वास्तव में प्रस्तावक को इस बैठक में नहीं आना चाहिए था। वह गर्वनर जनरल को सूचित कर

देते—"मुझे खेद है कि मैं आपका निमंत्रण स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि आप संविधान सभा बुलाकर गल्ती कर रहे हैं क्योंकि मुस्लिम लीग और भारतीय राज्य इसमें भाग नही ले रहे हैं। लेकिन यहां आकर यह मामला उठाकर वह वास्तव में मुस्लिम लीग के जाल में फंस रहे हैं और ग्रेट ब्रिटेन के प्रतिक्रियावादियों के हाथ मजबूत कर रहे हैं। मैं जानता हूं कि संशोधन के प्रस्तावक ऐसा कभी नहीं करना चाहेंगे। मैं सिद्धान्तों में उनके विश्वास की कद्र करता हूं। वास्तव में जो व्यक्ति अपनी बात कहना चाहता है, उसे आगे आकर अपने विचार व्यक्त करने चाहिए, लेकिन हम सम्मानपूर्वक यह बताना चाहते हैं कि सभा के समक्ष रखे गए और निर्दोष लगने वाले इस संकल्प के क्या खतरे हो सकते हैं और मुझे आशा है कि उचित समय पर वह अपना संशोधन वापस ले लेंगे।

मैं इस प्रश्न के एक दूसरे पहलू के बारे में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। जो संकल्प रखा गया है उसका कार्यान्वयन कैसे होगा। इस संकल्प को लागू करने में जो दिक्कतें हमारे सामने हैं, उन्हें कैसे दूर किया जाएगा। एक प्रश्न है कि मुस्लिम लीग की अनुपस्थिति में संविधान सभा की हैसियत क्या है।

प्रस्तावक ने रात्रि भोज का उदाहरण देकर कहा है कि यदि मेहमानों को आमंत्रित किया जाता है और कुछ मेहमान नहीं आते तो रात्रिभोज कैसे हो सकता है, लेकिन वह यह बताना भूल गए हैं कि उन मेहमानों का क्या होगा, जो पहुंच चुके हैं। यदि छः मेहमान आमंत्रित किये जाते हैं और एक मेहमान नहीं आता तो क्या उसके लिए अन्य पांच को भूखा रखा जायेगा। ऐसा नहीं हो सकता। यहां भी आजादी की भूख को दूर करने की बात है। श्री चर्चिल ने कहा है कि संविधान सभा में मुस्लिम लीग की अनुपस्थिति चर्च में दुल्हन की अनुपस्थिति की तरह ही है। ऐसे में शादी कैसे हो सकती है। मुझे पता नही कि भारतीय राज्य और मुस्लिम लीग कब भाग लेंगे और इस संविधान सभा की दुल्हनें कितनी होंगी। यह चर्चिल के विचार हो सकते हैं पर उन्हें शोषक नहीं बनना चाहिए। उन्हें श्री जिन्ना से भारत वापस जाने और संविधान सभा में अपने विचार रखने के लिए कहना चाहिए था। किसी ने यह नहीं कहा कि मुस्लिम लीग न आये। वास्तव में हम चाहते हैं कि मुस्लिम लीग यहां बैठकर आमने सामने बात करे। यदि कुछ कठिनाइयां या मतभेद हैं तो उन पर हम बहुमत से फैसला करना नहीं चाहते। वह तो अन्तिम विकल्प हो सकता है। लेकिन हम भारत के संविधान के गठन के बारे में समझौता करने के लिए हर संभव प्रयास करेंगे। लेकिन मुस्लिम लीग को आने से क्यों रोका जा रहा है? मेरा आरोप यह है कि ब्रिटिश रवैये के कारण मुस्लिम लीग भाग नहीं ले रही है। मुस्लिम लीग को न आने के लिए इसलिए प्रोत्साहित किया जा रहा है, कि वह संविधान सभा के अन्तिम निर्णय को वीटो कर सके। वीटो करने की शक्ति मुस्लिम लीग के हाथ में आ गयी है और उससे

भविष्य में संविधान सभा की गतिविधियों को खतरा हो सकता है। यह समय विस्तार से चर्चा करने का नहीं है। लेकिन मैं यह बात स्पष्ट करना चाहता हूं कि यद्यपि ब्रिटेन ने इस संविधान सभा को बनाया है लेकिन एक बार बन जाने के बाद यदि इसके पास अपने अधिकारों को मनवाने की और भारत की आजादी प्राप्त करने की तथा जात पात और धर्म का विचार किये बिना भारत के लोगों की भलाई करने की दृढ़ इच्छा है तो इसके पास ऐसा करने की शक्ति है। (हर्षध्वनि)

हमने और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने क्योंकि वार्ता में वह एक मुख्य दल के रूप में थी, यह कहा है कि हम 16 मई की कैबिनेट मिशन स्कीम को मानते हैं। कल जब माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल ने डा० जयकर को रोकते हुए कहा कि कांग्रेस ने 16 मई 1946 के वक्तव्य से अधिक कुछ स्वीकार नहीं किया है तो मुझे बहुत खुशी हुई (हर्षध्वनि)। मैं समझता हूं कि यह आधारभूत महत्व की बात है। हमें यह स्पष्ट करना होगा कि हम यहां किस लिए आए हैं मेरे विचार से हमारा रवैया यह होना चाहिएः हम 16 मई की कैबिनेट मिशन स्कीम को एक मौका देंगे और ईमानदारी से अन्य दलों के साथ समझौता इसी स्कीम के आधार पर करने का प्रयास करेंगे। लेकिन इसके बाद स्कीम की यदि कोई व्याख्या की जाती है तो हम उसे स्वीकार नहीं करेंगे और यदि कोई दल इस स्कीम से मुकर जाता है तो हम अपना कार्य जारी रखेंगे और अपनी इच्छा से संविधान का निर्माण करेंगे।

16 मई 1946 के वक्तव्य के एक खण्ड के बारे में काफी मतभेद है और वह ग्रुपिंग के बारे में है। यह निर्णय करना मुख्य दल के रूप में कांग्रेस का काम है कि यह कौन सी व्याख्या स्वीकार करती है। यदि महामहिम की सरकार की व्याख्या स्वीकार नहीं की जाती और यदि कांग्रेस समझती है कि इस बारे में उसकी व्याख्या सही है तो संकट पैदा हो सकता है। इस संकल्प पर चर्चा के अतिरिक्त उस प्रश्न पर भी फैसला करना होगा। वास्तव में इस प्रश्न पर निर्णय लेने में जितना विलंब होगा उतनी ही अनिश्चितता बढ़ेगी। लेकिन इस प्रश्न पर विचार के बाद यदि महामहिम की सरकार की व्याख्या स्वीकार की जाती है, चाहे यह फैडरल न्यायालय द्वारा हो या न हो, मैं इस बारे में नहीं जाना चाहता लेकिन हम आगे अपना काम जारी रखेंगे। मुस्लिम लीग चाहे आये या न आये; आये तो बहुत अच्छा है पर यदि नहीं आती तो यह भारत की आजादी को नहीं रोक सकती। हम संविधान सभा में अपनी कार्यवाही आगे चलायेंगे। मैं महसूस करता हूं कि यदि कोई संकट वस्तुतः पैदा होता है, और मैं समझता हूं ऐसे संकट की संभावना भी है, यदि हमारे देश को स्वतंत्र होना है तो हम इस उद्देश्य को संवैधानिक तरीकों से प्राप्त नहीं कर सकेंगे। पिछले कुछ दिनों में जो घटनायें घटी हैं, उन्हें देखते हुए हमारा कार्य आसान नहीं होगा। किन्तु हमें जो कुछ भी करना है वह संविधान सभा के माध्यम से किया जाना

चाहिए। यदि अन्ततः हमें देश का काम चलाना है तो हम अपनी जिम्मेदारी पर काम करेंगे। हम एक संविधान तैयार करेंगे, जिसे विश्वमत के लिए रखेंगे और सभी का समाधान करेंगे कि हमने भारत के लोगों, अल्पसंख्यकों तथा अन्य समुदाय के साथ समान व्यवहार किया है।

दक्षिण अफ्रीका के मामले में क्या हुआ? आज हमारे बीच माननीया श्रीमती पंडित उपस्थित हैं, जो एक महान विजय के बाद स्वदेश लौटी हैं। किन्तु वहां भी हमारे स्वनियोजित न्यासी ग्रेट ब्रिटेन की महामहिम सरकार ने उनका समर्थन नहीं किया। वस्तुतः ग्रेट ब्रिटेन ने भारत के विरुद्ध मत दिया। पर फिर भी वह जीती। भारतीय शिष्ट मंडल विश्वमत के समक्ष विजयी हुआ। यही स्थिति संविधान सभा की भी हो सकती है। यदि हम साहस करके ऐसा संविधान बनायें जो सबको न्याय और समानता प्रदान करे तो, यदि आवश्यक हुआ, हम संविधान सभा को स्वतंत्र और प्रभुत्तासम्पन्न भारतीय गणराज्य की प्रथम संसद घोषित कर सकेंगे। (जोरदार हर्षध्वनि)। तत्पश्चात् हम अपनी राष्ट्रीय सरकार बना सकेंगे और इस देश की जनता पर अपने निर्णय लागू कर सकेंगे। जैसा कि कुछ क्षण पहले मैंने कहा, हमें ब्रिटिश सरकार की ब्रिटिश जनता से अधिकार प्राप्त नहीं करने हैं। हमारी सत्ता के स्रोत भारत के लोग हैं। और इसलिए हमें अन्ततः अपने देश की जनता से ही अपील करनी होगी।

जब हम अल्पसंख्यकों की बात करते हैं तो ऐसा लगता है कि भारत में केवल एक अल्पसंख्यक समुदाय है जिसका प्रतिनिधित्व मुस्लिम लीग करती है, किन्तु बात ऐसा नहीं है। देश में अन्य अल्पसंख्यक भी हैं। मैं उस बंगाल से आया हूं जिसने बड़े कष्ट सहे हैं। मैं सभा को याद दिलाना चाहता हूं कि भारत के कम से कम चार प्रान्तों में हिन्दू भी अल्पसंख्यक हैं। और यदि अल्पसंख्यक अधिकारों को संरक्षित करना है तो वह अधिकार हर प्रान्त में रहने वाले हर अल्पसंख्यक समुदाय को मिलने चाहिए।

कल रात ही लॉर्ड साइमन ने यह एक विचित्र घोषणा की कि दिल्ली में बैठी संविधान सभा केवल सवर्ण हिन्दुओं की है। इंग्लैण्ड में पिछले कुछ दिनों में कई झूठे बयान दिये गए हैं। उनका हिसाब रखना भी कठिन है। इस सभा में आज किसका प्रतिनिधित्व है, इसमें हिन्दू हैं और कुछ मुसलमान भी हैं। मुस्लिम प्रान्तों से मुसलमान सरकारी प्रतिनिधि यहां हैं, हालांकि उन प्रान्तों में मुस्लिम लीग है। आसाम के प्रतिनिधि भी यहां है, जो श्री जिन्ना के तथा-कथित पाकिस्तान का अभिन्न अंग माना जा सकता है। इस प्रान्त को वहां के बहुसंख्यक लोगों का सरकारी प्रतिनिधित्व प्राप्त है। यहां हरिजन भी हैं। जितने भी अनुसूचित जाति के सदस्य संविधान सभा के लिए निर्वाचित हुए हैं वे यहां उपस्थिति हैं। यहां तक कि डा० अम्बेदकर जो हमारे साथ सभी मामलों में सहमत नहीं होते, यहां

उपस्थित हैं (तालियां)। आशा है कि हम उनका धर्म परिवर्तन करने में सफल होंगे, कम से कम उन्हें तब अपनी तरफ ले आयेंगे जब हम उन लोगों के मामलों पर विस्तार से विचार करेंगे जिनका वह प्रतिनिधित्व करते हैं। (दोबारा तालियां) यहां अनुसूचित जाति के अन्य सदस्य भी उपस्थित हैं। सिख भी यहां हैं, और भी कई हैं। आंग्ल-भारतीय और भारतीय ईसाई भी यहां उपस्थित हैं। पारसी भी यहां हैं। तो लार्ड साइमन या किसी दूसरे के मुंह में यह बात कैसे आई। जनजातीय और आदिवासी क्षेत्रों के लोग भी यहां हैं। वस्तुतः जो भी भारतीय संविधान सभा के लिए चुना गया है उनमें से मुस्लिम लीग को छोड़कर, सभी यहां उपस्थित हैं। मुस्लिम लीग एक बड़े वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, मुस्लिम समुदाय के एक बहुत बड़े वर्ग का। किन्तु यह कहना पूर्णतया भ्रामक है कि यह संविधान सभा केवल एक वर्ग अर्थात् सवर्ण-हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व करती है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सवर्ण हिन्दु अन्य जातियों को दबाने के लिए ही पैदा हुआ है। यह भारत के हितों के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता है। क्या कुछ लोग यह कहना चाहते हैं कि यदि भारत के लोगों पर एक वर्ग संविधान सभा में भाग नहीं लेना चाहता तो भारत को गुलाम ही रहना चाहिए। (एक आवाज नहीं) यह उत्तर इस देश के उन लोगों को और उनको उकसाने वालों को देना है जो यहां उपस्थित नहीं हैं। हमें अंग्रेजों को अन्ततः यह बता देना चाहिए कि हम उनके साथ मित्रता रखना चाहते हैं। आपने इस देश में एक व्यापारी के रूप में अपना जीवन आरंभ किया। आप यहां महान मुगलों के समक्ष प्रार्थी के रूप में आये। आप इस देश की संपदा का दोहन करना चाहते थे। भाग्य ने आपका साथ दिया। धोखाधड़ी, बलपूर्वक और कपट से आपने इस देश में अपनी सरकार स्थापित की। इसका इतिहास साक्षी है। किन्तु इसमें आपको इस देश के लोगों का हार्दिक समर्थन नहीं मिला। आपने भारत की राजनीति में मतदाता का एक अलग वर्ग बनाया और धर्म को राजनीति के साथ मिलाया। यह भारतीयों ने नहीं किया, आपने यह किया ताकि आप इस देश में स्थाई रूप से शासन कर सकें। आपने इस देश में निहित स्वार्थों का निर्माण किया है, जो आज शक्तिशाली बन गये हैं, जिन्हें अब समाप्त नहीं किया जा सकता। इन सब बातों के बावजूद यदि आप चाहते हैं कि भविष्य में भारत और आप के बीच मित्रता बनी रहे तो हम आपके सहयोग का स्वागत करते हैं, किन्तु भगवान के लिए भारत के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करें। हर देश की आपनी आन्तरिक कठिनाइयां हो सकती है और इसी तरह से दुर्भाग्यवश भारत की भी अपनी आन्तरिक समस्यायें हैं। इस समस्याओं का अन्ततः इस देश के लोगों को ही समाधान करना होगा''। हम अभी संविधान का निर्माण नहीं कर रहे हैं। हम उन बातों की रूपरेखा तैयार कर रहे हैं जो हम भविष्य में करना चाहते हैं। यह सभा संकीर्ण तकनीकी आधारों को स्वीकार नहीं करेगी। सभी कठिनाइयों और अवरोधों के बावजूद हम अपने कार्य में

अग्रसर होंगे और ऐसे महान संगठित और मजबूत भारत का निर्माण करेंगे जो न केवल इस समुदाय या उस समुदाय की अथवा इस वर्ग या उस वर्ग की मातृभूमि होगी, अपितु उन सभी लोगों, पुरुषों, महिलाओं, बच्चों की महान जन्मभूमि होगी जो इस देश के निवासी हैं, चाहे उनकी नस्ल, जाति, धर्म या समुदाय कुछ भी है। सबको समान अवसर मिलेंगे, सबको बराबर आजादी होगी और समान दर्जा मिलेगा ताकि देश का प्रत्येक नागरिक, स्त्री- या पुरूष अपनी प्रतिभा के अनुसार अपना विकास कर सके और हमारी इस सांझी मातृभूमि की ईमानदारी और निर्भीकता से सेवा कर सके।

7

हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में

हम ऐसे विषय पर विचार कर रहे हैं जो न केवल किसी प्रान्त विशेष के लोगों के लिये महत्वपूर्ण है अपितु भारत की करोड़ों जनता के लिये महत्वपूर्ण है। वस्तुतः जिस विषय पर हम निर्णय लेने जा रहे हैं वह ऐसा विषय है जिस के लिए पिछले हजार वर्षों के भारत के इतिहास में कोई प्रयास नहीं किया गया। इस मामले में मतभेद के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दू अवश्य हैं किन्तु उन्हें हम कुछ समय के लिये भुला सकते हैं। अतः हमें सर्वप्रथम यह बात महसूस करनी होगी कि हम कुछ ऐसा हासिल करने जा रहे हैं जो हमारे पूर्वज नहीं कर पाये।

कुछ सदस्यों ने अपनी भावनायें व्यक्त की हैं और मतभेद के बिन्दुओं पर जोर देने का प्रयास किया। मतभेद के बिन्दुओं के बारे में मैं बाद में बोलूंगा। पर मैं सभा से अनुरोध करुंगा कि वह अवसर की महत्ता को समझे और इस बात पर गर्व महसूस करे कि वह अपनी मातृभूमि की राष्ट्रीय अखण्डता के लिए वास्तविक योगदान कर रही है। इस पर हमें और आने वाली पीढ़ी को गर्व रहेगा।

भारत में कई भाषायें रही हैं। यदि हम विगत को देखें तो हम पायेंगे कि इस देश में सभी लोगों के लिये एक भाषा लागू करना सम्भव नहीं हो पाया है। मेरे कुछ मित्रों ने कहा है कि एक ऐसा दिन आयेगा जबकि भारत की केवल एक भाषा होगी। ईमानदारी से कहूं तो मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं। पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भारत की राष्ट्रीय अखण्डता के निर्माण के लिये इस बात की उपेक्षा की जा सकती है। यह हमारे भविष्य के पुनर्निर्माण की आधारशिला है। देशी राष्ट्रीय अखण्डता की प्राप्ति के लिये उन तत्वों का सहयोग भी जरूरी है जो गरिमा, सौहार्द और आत्मसम्मान से कार्य करने के लिये महत्वपूर्ण हैं। भारत को इस बात पर गर्व है कि हमारी उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम, तक अनेक भाषायें हैं और प्रत्येक भाषा ने अपने-अपने तरीके से भारत के उन जीवन दर्शन और सभ्यता में योगदान किया है जो आज हमारे समक्ष है।

यदि कोई यह दावा करता है कि भारत के संविधान में एक अनुच्छेद शामिल करके, बलपूर्वक, कभी लोग एक भाषा स्वीकार कर लेंगे, तो मैं कहूंगा कि यह सम्भव नहीं है। भारत की पृष्ठभूमि एकता में अनेकता की है और इसे आपसी समझ-बूझ तथा सहमति से

प्राप्त किया जाना चाहिये। इसके लिए एक समुचित वातावरण तैयार करना होगा। यदि मैं उस प्रान्त से आता जहां हिन्दी बोलचाल की भाषा है तो मैं उस सहमति के बारे में गर्व महसूस करता जो इस सभा के लगभग सभी सदस्यों के बीच हुई है, जिसमें देवनागरी लिपि में हिन्दी को स्वतंत्र भारत की सरकारी कामकाज की भाषा स्वीकार किया गया है। मैं समझता हूं कि हिन्दी भाषी प्रान्तों से आने वाले मेरे मित्रों की इसे एक ठोस उपलब्धि समझना चाहिए।

मैं दूसरी भाषाओं के सापेक्ष दावे की बात नहीं कर रहा। यदि बात मुझ पर छोड़ दी जाये तो मैं निश्चित रूप से संस्कृति को तरजीह दूंगा। शायद लोग आज संस्कृति का मज़ाक इस लिए उड़ाते हैं कि वह समझते हैं कि आधुनिक राज्य को जो विभिन्न दायित्व निभाने होते हैं उनमें इसका प्रयोग व्यवहार्य नहीं है। मैं संस्कृत का दावा पेश करने में आपका समय नहीं लेना चाहता। मैं इसके लिए पूर्णतया सक्षम नहीं हूं। किन्तु निश्चित ही यह एक ऐसी भाषा है जिसका भण्डार भरपूर है, जिसका भण्डार असीमित है और जिससे समस्त ज्ञान और बुद्धि का प्रादुर्भाव हुआ है। यह भाषा भारत की वर्तमान पीढ़ी के ज्ञान की शायद उतनी स्रोत नहीं रही है जितनी हमसे पहली पीढ़ी तथा सभ्य विश्व के वास्तविक ज्ञान अर्जित करने और शोध करने वालों की रही है। यह हमारी भाषा है और भारत की मातृभाषा है। हम केवल इसकी क्षमता के प्रति कोरी सहानुभूति व्यक्त नहीं करना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि हमारे राष्ट्रीय हित में, अपने को पहचाने और हमारी जो प्राचीन संस्कृति है और जो सम्पदा हमने संचित की है और भविष्य में भी जिसे हम प्राप्त कर सकते हैं उसके लिये भारत की राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति में संस्कृत को वही सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त हो जो उसे प्राचीनकाल में प्राप्त था।

मैं अन्य भाषाओं के दावों की वकालत भी नहीं कर रहा हूं। यदि मैं कहूं कि मुझे अपनी भाषा पर गर्व है तो आप इस प्रान्तीयता की संज्ञा नहीं देंगे। यह ऐसी भाषा है जो केवल बंगाल के लोगों की भाषा नहीं रही है। इसे पिछली कई शताब्दियों में कई जाने-माने लेखकों ने समृद्ध किया है। यह बन्देमातरम की भाषा है। हमारे राष्ट्र कवि रविन्द्र नाथ टैगोर ने भारत की प्रतिष्ठा और गरिमा को तब ऊंचा उठाया जब बंगाली में अभिव्यक्त अपने महान विचारों और लेखों की उन्होंने विश्व विधि वेताओं से मान्यता दिलाई। यह है हमारी भाषा। यह भारत की भाषा है। मुझे विश्वास है कि दक्षिण और पश्चिम के मित्रों की भाषाओं, जिन पर उन्हें गर्व है, का भी महान अभिलेख है। उन्हें भी संरक्षण दिया जाना चाहिए। सभी को यह महसूस होना चाहिये कि संविधान में ऐसा कुछ नहीं किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप इनमें से कोई भी भाषा कमजोर हो या नष्ट हो।

हमने हिन्दी क्यों स्वीकार की। इसलिये नहीं कि यह भारत की सर्वोत्तम भाषा है। इसका मुख्य कारण है कि यह आज देश के एक सबसे बहुसंख्यक समाज द्वारा समझी

जाती है। यदि 32 करोड़ लोगों में से 14 करोड़ लोग एक भाषा विशेष को समझते हैं और वह भाषा उत्तरोत्तर विकास में सक्षम है तो हम उस भाषा को सम्पूर्ण भारत के लिये स्वीकार कर सकते हैं। किन्तु यह कार्य इस प्रकार से किया जाये कि अन्तरिम काल में इससे हमारे प्रशासनिक और सरकारी कामकाज में गिरावट न आये। किसी भी समय देश के विकास और भारत की अन्य महान भाषाओं के विकास में यह बाधा न बने। हम इस प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं। श्री गोपालास्वामी आयंगर ने जो योजना आपके समक्ष रखी है यदि उसमें सम्मिलित सिद्धांतों को हम समग्र रूप में देखें तो उससे इस उद्देश्य की पूर्ति होती है। इससे भारत के दक्षिण भाग से आने वाले लोगों का हित साधन नहीं होगा बल्कि यह समग्र रूप से भारत के लोगों के हित में होगा।

हमारे पास अंग्रेजी को हटाने के लिए 15 वर्ष का समय है। पर अंग्रेजी हटाई कैसे जायेगी? इसे धीरे-धीरे हटाना होगा। हमें इस बात का फैसला करना होगा कि क्या भारत में किन्ही विशेष प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग इसके बाद भी जारी रखा जाये। हमने ब्रिटिश शासन से मुक्ति पाई है और इसका कारण था। पर अंग्रेजी भाषा से छुटकारा पाने का कोई कारण नहीं है। हम भली प्रकार जानते हैं कि अंग्रेजी शिक्षा की हमारे देश में क्या अच्छाइयाँ और बुराइयाँ रही हैं। किन्तु हमें अंग्रेजी के भावी प्रयोग के बारे में निष्पक्षता और देश की आवश्यकता को ध्यान में रख कर फैसला करना होगा। यही वह भाषा है जिसके कारण हमने कई उपलब्धियां प्राप्त की हैं। अंग्रेजी ने भारत के राजनीतिक एकीकरण में जो भूमिका निभाई है यह महत्वपूर्ण है। इसी से राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने में हमें मदद मिली है। इसी ने विश्व के सभ्य देशों के द्वार हमारे लिये खोले हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में ज्ञान प्राप्त करने में भी यह सहायक रही है जो अन्यथा हमें उपलब्ध नहीं होता। हमारे वैज्ञानिकों और तकनीकी विशेषज्ञों ने जो कार्य किया है उस पर आज हमें गर्व है।

यदि हम इस देश की अंग्रेजी भाषा को जो भूमिका निभानी है उसे संकीर्ण भावना से देखेंगे तो मैं समझता हूं कि हम हीन भावना के शिकार होंगे। आज राजनीतिक प्रयोजनों या राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति के प्रशासन के लिये अंग्रेजी भाषा के प्रयोग का प्रश्न ही नहीं उठता। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का उत्तरोत्तर किस प्रकार प्रयोग हो, यह बात स्वतंत्र भारत के हम प्रतिनिधियों पर निर्भर है। साथ ही हमें यह भी देखना है कि अंग्रेजी को हम धीरे-धीरे कैसे हटा सकते हैं। यदि कुछ प्रयोजनों या चढ़ाने के लिये हमें अंग्रेजी भाषा का प्रयोग सदैव जारी रखना पड़े तो हमें उसके लिये शर्मिन्दा नहीं होना चाहिये।

कतिपय मामले ऐसे हैं जिनके बारे में हम व्यक्तिगत अथवा वर्गीय हित में नहीं बल्कि समूचे देश के हित में बोलना आवश्यक समझते हैं।

जहां तक क्षेत्रीय भाषाओं का संबंद्ध है, मुझे खुशी है कि इस संशोधन द्वारा भारत की प्रमुख क्षेत्रीय भाषाओं की एक सूची को स्वयं संविधान में सम्मिलित किये जाने का प्रस्ताव है। मुझे आशा है कि हम संस्कृत को भी सम्मिलित करेंगे। मैं यहां स्पष्ट रूप से विचार व्यक्त करूंगा। ऐसा क्यों है कि गैर हिन्दी भाषी राज्यों के अनेक लोग हिन्दी से कुछ भयभीत हो रहे हैं? हिन्दी के समर्थक यह बात कहने के लिए मुझे क्षमा करेंगे कि यदि वे अपनी मांगों और हिन्दी के प्रवर्तन के प्रति इतना आक्रामक रवैया न अपनाते तो भारत की समूची जनसंख्या के त्वरित और स्वैच्छिक सहयोग के फलस्वरूप उन्हें आशा से भी अधिक प्राप्ति हो सकती थी। लेकिन दुर्भाग्य से ऐसी आशंका व्यक्त की गयी है और कई क्षेत्रों में तो यह आशंका कार्य रूप मैं परिणत भी हो गयी है, क्योंकि वहां अन्य भाषायें, जो किसी भी प्रकार से हिन्दी से घटिया नहीं हैं, बोलने वालों को उन सुविधाओं से भी वंचित कर दिया गया है जो कि अत्यधिक घृणास्पद विदेशी शासन भी नहीं कर सकता था।

इस संविधान सभा में हिन्दी भाषी राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वालों से मेरा इतना कहना हैं कि हम हिन्दी को स्वीकार करते हैं परन्तु उन्हें भी अपने भारी उत्तरदायित्व को समझना होगा। मुझे खुशी हैं कि कुछ सप्ताह पूर्व हिन्दी साहित्य सम्मेलन की एक बैठक में यह संकल्प पास किया गया कि हिन्दी भाषी राज्यों में एक या अधिक अन्य भारतीय भाषाओं के अनिवार्य अध्ययन की व्यवस्था की जायेगी। यह बात केवल एक पवित्र संकल्प ही नहीं रहनी चाहिए। पंडित गोविन्द बल्लभ पन्त, बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, बाबू श्रीकृष्ण सिन्हा और पं० रविशंकर शुक्ल जैसे नेताओं को यह सुनिश्चित करना होगा कि अगले कुछ महीनों में, यदि आवश्यक हो तो संविधि द्वारा भी, उनके क्षेत्रों में अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रीय भाषाओं को उचित मान्यता दी जाए, विशेषरूप से उन क्षेत्रों में जहां उन भाषाओं को बोलने वाले लोग रहते हैं। मैं रुचिपूर्वक यह देखूंगा कि यह सुविधाएं किस प्रकार दी जाती हैं और बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन के नेतृत्व में सर्वसम्मति से पारित यह संकल्प बिहार तथा उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में किस प्रकार लागू किया जाता है।

हिन्दी से क्या तात्पर्य है? इस बारे में बहुत सी बातें कही जा रही हैं। सांविधिक उपबन्धों द्वारा गठित कृत्रिम राजनीतिक शक्तियों या अन्य शक्तियों द्वारा किसी भाषा को कोई आकार नहीं दिया जा सकता। वर्तमान विवादों अथवा व्यक्तियों के, चाहे वे कितने ही बड़े अथवा विख्यात क्यों न हों, होते हुए भी किसी भाषा को स्वभाविक ढंग से आकार मिलता है। यह लोगों की इच्छा है जो परिवर्तन लाती है। यह परिवर्तन स्वभाविक रूप से और प्रायः किसी पूर्व कल्पना के होता है। संविधान सभा का संकल्प किसी भाषा की सर्वोच्चता के बारे में फैसला नहीं कर सकता। यदि आप चाहते हैं कि हिन्दी वास्तव

2158|LS

में अखिल भारतीय भाषा बने और केवल कुछ सरकारी कार्यों के लिए ही अंग्रेजी का स्थान ग्रहण न करे तो आप हिन्दी को उस स्थान के योग्य बनाइये और न केवल संस्कृत से बल्कि अन्य सहयोगी भारतीय भाषाओं से स्वाभाविक रूप से आने वाले शब्दों और मुहावरों को उसमें खपाया जाए। हिन्दी की उन्नति में बाधक न बने। मैं अपने बंगाली अंदाज से हिन्दी बोल सकता हूं। महात्मा गांधी अपने ढंग से हिन्दी बोलते थे, सरदार पटेल गुजाराती ढंग से हिन्दी बोलते हैं। यदि उत्तर प्रदेश या बिहार से मेरे मित्र यह बात कहते हैं कि जो उन्होंने निधारित किया है वही असली हिन्दी है और जो उस ढंग से हिन्दी नहीं बोल पाता तो उसका उपहास किया जायेगा। यह बात न केवल हिन्दी के लिए वरन् देश के लिए भी बहुत बुरी होगी।

मुझे आशा है कि भारत सरकार द्वारा एक भाषा अकादमी स्थापित की जायेगी और इसी प्रकार की अकादमियां भारत के अन्य क्षेत्रों में भी स्थापित की जायेंगी, जहां, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का सुचारू तथा सुव्यवस्थित अध्ययन किया जायेगा, जहां तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन होगा देवनागरी लिपि की चुनी हुई पुस्तकों का सभी भारतीय भाषाओं में प्रकाशन होगा और जहां विशेष रूप से वाणिज्यिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक और तकनीकी प्रयोजनों के लिए निष्पक्ष रूप से शब्दावली तैयार की जायेगी। इस मामले में हमारी विचारधारा संकुचित नहीं होनी चाहिए। अपने विश्वविद्यालय में अपनी मातृभाषा को उचित स्थान दिलाने के लिए मैंने अपनी छोटी सी भूमिका निभाी है। यह कार्य लगभग 60 व्रर्ष पूर्व मेरे पूज्य पिताजी द्वारा आरंभ किया गया था। और 15 वर्ष बाद उसे पूरा करने का दायित्व मेरे हिस्से में आया। कलकत्ता ने बेझिझक सभी भाषाओं को मान्यता दे दी। हमने संकुचित भावनाओं से नहीं बल्कि भविष्य में प्रगति की दृष्टि से शब्दावली का चुनाव किया है। आज यदि यह कहा जाता है कि सभी तकनीकी शब्दावली का प्रयोग हिन्दी में किया जायेगा तो ऐसा आप हिन्दी भाषी राज्यों में कर सकते हैं। बंगाल, गुजरात और महाराष्ट्र का क्या होगा? क्या वे भी अपने राज्य की भाषाओं में तकनीकी शब्दों का प्रयोग करें। यदि ऐसा हुआ तो राज्यों के बीच विचारों और शिक्षा सुविधाओं के आदान-प्रदान का क्या बनेगा? उन लोगों का क्या होगा जो शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेशों में जाते हैं। मैं चाहता हूं कि आप इन प्रश्नों पर विचार करें। हमें केवल भावनाओं में नहीं बहना चाहिए। निसंदेह मैं कुछ भावनाओं पर गर्व करता हूं। मैं इस बात के लिए उत्सुक हूं कि ऐसी एक भाषा हो जो धीरे-धीरे भारत के सभी लोगों द्वारा न केवल बोली जाए बल्कि वह ऐसी भाषा हो जिसमें भारत सरकार का सभी सरकारी कार्य किया जा सके और सभी उसका प्रयोग करें। हम इस बात से सहमत हो गये हैं कि वह भाषा हिन्दी होगी। परन्तु साथ ही में हमें कदम-कदम पर समायोजन करना होगा ताकि हमारे राष्ट्रीय हितों को हानि न हो और राज्यों की भाषाओं को भी आघात न पहुंचे।

यदि आप इस प्रकार चलेंगे तो मुझे बिल्कुल संदेह नहीं है कि हमें 15 वर्षों तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी और सभी राज्यों के लोग हमारी बात से सहर्ष सहमत हो जायेंगे और हमारे निर्णय को लागू किया जा सकेगा।

अन्त में मैं कुछ शब्द अंकों के बारे में कहना चाहता हूं। अंकों के बारे में कई बातें कही गयी हैं लेकिन यह जो सुझाव दिया गया है। वह दक्षिण भारत से आने वाले लोगों के संकीर्ण हित में नहीं है। इस बात को सभा के सभी पक्षों को समझ लेना होगा। जब तक हम अन्यथा निर्णय न ले लें तब तक अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को जो अपने, जो वास्तव में अपनी मूल धरती पर वापस लौट आये हैं। प्रयोग करते रहना अति आवश्यक है। ऐसा आगामी कई वर्षों तक किया जाना चाहिए। बाद में यदि आयोग की सिफारिश पर राष्ट्रपति यह अनुभव करते हैं कि परिवर्तन किया जाना है तो ऐसा किया जा सकता है। आपके पास अपने आंकड़े हैं और आपको अपना वैज्ञानिक कार्य करना है। हमारे वाणिज्यिक उपक्रम, बैंक, खाते और लेखापरीक्षा का कार्य होता है। इन सभी में अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का प्रयोग होना आवश्यक है।

मेरे कुछ मित्र मुझसे पूछते हैं कि जब आप हिन्दी भाषा को ले रहे हैं तो ऐसे अंकों को भी क्यों नहीं स्वीकार कर लेते जोकि मिलते-जुलते हैं। प्रश्न तीन या चार अंकों को जानने का नहीं है। मुझे विश्वास है कि सभी को हिन्दी अंकों का ज्ञान हो जायेगा जिनका आरंभ से प्रयोग किया जायेगा। लेकिन प्रश्न उन कार्यों के लिए उनके प्रयोग का है, जिनके विषय में हम समझते हैं कि उनका प्रयोग उचित नहीं है। मेरे कुछ हिन्दी भाषी मित्रों ने पूछा है कि हमें अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का प्रयोग करने के लिए विवश क्यों किया जा रहा है। हम बिहार, मध्य प्रान्त या उत्तर प्रदेश में हिन्दी अंकों के प्रयोग पर रोक नहीं लगा रहे क्योंकि वहां हिन्दी राज्य की भाषा है। स्पष्ट है कि हिन्दी अंकों को एक बड़ी भूमिका निभानी है लेकिन यदि हम अंतर्राष्ट्रीय अंकों का ज्ञान प्राप्त कर अखिल भारतीय स्तर पर उन्हें सरकारी कार्यों के लिए अपनाते हैं तो उसमें क्या हानि है? उससे तो उच्च शिक्षा में सुविधा ही होगी। यदि कुछ लोग अखिल भारतीय स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय अंकों के प्रयोग के विरुद्ध हैं और हिन्दी अंकों के अतिरिक्त उन अंकों को मान्यता देने के विरुद्ध हैं क्योंकि वह समझते हैं कि हिन्दी उनके प्रांत की भाषा है और उसे सभी के द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए तब भी उन्हें उठकर कहना चाहिए कि अपनी निजी भावनाओं के बावजूद वह इस समझौते को स्वीकार करते हैं और संकल्प का अनुमोदन करते हैं।

पिछले कई वर्षों में हमने इस सभा में अनेक महत्वपूर्ण संकल्प पास किये हैं। हमने संकटों का मिल कर सामना किया है। यदि स्वतंत्र भारत की संविधान सभा जिसमें एक राजनीतिक दल का वर्चस्व है, इस मामले पर बट जाती है तो यह बचपना होगा। इससे

हम हंसने के पात्र बन जायेंगे और सारा भारत तथा हम शत्रुओं के हाथ मजबूत करेंगे। हमें मतभेदों पर नहीं बल्कि अपनी सामूहिक लक्ष्य की पर्याप्त उपलब्धियों पर बल देना चाहिए। आओ हम संसार को बतायें कि हमने विद्वेष के बिना सर्वसम्मति से इतना कुछ प्राप्त कर लिया है। हम इस मामले पर राजनीतिक दृष्टि से न सोचें।

यह देखकर दुख होता है कि कुछ क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को स्वीकार करने का मामला राजनीतिक रूप ले चुका है। यह उन प्रान्तों के नेताओं पर निर्भर करता है कि वह उठकर साहस के साथ कहें कि हमने यह समझौता भारत की भलाई के लिए स्वीकार कर लिया और वे सब एकजुट रहेंगे। यदि नेता ऐसा कहते हैं तो मुझे बिल्कुल भी संदेह नहीं कि लोग इसे स्वीकार कर लेंगे। जिन राज्यों में राज्य विधान मंडलों ने हिन्दी या देवनागरी अंकों को प्रयोग में लाने या अखिल भारतीय स्तर पर उनका प्रयोग करने का निर्णय लिया है वहां हमने इन अंकों के प्रयोग पर प्रतिबंध नहीं लगाया है। हमने केवल यह सिफारिश की है कि इस न्यायोचित फार्मूले को स्वीकार कर लिया जाए। मुझे आशा है कि चर्चा समाप्त होने से पहले भिन्न मत रखने वाले सभी लोग इकट्ठे बैठकर विचार करेंगे और सभा के सामने यह घोषणा करेंगे कि श्री एन० गोपालास्वामी अयंगार के प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार किया जा रहा है।

8

भारत तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति

भारत सरकार की विदेश नीति पर बोलते हुए कोई भी आज संपूर्ण विश्व के समक्ष जो विकट स्थिति है उससे स्वाभावतः अभिभूत हो जायेगा। मैं इस समस्या पर न केवल विश्व में व्यापत स्थिति के संदर्भ में बोलूंगा अपितु अपने देश की रक्षा और सुरक्षा को भी ध्यान में रखूंगा, क्योंकि मैं महसूस करता हूं कि देश की स्थिति भी उतनी ही अहम है, जितनी विश्व की।

इस सभा में या इस देश में कोई ऐसा नहीं होगा जो युद्ध को टालने के लिए प्रधानमंत्री ने जो कुछ कहा है उसका समर्थन नहीं करेगा। वस्तुतः जैसा उन्होंने कहा है विश्‍व का कोई ऐसा देश नहीं होगा या किसी भी देश में रहने वाले ऐसे नहीं होंगे जो उसी बात को नहीं कहेंगे। फिर भी हम युद्ध की ओर बढ़ रहे हैं। प्रधानमंत्री ने सभा से भी कहा है कि हमें अपनी भाषा का चयन, विशेषकर अन्य देश के मामलों पर बोलते हुए, सावधानी से करना चाहिए तथा वर्तमान विस्फोटक स्थिति को और कठिन नहीं बनाना चाहिए। इसके साथ ही यह भी जरूरी है कि हम स्पष्ट बात करें, विशेषकर उन बिन्दुओं पर जिनमें हम समझते हैं कि भारत सरकार की नीति पर परिवर्तन की आवश्यकता है।

हम शांति चाहते हैं हम युद्ध से बचना चाहते हैं हम बातचीत की नीति अपनाना पंसद करेंगे। हम शांत से रहना चाहेंगे, पर उतना नहीं जितना प्रधानमंत्री ने कहा है। साथ ही हमें अपनी नीति से भटकना भी नही चाहिये।

संसदीय वाद-विवाद, 6 दिसम्बर, 1950 स्त० 1279-1286

हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि हम सही समय पर निर्णय लें। हमें हर एक को खुश करने की चाह से बचना चाहिए। यह एक बहुत खतरनाक शौक है और इस का परिणाम भी वही होगा जो उस यात्री का हुआ था जिसे अपने पुत्र और गधे के साथ एक जर्जर पुल को पार करना पड़ा था। हालांकि वह यात्री नैतिक मूल्य में विश्वास रखता था, परन्तु उस का दोष यह था कि वह दूसरों के कहने पर चलता था। कुछ दूर तक उस ने स्वयं गधे पर सवारी की और फिर दूसरों के कहने पर अपने पुत्र को गधे पर बैठा

दिया तथा फिर दोनों गधे पर बैठ गये और तदुपरान्त पिता-पुत्र ने गधे को अपने कन्धों पर रख लिया जिस के परिणामस्वरूप उनको अपने गधे से हाथ धोना पड़ा। यदि हम इसी नीति पर चलते रहे तो हमें गधे से हाथ धोना पड़े न पड़े, हम अपने देश से हाथ धो बैठेंगे। अतः इस विकट समय में हमें इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिए कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में हमारा दृष्टिकोण और नीति क्या होनी चाहिए।

कोरिया के संबंध में, मैं अधिक विस्तार से कुछ नहीं कहना चाहता। परन्तु इतना अवश्य कहूंगा कि इस समस्या के बारे में भी हमारे दृष्टिकोण में कुछ परस्पर-विरोधी बातें हैं। प्रधान मंत्री ने आज इस बात पर जोर दिया है कि चीन की अवेहलना कर के कोरिया के बारे में कोई समझौता संभव नहीं है। इस बात पर अवश्य गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। परन्तु जब भारत के सुरक्षा परिषद् के समक्ष उत्तर कोरिया को आक्रमक घोषित करने संबंधी संकल्प का समर्थन करने का निर्णय लिया था, तो यह सर्वविदित था कि उत्तर कोरिया को किस का समर्थन प्राप्त है। उत्तर कोरिया की अपनी कोई स्वतंत्र हैसियत नहीं है। उत्तर कोरिया को चीन का समर्थन प्राप्त था और अन्ततः उसे सोवियत रूस का भी समर्थन प्राप्त हो गया। परन्तु हम उत्तर कोरिया को आक्रमक घोषित करने में नहीं हिचकिचाये और इस प्रकार युद्ध में कूद पड़े। अब यदि हम चीन को उत्तर कोरिया के बारे में संतुष्ट करना चाहते हैं, तो चीन हम से अपनी शर्तें मनवायेगा। कुछ समय पूर्व जब हम ने कोरिया के बारे में संसद् में चर्चा की थी तो मैंने अपने भाषण में इस बात का उल्लेख किया था। सवाल यह है कि क्या दक्षिण कोरिया और उत्तर कोरिया के बीच युद्ध आपसी लड़ाई है या इससे कुछ अधिक है? संयुक्त राज्य अमरीका ने जो रवैया अपनाया है, मैं उस का समर्थन करता हूं। संयुक्त राज्य अमरीका इसे केवल दक्षिण कोरिया पर उत्तर कोरिया का आक्रमण ही नहीं समझता है परन्तु उस का कहना है कि इसकी पृष्ठि भूमि में विचार धारा का संघर्ष भी विद्यमान है।

इस समय कोरिया युद्ध को सीमित रखने के प्रयास किये जा रहे हैं। हम चाहते हैं कि ऐसा ही हो। परन्तु इसमें भी किसी को मुंह की खानी पड़ेगी। चीन ने यह दिखा दिया है कि वह तिरस्कृत प्राच्य के पक्ष में नहीं है, चाहे इसका जो भी कारण हो तथा उसके पास समुचित शक्ति है जिससे वह युद्ध भूमि में संयुक्त राज्य अमरीका तथा अन्य मित्र देशों की अच्छी से अच्छी सेनाओं का मुकाबला करने में सक्षम है। यह स्वभाविक ही है कि हमारी सहानुभूति संयुक्त राज्य अमरीका के साथ है, क्योंकि इस समय उसकी आधी से अधिक शांति सेना कोरिया के युद्ध क्षेत्र में है और अमरीका ये दावा कर रहा है कि वह यह युद्ध अपनी ओर से नहीं लड़ रहा है अपितु लोकतंत्र के पक्ष में लड़ रहा है। हमें यह निश्चय करना होगा कि वस्तुतः इस संबंध में हमारा दृष्टिकोण क्या है। प्रधान मंत्री ने चीन का उल्लेख किया था। जहां तक चीन का संबंध अपने लोगों को मुक्त कराने की

उसकी तीव्र इच्छा से संबंधित है चीन के साथ हमारा कोई झगड़ा नहीं है। हर व्यक्ति को चीन के साथ सहानुभूति होगी परन्तु यदि चीन अपने लोगों को मुक्त कराने के साथ-साथ अन्य लोगों को मुक्ति की जिम्मेदारी भी अपने ऊपर ले लेता है तो इससे पेचीदिगियां पैदा होंगी, जिसका प्रभाव ने केवल चीन पर अपितु शेष विश्व पर, विशेषतया एशिया पर पड़ेगा। ब्रिटेन के हाउस आफ कामन्स की कार्यवाही का वृतांत बहुत रुचिकर है। मिस्टर चर्चिल जैसे योद्धा और देश भक्त का विचार भी एशिया को बचाने से संबंधित नहीं है और न ही वह इस बात को महत्व देते हैं कि कोरिया का युद्ध वास्तव में एक परीक्षा स्थल है, परन्तु वह केवल इस बात पर महत्व देते हैं कि यदि कोरिया का युद्ध विश्व युद्ध का रूप धारण कर लेता है तो इसका यूरोप पर और विशेषकर ब्रिटेन पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यह एक वास्तविक दृष्टिकोण है। हमें इस समस्या पर विश्व शांति को ध्यान में रखते हुये विचार करना होगा परन्तु हमारा मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि इस संबंध में हमारी स्थिति क्या है।

चीन के साथ-साथ हमें तिब्बत के सवाल पर भी विचार करना होगा क्योंकि दोनों का आपस में गहरा संबंध है। प्रधान मंत्री ने स्वभाविक रूप से इस बात की ओर सभा का ध्यान आकर्षित किया था कि वर्तमान चीन सरकार को उसके वैध अधिकार को मान्यता प्रदान कराने के मामले में भारत ने कितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। परन्तु जहां तक तिब्बत का सवाल है तिब्बत पर चीन की थोड़ी बहुत प्रभुसत्ता रही हो या न रही हो ऐतिहासिक रूप से यह इतना सरल मामला नहीं है तथा जब भारत ने चीन से अनुरोध किया कि वह तिब्बत में हिंसा का रास्ता न अपनाये तो चीन ने क्या उत्तर दिया था। चीन ने जो उत्तर दिया उससे भारत सरकार को बड़ा दुख और आश्चर्य हुआ। मुझे ज्ञात नहीं है कि इस बात से चीन की तिब्बत संबंधी नीति पर कोई प्रभाव पड़ा या नहीं पड़ा परन्तु मैं यह जानना चाहता हूं कि तिब्बत के संबंध में भारत की निश्चित नीति क्या है। प्रधान मंत्री ने इसका कोई संतोषप्रद उत्तर नहीं दिया। उन्होंने यही कहा है कि हमने चीन से पुनः अनुरोध किया है कि वह तिब्बत में शांति का रास्ता अपनाये परन्तु सवाल यह है कि इस अनुरोध से उनके रवैये में क्या फर्क पड़ा है? कोरिया की भांति जिस भी देश में तथा-कथित मुक्ति आन्दोलन आरम्भ हुआ, उन सभी देशों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। यह अभियान उस रोगी की कहानी के समान है जिसका आपरेशन तो सफल हो गया परन्तु रोगी मर गया। लोगों को जिन कठिनाईयों का सामना करना पड़ा वे अवर्णनीय हैं। आज के समाचार पत्रों में हमने उस ब्रिटिश संवाददाता का जो उत्तर कोरिया की राजधानी छोड़ने वाले संवाददाताओं में अंतिम संवाददाता था, विस्तृत लेख पढ़ा है जिसमें उसने लिखा है कि सब कुछ जल रहा था और इससे सर गुई फोक्स के कुछ कारनामों की याद आ गई। इसी प्रकार हमने बार-बार चीन से अनुरोध किया कि

वह तिब्बत में हिंसा का रास्ता न अपनाये परन्तु चीन ने एक नहीं सुनी। चीन की कार्यवाही के पीछे उसकी नीति क्या है? हमें इस बात को नजरअंदाज नहीं करना चाहिये क्योंकि यह केवल तिब्बत के लोगों का ही मामला नहीं है अपितु इसमें भारत की रक्षा का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। यह सही है कि भारत ओर चीन के बीच सीमा का रेखांकन अभी तक पूरी तरह निश्चित नहीं है। प्रधान मंत्री ने हाल में कहा था कि हम मैक मोहन रेखा मानते हैं, परन्तु चीन के मानचित्रों में जो कि अब भी परिचालन में हैं, आसाम, लद्दाख और लेह के कुछ भागों को दिखाया गया है जो कि भारत के हिस्से हैं। चीन ने भारत को जो उत्तर भेजा है उससे निश्चित रूप से यह ज्ञात होता है कि चीन जिसे अपनी सीमा समझता है उस पर कायम रहने के लिये हर कार्यवाही करेगा और इसमें तिब्बत तथा तिब्बत की अप्रभाषित सीमा, जो भारत से जुड़ी हुई है, शामिल हैं। इसी प्रकार नेपाल के मामले में भी प्रधान मंत्री ने कुछ अधिक नहीं कहा हालांकि उन्होंने एक-दो कड़े शब्दों का प्रयोग अवश्य किया है। पाकिस्तान के संबंध में हमारी नीति यह होनी चाहिए कि हम सब्र से काम लें, चीन के प्रति हमारी नीति मित्रता की होनी चाहिए और तिब्बत के संबंध में चाहे हम आत्मसमर्पण की नीति अपनाये परन्तु नेपाल के संबंध मे यह अवश्य स्पष्ट किया जाना चाहिए कि हम किसी बाहरी शक्ति का हस्तक्षेप बरदाश्त नहीं करेंगे तथा हिमालय के उस ओर किसी का भी जाना हमें सहन नहीं होगा। नेपाल में हमारे अत्यधिक हित निहित हैं। इससे हमारी सुरक्षा का सवाल जुड़ा हुआ है। परन्तु नेपाल के बारे में भी हम कोई निर्णय नहीं कर पा रहे हैं। हमें पता ही नहीं है कि नेपाल के संबंध में हमारी स्थिति क्या है। नेपाल में एक सशक्त और स्थाई सरकार होनी चाहिए, जिसे वहां के लोगों का समर्थन प्राप्त हो। यदि नेपाल में गृह युद्ध जारी रहता है जो इससे भारत को कोई लाभ नहीं होगा परन्तु चीन तिब्बत के जरिए एशिया के इस हिस्से में तहलका मचा देगा।

मैं प्रधान मंत्री से यह प्रार्थना करना चाहता हूं कि वह इस बात को समझे कि अब समय आ गया है जबकि हमें मुख्य प्रश्नों के संबंध में निर्णय करने होंगे और इससे पहले कि बहुत अधिक देर न हो जाये कार्यवाही करनी होगी।

मैं व्यक्तिगत रूप से यह महसूस करता हूं कि हमारा विश्व बहुत विशाल है जिसमें हम सब शांति से रह सकते हैं। यह भी स्वाभविक है कि विश्व के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न विचारधारायें हों। यदि कोई यह सोचता है कि विश्व में केवल एक ही प्रकार की विचारधारा हो तथा एक ही पद्धति हो तो यह पागलपन है। जब तक किसी विशेष देश के लोग या वहां की सरकार ये निर्णय करती है कि उसकी कार्यवाहियां उस देश की सीमाओं के भीतर तथा उस देश के लोगों के संबंध में इस प्रकार की होंगी इसमें कोई गलती नहीं है। देश की सीमाओं के भीतर वह जो पद्धति अपनाना चाहे अपना सकती

है। विश्व के देशों को इस बात से कोई सरोकार नहीं होना चाहिए कि किस देश में क्या पद्धति अपनाई गई है। कठिनाई तब पैदा होती है जबकि विचारधाराओं तथा सिद्धातों को शांतिपूर्वक ढंग से अथवा हिंसा द्वारा दूसरे देशों पर थोपा जाता है जिससे उन देशों की व्यवस्था बिगड़ जाती है और विश्व के सामने एक चुनौती पैदा हो जाती है।

आज संसार में क्या हो रहा है? विश्व सत्ता, दूसरों पर अधिकार और सम्मान की भूख से ग्रस्त है। विश्व में इन तीनों का अधिपत्य है। वस्तुतः हम खुले रूप से किसी पक्ष के पक्षधर नहीं हैं और हम नहीं चाहते कि हमें कोई किसी का पिछलगू कहे क्योंकि हमारा अपना दर्शन है और अपनी विचारधारा है। भारत का सिद्धान्त है कि 'जियो और जीने दो'। परन्तु साथ-साथ सोचना यह है कि यदि खतरे का संकेत मिलता है तो भारत को क्या करना है? हिमालय के साथ 2000 मील की सीमा को हमेशा से पूर्णतया सुरक्षित समझा जाता रहा है और इसके लिए सुरक्षा की कोई पृथक व्यवस्था नहीं की गई, परन्तु अचानक यह सीमा महत्वपूर्ण हो गई है और इसी मार्ग से हमारे देश में घुसपैठ हुई। हमें देखना यह है कि हम अपनी रक्षा कैसे करें? इसका प्रभाव भारत की आन्तरिक स्थिति पर भी बहुत अधिक पड़ता है। हमारी आर्थिक स्थिति में निरन्तर गिरावट हमारी आन्तरिक सुरक्षा और बाहरी हस्तक्षेप अथवा आक्रमण को रोकने की क्षमता में एक बहुत बड़ी रुकावट है। मेरा साम्यवादी विचारधारा से कोई विशेष विरोध नहीं है। भारत की जनता जो भी व्यवस्था अपनाना चाहे अपना सकती है। परन्तु हम लोकतंत्र में विश्वास करते हैं। हम कोई बाहरी हस्तक्षेप बर्दास्त नहीं करेंगे। मैं इंग्लैण्ड अथवा अमरीका की विचारधाराओं का उल्लेख नहीं कर रहा हूं और न ही मुझे इस बात से कोई संबंध है कि वे क्या गलतियां कर रहे हैं। परन्तु कतिपय मूलभूत विचारधारायें हैं जिनका भारत पूर्णतया समर्थक और पक्षधर है। हम अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, विचार की स्वतंत्रता, संघ बनाने की स्वतंत्रता और धर्म की स्वतंत्रता के पक्षधर हैं तथा हमारा संविधान लोकतंत्र के स्वस्थ सिद्धांतों पर आधारित है। अतः भारत किसी ऐसे सिद्धांत को स्वीकार नहीं कर सकता जिसके साथ तानाशाही जुड़ी हुई हो। यदि लोकतंत्र और तानाशाही के बीच कोई संघर्ष होता है तो हम मूक दर्शक बने नहीं रह सकते। हमें हर संभव तरीके से हर समस्या का हल बातचीत द्वारा निकालने का प्रयास करना चाहिये परन्तु यदि अन्ततः संर्घष का सामना करना ही पड़े तो भारत क्या करेगा? यदि भारत पर खतरा मंडराता है और आक्रमण होता है तो क्या भारत स्वंय अकेला किसी बड़े हमले का मुकाबला कर सकेगा? हमारे लिये यह एक बहुत महत्व का प्रश्न है। मैं इस समय अधिक कुछ न कहते हुये प्रधानमंत्री से इतना अवश्य कहना चाहता हूं कि भारत के लोग ये आशा करते हैं कि विदेश नीति के संबंध में हम वास्तविक रुख अपनायें। इसमें कोई संदेश नहीं कि हम शांति के पक्षधर हैं परन्तु हमारी विदेश नीति में जो विसंगतियां और परस्पर विरोधी बातें हैं उनसे हम रास्ता भटक

रहे हैं और यह भारत के लिये घातक सिद्ध हो सकता है। इस बारे में हम जितनी जल्दी विचार करें उतना ही बेहतर होगा।

अन्त में मैं पाकिस्तान के बारे में कुछ कहना चाहूंगा। प्रधान मंत्री ने पाकिस्तान के बारे में कुछ नहीं कहा। उन्होंने एक ही वाक्य में पाकिस्तान की बात टाल दी।

जहां तक पाकिस्तान का संबंध है देखना यह है कि वास्तव में पाकिस्तान के संबंध में हमारी नीति क्या है? जैसाकि मैंने बार-बार कहा है भारत और पाकिस्तान के बीच एक स्पष्ट नीति होनी चाहिए समझा जाता है कि काश्मीर में पाकिस्तान के साथ हमारा युद्ध हो रहा है। पाकिस्तान आक्रमक है परन्तु जो कोरिया के बारे में सही है वह पाकिस्तान के बारे में नहीं है। हम हर बात में पाकिस्तान के साथ समझौते की नीति अपनाने का प्रयास कर रहे हैं। हमारी नीति परस्पर व्यवहार पर आधारित होनी चाहिए। यदि पाकिस्तान हमारे साथ सही व्यवहार करता है तो हमें पाकिस्तान के साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए। परन्तु यदि पाकिस्तान हमारे साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता तो पाकिस्तान के साथ बातचीत की नीति अपनाने और अंततः शर्मिंदा होने तथा कमजोर बनने से कोई लाभ नहीं है। पूर्वी पाकिस्तान के बारे में मैं विस्तार से कुछ नहीं कहना चाहता। इस संबंध में प्रधान मंत्री केवल इतना ही कह सकते हैं कि औसत तौर पर लगभग 2000 व्यक्ति प्रतिदिन पूर्वी पाकिस्तान को वापिस जा रहे हैं। परन्तु वे वहां क्यों जा रहे हैं और किन हालत में रह रहे हैं तथा उन्हें किस-किस अपमान का सामना करना पड़ रहा है, इस संबंध में उन्होंने कुछ भी नहीं कहा है। प्रधान मंत्री को मुझसे इस बारे में अधिक जानकारी है कि पूर्व पाकिस्तान में हिन्दुओं को किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है? अपने भाषण में उन्होंने कहा था कि चाहे जो हो भारत जाति तथा धर्म के आधार पर दक्षिण अफ्रीका में भेदभाव से सहमत नहीं हो सकते। परन्तु जब उन लोगों का सवाल आता है जिनकी निष्ठा अविभाजित भारत में हमारे साथ थी जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया तो यह स्वभाविक ही है कि वे सहायता के लिए और सुरक्षा के लिए भारत की ओर देखें। मैं जानना चाहता हूं कि इस बारे में हमारी नीति क्या है? क्या हम इतने कमजोर हैं कि केवल देखते रहें और प्रार्थना करते रहें? इस समय आवश्यकता इस बात की है कि भारत के लोगों को सरकार से समुचित मार्गदर्शन मिलना चाहिए। भगवान न करे, यदि स्थिति बिगड़ जाती है तो भारत की रक्षा के लिए जितने हथियारों एवं सेना की आवश्यकता है उतनी ही जनता की एकता की आवश्यकता है। मुझे कल यह सुनकर बड़ा दुख हुआ कि प्रधान मंत्री ने बड़े क्रुद्ध स्वर में यह उत्तर दिया था कि वह रक्षा व्यय को कम कर रहे हैं। इस बारे में यहां विस्तार पूर्वक विचार नहीं हुआ है। यदि रक्षा व्यय को कम करने का अर्थ भारत की सैनिक स्थिति को कमजोर करना है तो मैं कहना चाहता हूं कि भारत सरकार की यह राष्ट्र की प्रति सबसे बड़ी कुसेवा होगी। आज हमें दो चीजों

की अत्यधिक आवश्यकता है। हमें अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाना है और यदि हम अकेले ऐसा नहीं कर सकते तो हमें उन अन्य देशों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए जो रक्षा के मामले में हमारा साथ दे सकें और जिनकी विचारधारा हमसे मिलती हो। दूसरे हमें अपने प्रयासों से तथा दूसरों की सहायता से अपनी आंतरिक शक्ति को मजबूत करना है और अपनी आर्थिक समस्याओं को शांतिपूर्वक एवं संतोषजनक ढंग से हल करना है, ताकि हम ऐसी एकता एवं अखण्डता का निर्माण कर सकें, जो राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय तौर पर अभेद्य हो।

9

निवारक नज़रबन्दी*

लगभग एक वर्ष पहले जब मूल निवारक नज़रबंदी विधेयक पारित किया गया, मैं सरकार का एक सदस्य था और उस समय मुझे उन सभी परिस्थितियों की जानकारी थी जिनके कारण सरकार को सभा के समक्ष ऐसा कठोर विधान लाना पड़ा। इसके अलावा, मुझे पिछले दस महीनों के दौरान न केवल अपने प्रांत में अपितु पूरे देश में विशेष रूप से इस अधिनियम के कार्यकरण के बारे में विभिन्न दृष्टिकोण जानने का पर्याप्त अवसर मिला है। इस परिप्रेक्ष्य में ही मैं इस समस्या पर विचार करना चाहूंगा। इस मामले को हम हल्के मन से नहीं ले सकते। निस्संदेह माननीय गृह मंत्री ने स्वयं यह कहते हुए अपना भाषण आरंभ किया कि उन्होंने बहुत भारी मन से अपना प्रस्ताव पेश किया है। कोई भी यह नहीं चाहता कि बिना सुनवाई नागरिकों की नज़रबंदी का कोई प्रावधान किया जाये। विशेष रूप से इस सभा के माननीय सदस्य, जिनमें से बहुतों की अपने सक्रिय राजनैतिक जीवन के दौरान बिना सुनवाई नज़रबंदी की गई, और बहुत से अन्य लोग, जो पिछले शासन के दौरान इस तरह पीड़ित हुए, इस तरह का प्रावधान पसन्द नहीं करेंगे। वास्तव में बाहर के लोग—ऐसे लोग नहीं जो शरारत पैदा करना चाहते हैं बल्कि बहुत से ऐसे लोग जो सरकार द्वारा कठोर नीति अपनाये जाने के पक्षधर हैं, यह जान कर हक्के-बक्के रह जाते हैं कि वही लोग जो बिना सुनवाई नज़रबंदी करने वाली सरकार के हाथों पीड़ित हुए और वही लोग जिन्होंने ऐसे कानूनों का निरन्तर पुरज़ोर विरोध किया अब ऐसा कानून बनाना आवश्यक समझते हैं। कौन भारतीय उस देशव्यापी आंदोलन को भूल सकता है जो रौलट बिल लाये जाने पर हुआ? यह कौन भूल सकता है कि जलियांवाला बाग में जो बड़ी दुर्घटना हुई वह सुनवाई बिना नज़रबंदी के सिद्धांत के विरोध में गांधीजी द्वारा चलाये गये राष्ट्रव्यापी विरोध के कारण ही हुई?

साथ ही, हमें यह समझना होगा कि यदि हम देखते हैं कि इस समय देश में ऐसे

*संसदीय वाद-विवाद, 13 फरवरी, 1951, स्तम्भ 2782-2805

तत्व हैं जो जनता तथा समूचे देश के हितों के विरुद्ध काम कर रहे हैं तो हमें यह सोचना होगा कि हमें उनसे निपटने के लिए कौन से प्रतिबंधक उपाय करने चाहियें। यह बताया गया है कि सरदार पटेल भी, जब उन्होंने यह बिल, पुरःस्थापित किया, इससे खुश नहीं थे। वस्तुतः मुझे याद है कि किस भावात्मक ढंग से उन्होंने इस तथ्य का उल्लेख किया कि उन्हें कई रात नींद नहीं आई क्योंकि वह एक गृह मंत्री के रूप में अपने आप को नहीं ढाल सके जिन्हें बाध्य होकर अनुमोदन के लिए संसद के समक्ष ऐसा कठोर विधान लाना पड़ा। और उन्होंने यह आश्वासन दिया कि यद्यपि इसके कारण हैं जो बार-बार दिये गये हैं और मैं उनकी पुनरावृति नहीं करना चाहता—कि उस समय संसद के समक्ष जल्दबाज़ी में कोई विधान क्यों लाया गया, उनका यह प्रयास रहेगा कि एक सुविचारित विधेयक यथासंभव शीघ्र संसद के समक्ष रखा जाये। हम सरकार की कितनी ही आलोचना क्यों न करें, हमें यह मान लेना चाहिये कि संशोधनकारी विधेयक द्वारा बहुत ही महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं जो बेहतरी के लिए हैं अब सलाहकार बोर्ड सभी मामलों से निपट सकेगा। यह बात स्पष्ट नहीं है कि क्या इस खंड के अन्तर्गत ऐसे व्यक्तियों के मामले भी आयेंगे जिनको तीन महीने से कम के लिए नज़रबंद किया जाता है।

मुझे खुशी है कि सभी मामले, जिनमें तीन महीने से कम अवधि के लिए नज़रबंद किये गये व्यक्तियों के मामले भी शामिल हैं, सलाहकार बोर्ड के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आयेंगे। हमें इस प्रावधान के महत्व की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये क्योंकि संविधान के अंतर्गत भी सरकार के लिए तीन महीने से कम अवधि के लिए नज़रबंद किये गये व्यक्तियों के मामले सलाहकार बोर्ड के समक्ष रखना अनिवार्य नहीं है और यदि गृह मंत्री ऐसे मामलों को भी सम्मिलित करने का विचार रखते हैं तो यह निस्संदेह एक अच्छा परिवर्तन है।

हमें यह जानकर भी प्रसन्नता हुई है कि 'पैरोल' पर रिहाई का प्रावधान किया गया है क्योंकि हम जानते हैं कि बहुत से मामलों में ऐसे लोगों ने कष्ट उठाया है क्योंकि पहले ऐसा कोई प्रावधान नहीं था। सरकार ने जो परिवर्तन किये हैं उसके लिए मैं सरकार को बधाई देता हूं कुछ वक्ताओं ने यह कहा है कि ब्रिटिश सत्ता के हट जाने के कारण इस देश के प्रशासनिक ढांचे में एक परिवर्तन आया है और इसलिए, यद्यपि पिछले शासन के दौरान लोग ऐसा कानून बनाये

जाने का विरोध कर सकते थे, अब उस तरह की आपत्तियां नहीं की जानी चाहियें क्योंकि अब जनता के प्रतिनिधि सरकार के कार्य प्रभारी हैं।

इस तरह की विचारधारा, इस तरह के तर्क कुछ ज़िम्मेदार लोगों के मन में हैं। मैं नहीं समझता कि यह इस समस्या के प्रति सही दृष्टिकोण है। निस्संदेह जब हम एक अधीन देश थे, उस समय श्वेत लोगों ने हमें आतंकित किया किन्तु यदि कोई चीज़ उन दिनों खराब थी तो वह अब अच्छी या सहनीय नहीं हो जाती क्योंकि ऐसा श्वेत या अश्वेत कोई भी कर सकता है। इसके अलावा, यदि हम दूसरे देशों, जो स्वतंत्रता और स्वाधीनता के केन्द्र रहे हैं, विशेष रूप से इंग्लैंड और अमेरिका, जहां किसी विदेशी शक्ति का शासन नहीं रहा है, में हुई घटनाओं पर दृष्टिपात करें तो हमें पता चलेगा कि उन देशों के लोग और उनकी संसदों तथा विधानमंडलों में जनता के प्रतिनिधि कार्यपालिका को विशेष रूप से बिना सुनवाई नज़रबंदी के संबंध में निरंकुश शक्तियां देने में कितनी आनाकानी करते रहे हैं। इंग्लैंड में पिछले युद्ध के दौरान बंदी प्रत्यक्षीकरण, अधिकार याचिका जैसे सभी अधिकारों तथा विशेषाधिकारों को निलंबित कर दिये जाने पर ब्रिटेन के एक प्रसिद्ध न्यायाधीश ने, जिसे व्यक्तिगत स्वाधीनता का एक समर्थक समझा जाता था, कहा कि युद्ध एक ऐसी चीज़ है जो 'मैगनाकार्टा' के सिद्धांतों के अनुसार नहीं किया जा सकता। इसका औचित्य यह है कि आपातकाल के दौरान, जैसे कि युद्ध की स्थिति, उन सभी विशेषाधिकारों को पूरी तरह निलम्बित कर दिया जाना चाहिये जो ब्रिटेन में नागरिकों का जन्म सिद्ध अधिकार है। परन्तु इस मामले में भी यह महत्वपूर्ण परन्तुक जोड़ दिया गया था कि जहां कहीं नज़रबंदी की शक्तियों का प्रयोग किया जाना आवश्यक हो उनका प्रयोग केवल गृह मंत्री- गृह सचिव- द्वारा ही किया जाना चाहिये। इसका प्रयोग किसी अन्य व्यक्ति द्वारा नहीं किया जाना चाहिए और गृह मंत्री से ही, जैसा कि सभा को मालूम है, सार्वजनिक विवाद खड़ा होने पर नज़रबंदी के मामलों का औचित्य बताने के लिए प्रायः कहा जाता है। इसमें भी सलाहकार समिति का प्रावधान है और गृह सचिव द्वारा विभिन्न अवसरों पर सलाहकार समिति के समक्ष सभी उपलब्ध सामग्री रखने की तत्परता की घोषणा की गई है और नज़रबंद किये गये व्यक्ति को सलाहकार समिति के समक्ष उपस्थित होने और उसके समक्ष अपना दृष्टिकोण रखने की अनुमति दी गई है।

अमरीका में भी आपातकाल के दौरान बिना सुनवाई नज़रबंदी की जाती है किन्तु उच्चतम न्यायालय के बहुत से प्रसिद्ध न्यायाधीशों और अमरीकी जनमत के प्रवक्ताओं द्वारा यह विभेद किया गया है कि नज़रबंदी निवारक न कि दंडात्मक होनी चाहिए। वस्तुतः एक न्यायाधीश ने यह दृष्टांत दिया कि मान लो कुछ लोग ऐसे हैं जो तोड़-फोड़ करना चाहते हैं और रेलवे लाइनों को हटाना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में आप अदालत में इस

मामले को उठाने तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में आप उस आदमी को पकड़कर गिरफ्तार कर सकते हैं और उसे नज़रबंद कर सकते हैं। तत्पश्चात् यथासंभव शीघ्र इस मामले को तीसरे पक्ष के समक्ष रख सकते हैं। यहां तीसरे पक्ष के समक्ष रखने के सिद्धांत का बहुत महत्व है क्योंकि अंततः हम ऐसे मामलों में क्या करना चाहते हैं जिन पर हम यहां विचार कर रहे हैं? 'फिडलर', 'फिजिशियन' और 'बफून' की तरह अभियोक्ता, अभियुक्त और न्यायाधीश को एक हो जाना होगा और इसलिए उन आजाद देशों में यह मांग की गई है कि बीच में तीसरे पक्ष को अवश्य लाया जाये और निर्णय किया जाये—यदि परिस्थितियां असामान्य हैं तो यह आवश्यक नहीं कि यह न्यायालय ही हो किन्तु फिर भी एक तीसरे पक्ष को बीच में अवश्य आना चाहिए और यह निर्णय करना चाहिए कि कार्यपालिका ने ठीक कार्यवाही की है अथवा नहीं? वस्तुतः जैसाकि एक ब्रिटिश अधिकारी ने एक मामले में टिप्पणी की है, यदि एक व्यक्ति कहता है कि वह समझता है कि दूसरे व्यक्ति की टांग टूट गई है तो केवल उस व्यक्ति का यह कहना ही पर्याप्त नहीं है। अपितु तीसरे आदमी को यह कहना चाहिए कि उस व्यक्ति की टांग टूट गई है। अतः कार्यपालिका को यह कहने का अधिकार नहीं है कि किसी व्यक्ति ने गलती की है। अपितु उस व्यक्ति ने कोई गलती की है या नहीं इसकी जांच किसी निष्पक्ष व्यक्ति द्वारा की जानी चाहिए।

माननीय गृह मंत्री ने अपने प्रारंभिक भाषण में एक दस्तावेज का उल्लेख किया है जो कुछ व्यक्तियों द्वारा परिचालित किया गया है और जिस पर उनके हस्ताक्षर हैं। उस दस्तावेज में संसद की विश्वसनीयता अथवा अविश्वसनीयता के बारे में कतिपय टिप्पणियां की गई हैं। किन्तु मैं फिलहाल उस बात के विस्तार में नहीं जाऊंगा। किन्तु यदि आप उस दस्तावेज को देखें तो किसने उस पर हस्ताक्षर किये हैं? वस्तुतः जब मंत्री महोदय सभी व्यक्तियों की पहचान के बारे में बता रहे थे तो मैं नहीं समझ सका। किन्तु तथ्य यह है कि जिन व्यक्तियों ने इस दस्तावेज पर हस्ताक्षर किये हैं उनमें से कुछ साम्यवादी नहीं हैं, वे किसी प्रकार की हिंसा के समर्थक नहीं हैं और उनमें कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने संभवतया राजनीति में कभी कोई सक्रिय भाग नहीं लिया। इस दस्तावेज पर ऐसे लोगों के हस्ताक्षर हैं। निस्संदेह उनमें कुछ ऐसे लोग हैं जिनका साम्यवादी संगठनों से संबंध है।

इस प्रकार के कानून को जारी रखने के बारे में ये भले लोग इतने आशंकित क्यों हैं? हम दूषित वातावरण में यह चर्चा नहीं करना चाहते। यह बहुत गम्भीर मामला है। संविधान में यह उपबंध किया गया है कि संसद ऐसा कानून बना सकती है जिससे न्यायिक मुकदमेबाजी को समाप्त किया जा सकता है। संविधान में निवारक नज़रबन्दी का उपबन्ध है और सरकार आज वर्तमान अधिनियम को जारी रखने हेतु एक विधेयक लाई है। अतः हमें अपने आलोचकों तथा विरोधियों की बातों पर गहराई से विचार करना होगा

और यह पता लगाना होगा कि वे इस प्रकार के विधेयक का विरोध करने के लिए क्यों मजबूर हुए हैं और उनकी आशंकाएं क्या हैं। मुझे मालूम है कि गृह मंत्री जन्मजात लोकतांत्रिक हैं। उन्होंने जीवन में अनेक कठिनाइयों का न केवल सामना किया है बल्कि उन्हें दूर भी किया है। परन्तु मैं कहना चाहूंगा कि उन्होंने पिछले दिन आम आदमी की योग्यता पर संदेह व्यक्त करके गलती की है। यह एक ऐसा तरीका है जिसमें तानाशाह आमतौर पर अपने सन्देह व्यक्त करते हैं न कि लोकतांत्रिक व्यक्ति। यह बात उल्लेखनीय है कि सर्वसत्तावाद और तानाशाही के अनेक समर्थकों ने किस प्रकार से इस तर्क का अनुसरण किया—मैं जानता हूं कि श्री राजागोपालाचारी उनकी संगति में रहना नहीं चाहेंगे—और उनमें से कुछ गत कुछ वर्षों के दौरान विश्व में हुई घटनाओं के कारण अब इस संसार में नहीं रहे हैं। यदि मैं इस पुस्तक, जो मेरे हाथों में है, में से एक या दो पंक्तियां पढ़ूं तो इससे हमें यह पता चलेगा कि हमें ऐसे कानून पर विचार करते समय किस-किस प्रकार की सावधानी बरतनी होगी, जो हमारे नवजात गणराज्य के नागरिकों की वैयक्तिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करता हो। इस पुस्तक का नाम 'ला एण्ड आर्डर' है। इसके लेखक सी॰ के॰ ऐलन हैं जो साम्यवादी लेखक नहीं है बल्कि आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में विधिशास्त्र के प्रोफेसर हैं और वह उस रीति के लिए सुविख्यात हैं जिसमें उन्होंने विधि और विधिशास्त्र से संबंधित प्रश्नों पर विचार किया है।

मैंने इस आम पहलू पर स्पष्टतया इस कारण से विचार किया है कि ऐसे अवसर आ सकते हैं जब विशेष कानून बनाने पड़ें। हमारे संविधान का यही सार है। हमारे जो आलोचक यह कहते हैं कि हमने कानूनी शासन का त्याग किया है, उन्होंने हमारे संविधान को नहीं पढ़ा है। इसमें सन्देह नहीं कि हमने संविधान में ऐसे उपबंध किये हैं जो संसद् को आपातकाल में विशेष कानून बनाने हेतु पर्याप्त शक्तियां प्रदान करते हैं। यह सुझाव दिया गया था कि इस प्रकार के विशेष विधेयक को पास करने के बजाय आपातकाल उपबंधों के अन्तर्गत कार्यवाही करना हमारे लिये बेहतर होगा। मैं इस मुद्दे पर कुछ कहना चाहता हूं। यदि आप किसी सीमित क्षेत्र के लिये आपात स्थिति की घोषणा करते हैं तो इसका अर्थ यह है कि उच्च न्यायालय के कृत्यों को छोड़कर संविधान के उपबंधों को पूर्णतया निलम्बित कर दिया गया है। मैं निश्चित रूप से तब तक ऐसे उपबंध के पक्ष में नहीं होऊंगा जब तक या तो संपूर्ण देश में या देश के किसी भाग में वास्तव में आपात स्थिति न हो। इस विधेयक का स्वरूप सीमित है। यह किसी विशेष क्षेत्र या उसमें रहने वाले लोगों पर लागू नहीं होता। इससे केवल अपराधों तथा व्यक्तियों की कतिपय श्रेणियां प्रभावित होती हैं।

इन टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए मैं अब वर्तमान अधिनियम की धारा 3 का उल्लेख करना चाहूंगा और गृह मंत्री से यह पूछना चाहूंगा कि क्या उन्होंने अपने आप को सन्तुष्ट कर लिया है—उन्होंने अपने नोट में कहा है कि उन्होंने मामले पर अत्यन्त सावधानी से विचार किया है—अतः मैं उनसे यह बताने के लिये अनुरोध करता हूं कि

क्या उन्होंने धारा 3 में उल्लिखित अपराधों की इन श्रेणियों को जारी रखने की आवश्कता के बारे में अपने आपको सन्तुष्ट किया है। मैं अब खण्ड(क) के विस्तृत स्वरूप की ओर सदन का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। इसमें ऐसी कार्यवाही शामिल है "जो भारत की रक्षा, विदेशों के साथ भारत के संबंधों, या भारत की सुरक्षा, या देश की सुरक्षा; या जन व्यवस्था बनाये रखने; या समुदाय के लिए अनिवार्य आपूर्ति तथा सेवाएं बनाये रखने" के प्रतिकूल है। इसके अलावा, किसी ऐसे विदेशी के बारे में उपखण्ड भी हैं, जिसे हम भारत से निकालना चाहते हैं। यदि हम इस धारा को देखें तो यह हमारे लिये पूर्णतया परेशानी जनक है। सरदार पटेल ने विधेयक पुरःस्थापित करते समय इसका यह कारण बताया था कि नये संविधान के लागू होने के बाद न्यायालयों द्वारा की जाने वाली सम्भाव्य परिभाषा को ध्यान में रखते हुए यह वांछनीय है कि इस प्रकार का व्यापक उपबंध किया जाना चाहिये ताकि न्यायिक निर्णयों के कारण जेल से व्यक्तियों को छोड़े जाने के कारण कोई कठिनाई न हो। यह तर्क एक वर्ष पहले दिया गया था। परन्तु गत 12 महीनों के दौरान क्या घटना घटी? यह आशा की जानी चाहिये कि सरकार को समक्ष विस्तृत ब्यौरा रखना चाहिये कि धारा 3 और धारा 3 के किसी भाग के अन्तर्गत कितने व्यक्तियों को नजरबन्द किया गया है; कितने मामलों को परामर्शदात्री बोर्ड को भेजा गया; यदि परामर्शदात्री बोर्ड को कोई मामला नहीं भेजा गया तो क्या सरकार द्वारा बाद में उन मामलों पर विचार करने के लिये कोई प्रक्रिया अपनाई गई और अन्त में न्यायालय के आदेशों पर कितने व्यक्तियों को छोड़ना पड़ा। यदि हम अधिनियम के कार्यान्वयन के बारे में इस प्रकार की सही जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, तभी हमारे लिये यह निर्णय करना सम्भव होगा कि क्या सरकार के लिये धारा 3 को उस स्वरूप में रखना न्यायोचित है जिसमें वह मूल अधिनियम में थी।

अब इस उपबंध का स्वरूप व्यापक है—शब्द इस प्रकार हैं: "यदि सरकार इस बात से सन्तुष्ट है कि अमुक व्यक्ति इस ढंग से कार्य कर रहा है जो विदेशों के साथ भारत के संबंधों के प्रतिकूल है"—यदि आप किसी दूसरे देश के बारे में कुछ शब्द बोलते हैं, तो वे इसे प्रतिकूल कार्यवाही मानेंगे। उदाहरण के तौर पर, माननीय प्रधान मंत्री द्वारा कल काश्मीर के बारे में दिये गये भाषण को देखें जिसे हम सब ने सरकार की ओर से स्पष्ट तथा जोरदार अभिव्यक्ति के रूप में पसंद किया। यदि कोई बाहरी व्यक्ति इतने जोर से बोलता, तो इससे निश्चित तौर पर पाकिस्तान के साथ हमारे संबंधों पर कुप्रभाव पड़ता। ऐसा भाषण प्रतिकूल स्वरूप का है। इसके बाद हम 'जन व्यवस्था बनाये रखने की बात' को लेते हैं। यहां तक कि हिन्दू कोड के लेखक के बारे में यह कहा जा रहा है कि वह ऐसी कार्यवाही कर रहे हैं जिससे जन व्यवस्था पर कुप्रभाव पड़ता है क्योंकि देश में इसका बहुत अधिक विरोध हो रहा है।

हमें अपने आप से गम्भीरतापूर्वक यह पूछना चाहिये कि इस अधिनियम के द्वारा क्या किया जाना है जैसाकि पंडित भार्गव ने कहा, यह सही है कि किसी भी व्यक्ति को चाहे वह जन व्यवस्था कायम करने के लिये ही कार्यवाही क्यों न कर रहा हो, हिरासत में लिया जा सकता है। परन्तु अधिनियम का उद्देश्य निश्चित तौर पर यह नहीं है। यदि कोई

2158/LS

व्यक्ति अपराध करता है तो वर्तमान कानून के अन्तर्गत उस पर न्यायालय में मुकदमा चलाया जाना चाहिये। कोई भी यह नहीं कहता कि यदि कोई अच्छा व्यक्ति कोई बुरा काम करता है, तो उस पर मुकदमा नहीं चलाया जाना चाहिये या उसके विरुद्ध कार्यवाही नहीं की जानी चाहिये। इस बात का कोई महत्व नहीं है कि आदमी अच्छा है या बुरा है। वास्तविक बात यह है कि यदि कोई व्यक्ति कोई अपराध करता है या कोई अपराध करने का प्रयास करता है या अपराध करने की प्रेरणा देता है, तो आम कानून विद्यमान है और उसे न्यायालय में मुकदमे का सामना करना ही होगा। हम तो यह समझते हैं कि संविधान के अन्तर्गत हमें ये अधिकार दिये गये हैं—किसी भी सभ्य देश में कोई भी नागरिक इन अधिकारों को पाने का हकदार है। परन्तु यहां पर आप जो कह रहे हैं वह यह है कि आप हम से यह चाहते हैं कि हम आपको कतिपय व्यक्तियों को कतिपय ऐसी कार्यवाही, जो समाज के हितों के विरुद्ध हैं, करने से रोकने के लिये विशेष कानून बनाने की शक्ति प्रदान करें। ऐसा करने में स्पष्टतया खतरा है। आप यह कैसे जानेंगे कि कोई व्यक्ति क्या कर रहा है। ऐसा तभी पता चलेगा जब वह खुलमखुला कोई कार्य करता है या उसके लिये कोई तैयारी करता है। यदि आप यह कहते हैं कि आप उसके मन की बात जान सकते हैं तो आपको मनोविज्ञान—सामान्य या असामान्य—का पूर्ण अध्ययन करना होगा और आपके लिये सरकार के रूप में कार्य करना कठिन होगा क्योंकि सरकार का कार्य अपने नागरिकों के जीवन तथा उनकी स्वतंत्रता की रक्षा करना है। क्या गुप्तचरों और भेदियों के अपुष्ट प्रमाण के आधार पर कार्यवाही करना गलत नहीं पाया गया? अतः यही कारण है कि प्रत्येक सभ्य देश में यह मांग की गई है कि यदि किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाना है तो उस पर न्यायालय में मुकदमा चलाया जाना चाहिये जो उस व्यक्ति के विरुद्ध दिये गये साक्ष्य पर विचार करेगा और ऐसा निर्णय लेगा जो कानून के अनुसार सही तथा उचित है। यदि आप यह महसूस करते हैं कि आपके वर्तमान कानून त्रुटिपूर्ण हैं, और देश में ऐसे अपराध हो रहे हैं, जो वर्तमान कानूनों के अन्तर्गत नहीं आते, तो आप मूल कानूनों का संशोधन करें। यदि आप महसूस करते हैं कि इस देश में ऐसे नये अपराध किये जा रहे हैं जिनके लिए इस समय कानून में कोई उपबंध नहीं है, तो भारतीय दण्ड संहिता या दण्ड प्रक्रिया संहिता में और उपबंध जोड़े जा सकते हैं या आप उस तरीके से कार्यवाही कर सकते हैं जो आप चाहते हैं। परन्तु आपको व्यक्तियों को गिरफ्तार करके और उन्हें केवल इस कारण से बिना मुकदमे के नजरबन्द रखकर अपने कार्यकारी क्षेत्राधिकार का विस्तार करने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि आपका यह कहना है कि आप को इस बात की आशंका है कि वे कोई ऐसा अपराध कर सकते हैं जो अधिनियम की धारा 3 के व्यापक उपबंधों के अन्तर्गत आता है।

लोगों के मन में आशंका का स्वरूप क्या है? अधिनियम गत एक वर्ष से लागू है।

आज़ लोग सन्देही हो गये हैं और कुछ का निश्चित तौर पर यह विचार है कि अधिनियम के उपबंधों को अनुचित रूप से लागू किया जा रहा है। उनमें यह भय विद्यमान है।

इस अधिनियम को लागू कर के न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को छीना गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि निवारक नज़रबन्दी अधिनियम की एक धारा, जिसे अब हटा दिया गया है, को छोड़कर शेष अधिनियम अवैध नहीं हैं। इसके साथ-साथ यह जानना एक दिलचस्प बात होगी कि विभिन्न राज्यों में सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा अनेक लोगों को रिहा किया गया है क्योंकि उन्होंने यह महसूस किया कि निवारक नज़रबन्दी अधिनियम के उपबंधों को पूरा नहीं किया गया है। हम गृह मंत्री से यह जानना चाहेंगे कि ऐसे मामलों में और ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध क्या कदम उठाये गये हैं जो इस प्रकार की नजरबंदी के लिए उत्तरदायी हैं। स्पष्टरूप से मामले पर किसी व्यक्ति की रिपोर्ट करने के बाद कार्यवाही की गई। क्या उन व्यक्तियों के विरुद्ध कोई प्रशासनिक कार्यवाही की गई जो सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालयों के निर्णय के अनुसार भारत के नागरिकों की अवैध गिरफ्तारी के लिए उत्तरदायी थे। हम माननीय गृह मंत्री से यह बात जानना चाहेंगे कि क्योंकि इस समय इस सभा में और कोई उपस्थित नहीं है। कुछ बाहरी व्यक्ति गृह मंत्री के विरुद्ध राजनैतिक बदले की भावना से किसी व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों को गिरफ्तार करने के जानबूझकर योजना बनाने का आरोप लगायेंगे। इसके साथ-साथ यदि कानून का उल्लंघन किया गया है और देश के सर्वोच्च न्यायाधिकरण के निर्णय के अनुसार लोगों को अधिनियम के वर्तमान कड़े उपबंधों के अधीन अवैध रूप से गिरफ्तार या नजरबंद किया गया है तो इस संबंध में सरकार का क्या उत्तर है।

मेरे पास दो निर्णय हैं—एक सर्वोच्च न्यायालय का है और दूसरा पंजाब उच्च न्यायालय का है, जो नजरबंदी के कुछ मामलों से संबंधित है। निश्चित रूप से इन दोनों मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय नहीं दिया कि नजरबन्दी गैर-कानूनी थी, क्योंकि उसे अधिनियम के उपबंधों के अनुसार कार्य करना था।

गृह मंत्री ने पहले दिन यह कहा कि वास्तव में विधेयक उन व्यक्तियों, पार्टियों या ग्रुपों के लिए है जो गोपनीयता, हिंसा और धोखाधड़ी करते हैं या इन तरीकों से शक्ति हथियाना चाहते हैं। इस संबंध में मैं अपना विचार स्पष्ट करना चाहता हूं। जहां मैं यह दावा करता हूं कि व्यक्तियों या पार्टियों या ग्रुपों, जो अपनी आम राजनीतिक या आर्थिक गतिविधियां चलाते हैं, पर कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिये और केवल इसी तरीके से भारत में लोकतंत्र कायम रह सकता है और फैल सकता है, वहां मैं यह महसूस करता हूं कि देश के हित में यह आवश्यक है कि देश में कोई ऐसा संगठन नहीं होना चाहिए जो हिंसात्मक कार्यवाही करता हो या जो हिंसात्मक तरीकों के माध्यम से अपने उद्देश्य की पूर्ति करना चाहता हो। इस मुद्दे पर जन-जागृति पैदा की जानी चाहिए और इसका उत्तरदायित्व केवल सरकार पर नहीं है बल्कि सभी उत्तरदायी व्यक्तियों पर है। अक्सर यह बताना कठिन होता है कि एक दल की सही-सही नीति क्या है। इस सम्बन्ध में सरकार अथवा लोगों को भी जानकारी नहीं होती। परन्तु यदि सरकार ऐसी सभी कार्रवाइयों को समाप्त करने का निश्चय कर ले जो गुप्त रूप से तोड़-फोड़ करने वाली हो,

और जो इस प्रकार सत्ता हथियाने का प्रयत्न कर रही हों, तो उस नीति का दृढ़ता के साथ लगातार पालन करना चाहिए।

सरकार की राय में इस समय ऐसा कौन सा राजनीतिक दल है जो इस प्रकार की कार्रवाई में लगा है। गृह मंत्री ने इस सम्बन्ध में विशेष रूप से कम्यूनिस्ट पार्टी का नाम लिया है। यदि ऐसे प्रमाण हैं कि व्यक्तिगत रूप से नहीं वरन दल के रूप में कम्यूनिस्ट इस नीति को मानते हैं तो भारत भर में कम्यूनिस्ट पार्टी पर प्रतिबंध क्यों नहीं लगाया जाता ?
ऐसी कौन सी बात है जो सरकार को ऐसा करने से रोकती है। ऐसा करके आप समूचे देश का ही भला नहीं करेंगे वरन उन बहुत से लोगों का भला भी करेंगे जो अज्ञानतावश कम्यूनिस्ट पार्टी का समर्थन करते हैं। यदि आप यह घोषणा करते हैं कि आपके पास प्रमाण है, जैसा कि समय-समय पर प्रकाशित प्रकाशनों से पता चलता है, और यदि आप अब भी यह मानते हैं कि वे उस नीति का पालन कर रहे हैं जो उन्हें उन संवैधानिक अधिकारों से वंचित करती है जो एक आम नागरिक को प्राप्त है, तो कोई कारगर निर्णय लिया जाना चाहिए और सभी लोगों से इसमें सरकार का सहयोग देने का आहवान करना चाहिए। परन्तु आप ऐसी नीति का पालन नहीं करते। दूसरी ओर आपने अन्य बहुत से अवसरों पर जैसे चीन की महान क्रान्ति की आपने प्रशंसा की है। यह क्रान्ति उस तरीके से नहीं हुई जिनकी रक्षा आप निवारक नजरबन्दी अधिनियम के अन्तर्गत करना चाहते हैं। लोगों ने कानून को अपने हाथ में लेकर ऐसा किया। आप विश्व के विभिन्न भागों में हुई घटनाओं की इस प्रकार प्रशंसा नहीं कर सकते जबकि आप यह भी कहते हैं इस विचार धारा को आप अपने देश में कुचल देंगे।

पिछले 12 महीनों में इस कानून के लागू किए जाने के बाद के परिणाम देखकर मेरे मन में यह सन्देह पैदा होता है कि इस कानून से सरकार का उद्देश्य किस सीमा तक पूरा होगा। ऐसा कानून तभी अच्छा हो सकता है जब वह अस्थायी रूप से लागू किया जाये। यह बात हर उस देश में स्वीकार की गई है जहां सरकार अन्य दिशा में प्रगति करने के लिए कुछ समय के वास्ते लोगों को नजरबन्द करने का अधिकार चाहती है। इस समय हमें इस कानून की ओर दो दृष्टिकोणों से देखना होगा। पहला तो यह है कि पिछले 12 महीनों में इससे क्या सफलता मिली है? दूसरे यह कि क्या भविष्य में भी यह सफल रहेगा?

जहां तक पहले दृष्टिकोण का सम्बन्ध है 1950 में 10 या 12 हजार लोग नजरबन्द किए गए। इससे देश के वातावरण पर क्या प्रभाव पड़ा है? गृह मंत्री अन्य बहुत से लोगों के बजाय इस बात को अधिक बेहतर जानते हैं कि एक निर्दोष व्यक्ति के नजरबन्द किए जाने से उस व्यक्ति पर ही नहीं वरन् उसके परिवार, उसके मित्रों, सम्बन्धियों तथा

उसके नजदीकी अन्य लोगों पर कैसा प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्ध में ब्रिटिश शासन के दौरान हमारा अनुभव है। इसके परिणामस्वरूप समूचा आन्दोलन भूमिगत हो गया था। भारत में आतंकवादी गतिविधियां उन दिनों में ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाए गए इन अदूरदर्शी दमनकारी तरीकों के कारण अपनाई गई। वे वास्तविक बीमारी का इलाज नहीं करना चाहते थे वे केवल बाहरी कारणों का ही समाधान करते थे। यहां भी क्या हम ऐसा ही नहीं कर रहे हैं?

अनेकों कम्यूनिस्टों को इस सदन के बहुत से सदस्य जानते हैं। मैं भी उनमें से बहुत से उन विद्वान लोगों को जानता हूं जिन्होंने देश के लिए कष्ट सहे और जो उन लोगों के बड़े गहरे मित्र थे जो आज सत्ता में हैं। उन्हें क्या हो गया? उन्हें यह पागलपन कैसे सवार हो गया? मैं गृह मंत्री से यह जानना चाहता हूं कि (क) सरकार उन लोगों को कैसे नियंत्रित करेगी जिन्हें भारत की शान्ति और प्रगति में गड़बड़ी पैदा करने वाला माना जाता है और (ख) उन समस्याओं को कैसे हल करेगी जिनके कारण देश में साम्यवाद पनपता जा रहा है। आप निवारक नजरबन्दी कानून से साम्यवाद को समाप्त नहीं कर सकते। आप इसके द्वारा देश में व्याप्त अव्यवस्था को भी समाप्त नहीं कर सकते। इस समय लोग इतने असंतुष्ट क्यों हैं? लोग सत्ता में विद्यमान उन लोगों की स्थिति को आज चुनौती क्यों दे रहे हैं, जिनके साथ रहने की उन्होंने शपथ ली थी, और जो उन्हें अपना नेता मानते थे?

यह एक तरह के दृष्टिकोण अथवा उससे भिन्न दृष्टिकोण का प्रश्न नहीं है। यह इस बात का भी प्रश्न नहीं है कि केवल सरकार असफल रही है। इस सम्बन्ध में हम सभी असफल रहे हैं। हम संसद सदस्यों की भी उतनी ही जिम्मेदारी है जितनी सरकार की। आज ऐसा क्यों है कि हम उन लोगों पर कोई नियंत्रण नहीं रख पाते जो अव्यवस्था को बढ़ावा दे रहे हैं? इसका सही और एक मात्र कारण है आर्थिक स्थिति और कुप्रशासन। जब तक हम देश की आर्थिक समस्याओं को हल नहीं करते तथा जब तक हम लोगों को यह विश्वास नहीं दिला देते कि हम सही रास्ते पर हैं तब तक निवारक नजरबन्दी कानून से हम स्थिति से नहीं निपट सकते। आप कितने लोगों को नजरबन्द करेंगे? दस हजार लोगों को आप नजरबन्द कर चुके हैं, आप इससे दुगुनों को गिरफ्तार कर सकते हैं यह संख्या आप दस गुनी भी कर सकते हैं, पर आपकी जेलें जितने आपने आज तक गिरफ्तार किए हैं उससे दुगुने लोगों को भी नहीं रख सकती। क्या इस प्रकार भारत का शासन चलेगा? क्या गृह मंत्री इस सदन और देश को यह संदेश दे रहे हैं?

कम्यूनिस्ट पार्टी में कुछ ऐसे लोग हो सकते हैं जो विदेशों से बंधे हों, जिन्हें हो सकता है हम गलत मानते हो, परन्तु वे अपने आपको सही समझते हैं और यह मानते हैं कि

उनके तरीके ही से भारत का भला हो सकता है। बहुत से मामलों में हम उनसे सहमत नहीं हैं। हम यह नहीं मानते कि भारत का भाग्य एक गुट अथवा दूसरे गुट के हाथ में स्वयं को एक खिलौना बनाने में ही है। भारत, भारत रहा है, भविष्य में भी भारत रहेगा और हमें अपनी नीति स्वयं बनानी होगी, स्वतंत्र देश के रूप में सामने आने वाली समस्याओं को हल करने के लिए हमें अपना रास्ता स्वयं बनाना होगा, पर उसके लिए आपको लोगों को प्रोत्साहित करना होगा। इस समय भारत के एक महान राजनीतिज्ञ होने के नाते मैं श्री राजा जी से विशेष रूप से आग्रह करता हूं कि वह लोगों को आशा की नई किरण दें ताकि वह उन लोगों के चंगुल से बच सकें जो इस देश को गलत मार्ग पर ले जा रहे हैं और उन कठिन आर्थिक समस्याओं के हल भी सुझाएं जो देश की स्थिरता के लिए खतरा बनी हुई है। विचारों को बल पूर्वक दबाने अथवा गलतियों को दूर करने में लगातार असफल रहने से स्थिति और बिगड़ेगी। मैंने यह देखा है कि सामान्य ग्रामीणों के ऊपर नजरबन्दी कानून किस प्रकार लागू किया गया है। गृह मंत्री ने कहा है कि देश में ऐसे लोग हैं जो खाद्य नीति का लाभ उठाना चाहते हैं। उन लाभ उठाने वालों के बारे में ही नहीं सोचना चाहिए। देश में विद्यमान स्थिति का लाभ किस प्रकार उठाया जा रहा है? आप ऐसी स्थिति क्यों पैदा कर रहे हैं, जिसका अन्य लोग लाभ उठा सके। मैं ऐसे कुछ इलाकों में गया हूं जहां एक निश्चित मूल्य पर चावल और अनाज की वसूली की जा रही है। यह मूल्य कम्यूनिस्टों के घोर विरोधी लोगों के लिए भी लाभकारी नहीं है। वे लोग स्वतंत्र नागरिक की तरह भारत में सम्मान के साथ रहना चाहते हैं। उनका कहना है कि वह उस मूल्य पर अपना अनाज नहीं दे सकते जो उन्हें दिया जा रहा है और न ही वह उतनी मात्रा में अनाज दे सकते हैं, जितनी मात्रा में उनसे देने को कहा गया है। वह इसका विरोध कर रहे हैं। ऐसा करना वे एक पवित्र कार्य मानते हैं क्योंकि उस पर उनका अस्तित्व निर्भर करता है। उनकी बात नहीं सुनी जा रही है। हो सकता है उनमें कुछ लोग राजनीति से प्रेरित हों। परन्तु उसका परिणाम क्या निकला है? वहां आप कुछ लोगों को निवारक नजरबंदी कानून के तहत गिरफ्तार कर क्या समस्या को हल कर सकते हैं? इससे समस्या और बढ़ती है क्योंकि बस्ती के लोग तत्काल सरकार विरोधी हो जाते हैं और उन्हें कम्यूनिस्ट आसानी से फंसा लेते हैं।

हमें इस कटु तथ्य को नहीं भूलना चाहिए कि देश में निराशा की भावना फैली हुई है। समस्याएं चाहें कितनी भी बड़ी क्यों न हों मैं उनकी चिन्ता नहीं करता, क्योंकि राष्ट्रों के जीवन में समस्याएं पैदा होती ही हैं परन्तु खतरे की घन्टी तब बजती है जब लोगों को यह लगने लगता है कि वह इस स्थिति से उबर नहीं सकते तथा इसका कोई समाधान भी नहीं है और लोग आन्दोलन करने पर उतर आते हैं। आज ऐसी ही स्थिति है। मैं यह नहीं कहता कि देश भर में ऐसी स्थिति है, परन्तु ऐसे लक्षण दिखाई दे रहे हैं कि असंतोष

की भावना भड़क रही है। यह आवश्यक नहीं कि ऐसा कम्यूनिस्टों अथवा सरकार विरोधी लोगों से प्रभावित लोगों में हो रहा है, परन्तु कोई भी कारण रहा हो वह स्वयं को देश की वर्तमान परिस्थितियों और सरकार की अकुशलता के कारण कठिनाई में और दबाया हुआ मानते हैं। इस कटु समस्या का, जिस पर भारत की शांति और प्रगति निर्भर है, आपके पास क्या समाधान है। निवारक नजरबदी कानून निश्चय ही इसका समाधान नहीं है। यह एक पहलू है। दूसरा पहलू यह है कि पिछले एक वर्ष से इस कानून को जिस प्रकार लागू किया गया है इसकी जांच की जाये।

मैं यहां श्री आशुतोष लाहिड़ी के मामले का जिक्र कर रहा हूं जिस पर उच्चतम न्यायालय ने अपना निर्णय दिया है। श्री लाहिड़ी को निवारक नजरबन्दी कानून के अन्तर्गत पिछली अप्रैल में दिल्ली पुलिस ने गिरफ्तार किया था। उनकी गिरफ्तारी में उच्चतम न्यायालय ने, किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकी, परन्तु एक महीने बाद लिये गये अपने फैसले में उसने जो कहा उससे कुछ कटु सत्य सामने आये। इन सज्जन को जब वह मार्च, 1950 में यहां आये थे गिरफ्तार किया गया था और तब उन्हें गिरफ्तारी के कारण बताये गये थे। उनमें से एक कारण यह था कि पश्चिम बंगाल में उनकी गतिविधियां अवांछित थीं। परन्तु उन्हें पश्चिम बंगाल सरकार के आदेशों के अन्तर्गत गिरफ्तार नहीं किया गया। उन्हें दिल्ली प्रशासन के आदेशों के अन्तर्गत गिरफ्तार किया गया। उच्चतम न्यायालय ने इस मामले की जांच की जिसमें उनकी गिरफ्तारी के यह कारण बताये गये थेः ''आप 27 मार्च, 1950 को दिल्ली में आये और एक संवाददाता सम्मेलन आयोजित किया जिसमें आपने पूर्वी बंगाल की घटनाओं को अत्यधिक बढ़ा चढ़ाकर और साम्प्रदायिक रूप देकर प्रस्तुत किया।'' उस संवाददाता सम्मेलन की कार्यवाही पर सरकार ने प्रतिबन्ध लगा दिया था तथा समाचार पत्रों में कुछ भी नहीं छपा था। तो यह था उनकी गिरफ्तारी का पहला कारण। फैसले में आगे कहा गया है कि ''संवाददाता सम्मेलन के तुरन्त बाद आपकी गतिविधियां साम्प्रदायिक तनाव को बढ़ाने वाली रहीं। ऐसी भी जानकारी मिली है कि पश्चिम बंगाल में आपके आवास के दौरान आपकी गतिविधियां साम्प्रदायिक रही हैं। दिल्ली में, जहां मार्च, 1950 में साम्प्रदायिक दंगे हुये, वर्तमान वातावरण में आपकी गतिविधियों और जनसभा (वहां वह उपस्थित नहीं थे) में दिये गये आपके वक्तव्य के परिणामस्वरूप विभिन्न समुदायों में निश्चय ही घृणा की भावना पैदा होती, जिससे शांति और व्यवस्था गड़बड़ा जाती।''

श्री लाहिड़ी को इन कारणों से गिरफ्तार किया गया था। न्यायालय ने इस मामले पर विचार किया। मैं यहां पूरा फैसला नहीं पढ़ना चाहता केवल संबंधित अंश ही पढ़ रहा हूं। याचिकादाता ने न्यायालय से कहा कि उसकी गिरफ्तारी बुरी नियत से की गई थी तथा उसे नजरबन्द करने का कोई कारण नहीं था। उसे केवल राजनीतिक मतभेदों के कारण

गिरफ्तार किया गया था। जैसा कि आप जानते हैं, दिल्ली में अन्य लोग भी आये थे और उन्हें वहां से बाहर भेज दिया गया था। परन्तु इन सज्जन को दिल्ली प्रशासन ने विशेष प्रकार से चुना और नजरबन्द किया। दण्ड प्रक्रिया संहिता में ऐसे उपबन्ध हैं जिन्हें लागू कर उन सज्जन को दिल्ली से हटाया जा सकता था। तथ्य तो यह है कि उस सभा में भाग लेने वाले प्रमुख व्यक्तियों को दिल्ली से बाहर भेज दिया गया था। फैसले में कहा गया है:

''यह समझना कठिन है कि याचिकादाता के साथ भिन्न प्रकार का बर्ताव क्यों किया गया और उन्हें अनिश्चित काल के लिये जेल में नजरबन्द रखा गया। अधिकारियों की बुरी नियत का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि उनके सम्बन्ध में इस अधिनियम के असाधारण उपबन्धों का प्रयोग किया गया। जबकि सामान्य कानून का उपयोग किया जा सकता था। यद्यपि मैं निश्चित तौर पर यह नहीं कह सकता कि अधिकारियों ने ऐसा सद्भावना से किया परन्तु यह मामला निश्चित तौर पर संदेह से परे नहीं है। मैं केवल यही आशा कर सकता हूं कि अधिकारी इस बात का ध्यान रखेंगे कि ऐसी कोई घटना न हो जिससे राज्य के हित में संसद द्वारा कार्यपालिका को दिये गये असाधारण अधिकारों के दुरुपयोग से किसी को हानि हो अथवा उसे सताया जाये।''

इसी मामले में कुछ अन्य न्यायाधीशों ने इसी प्रकार का फैसला दिया है।

कहानी यही समाप्त नहीं हो जाती। यह फैसला 19 मई, 1950 को दिया गया था। उच्चतम न्यायालय द्वारा यह टिप्पणी की गई कि वह सरकार को बुरी नियत से कार्यवाही करने का दोषी तो नहीं बता सकती, क्योंकि ऐसा कहना बहुत ही कठिन कार्य है तथा इसकी जिम्मेदारी उस पर जाती है जो इस प्रकार की टिप्पणी करता है। पर इसके बावजूद उच्चतम न्यायालय के फैसले के दो महीने बाद जुलाई मास तक इन सज्जन को रिहा करने के लिये कोई कदम नहीं उठाये गये। इस बीच जुलाई के शुरू में इन सज्जन ने पश्चिम बंगाल के मुख्य मंत्री के सचिव के पत्र को संलग्न कर उच्चतम न्यायालय में एक और याचिका दायर की, जिसमें यह कहा गया कि पश्चिम बंगाल सरकार का मेरी नजरबन्दी से कोई सम्बन्ध नहीं है तथा उसने ऐसा कोई कदम उठाने के लिये कभी कोई सिफारिश नहीं की। जो कारण मैंने यहां पढ़े हैं उनसे यह स्पष्ट है कि उन्हें गिरफ्तार किये जाने का एक कारण पश्चिम बंगाल में उनकी गतिविधियां थीं। पश्चिम बंगाल के मुख्य मंत्री के सचिव के पत्र की एक प्रति संलग्न कर उच्चतम न्यायालय में दायर की गई याचिका के कुछ दिन बाद भारत सरकार ने उन्हें रिहा कर दिया। यह एक मामला है मेरे पास ऐसे अनेक मामले हैं।

पंजाब उच्च न्यायालय ने अनेक लोगों को रिहा किया। बम्बई उच्च न्यायालय ने श्री भोपटकर, श्री केतकर तथा अन्य लोगों को रिहा किया। बम्बई उच्च न्यायालय ने महाधिवक्ता से पूछाः इन लोगों को नजरबन्द करने के उनके हिन्दू महासभा का सदस्य होने के अलावा और क्या कारण है। इस कारण से आप उन्हें नजरबन्द नहीं कर सकते। क्योंकि कोई भी कारण नहीं दिये जा सके, यद्यपि इस अधिनियम के अन्तर्गत उन्हें कई महीने तक नजरबन्द रखा गया, परन्तु उच्च न्यायालय ने उनकी रिहाई के आदेश दिये। आज भी दिल्ली में तीन व्यक्तियों — प्रो० राम सिंह, बलराज खन्ना और रामनाथ कालिया को नजरबन्द रखा गया है, जिन्हें 23 अगस्त, 1950 को गिरफ्तार किया गया था। जो कारण उन्हे बताये गये हैं, वे निम्नलिखित हैं:—

"निवारक नजरबन्दी अधिनियम की धारा 7 के अनुसरण में, आपको एतद्द्वारा यह सूचित किया जाता है कि दिनांक 22 अगस्त, 1950 का जो नजरबन्दी आदेश आपके विरुद्ध जारी किया गया है, उसके कारण ये हैं कि सामान्यतः पिछले समय में और विशेष रूप से 13 और 15 अगस्त, 1950 को दिल्ली की सार्वजनिक सभाओं में आपके द्वारा दिये गये भाषण इस प्रकार के थे जिनसे हिन्दुओं और मुस्लिमों के बीच वैमनस्य पैदा होता है और जो दिल्ली में कानून और व्यवस्था को बनाये रखने में बाधक हैं और आपको ऐसे भाषण देने से रोकने के लिए उपर्युक्त आदेश का दिया जाना आवश्यक है।"

कारण यह दिया गया है कि इन तीन सज्जनों ने दो दिन ऐसे दो भाषण दिये, जिन्हें साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से आपत्तिजनक समझा गया था और यही कारण है कि उन्हें इस अधिनियम के अन्तर्गत नजरबन्द किया गया है। यदि उन्होंने ऐसे भाषण दिये हैं, जिनसे कानून के कतिपय उपबन्धों का उल्लंघन होता है तो उन्हें इस प्रकार के आरोप पर गिरफ्तार किया जाना चाहिए और न्यायालय में पेश किया जाना चाहिए। जब उक्त मामला उच्च न्यायालय में गया, तो उच्च न्यायालय ने यह कहा कि वर्तमान कानून के अन्तर्गत वह हस्तक्षेप करने में असमर्थ हैं, क्योंकि कुछ कारण दिये गये हैं जिन्हें अधिकारी पर्याप्त समझते हैं। इसलिए, उच्च न्यायालय ने यह कहा कि वह सहायता कर सकने में समर्थ नहीं हैं। सात महीने व्यतीत हो जाने के बाद भी वे दिल्ली में दो भाषण देने के आरोप पर अभी भी दिल्ली में सड़ रहे हैं, जिसके लिए सरकार में इतना साहस नहीं है कि उन पर मुकदमा चलाने के लिए उन्हें न्यायालय के समक्ष पेश करे। यह किसी राज्य सरकार का प्रश्न नहीं है; यहां दिल्ली में आपने निवारक नजरबन्दी अधिनियम के उपबन्धों के अन्तर्गत मनमाने तरीके से कार्यवाही की है।

जैसा कि मैं कह चुका हूं, मैं ऐसे उदाहरणों की गिनती नहीं गिनाना चाहता। एक अन्य दिन उच्चतम न्यायालय ने असम के लगभग बीस नजरबन्द कैदियों को रिहा कर दिया और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने जो टिप्पणियां की हैं, उनकी व्यापक समीक्षा करने की आवश्यकता है। उच्चतम न्यायालय महाधिवक्ता से यह कहता रहा है, " इन व्यक्तियों को जिन कारणों से आपने नजरबन्द किया है, वे हमें बताये जायें; यदि आप हमें कारण नहीं बता सकते, तो कम से कम इतना तो कहिए कि ऐसे कारण हैं, जिन्हें आप लोकहित में प्रकट नहीं करेंगे और तब कानून सन्तुष्ट हो सकेगा; परन्तु यदि आप कुछ भी नहीं कह सकते, तो स्पष्टतः हमें उन्हें रिहा करना पड़ेगा।" क्या यह तरीका है जिसमें स्वयं गृह मन्त्री अथवा संसद यह चाहेगी कि नागरिक की स्वतन्त्रताओं के साथ खिलवाड़ की जाये?

गृह मत्री ने यह कहा है कि वह यह चाहेंगे कि इन उपबन्धों को उन व्यक्तियों अथवा व्यक्तियों के उन समूहों अथवा उन दलों पर लागू किया जाये, जो हिंसा, धोखाधड़ी, सत्ता हथियाने के गुप्त प्रयास में विश्वास करते हैं। यदि आप वास्तव में यह कहते हैं कि आपको इसकी अपेक्षा है, तो मैं गृह मन्त्री से यह अनुरोध करूंगा कि वह धारा 3 में संशोधन करें और किसी भी कार्यकारी अधिकारी के लिए यह असभंव बना दें कि वह किसी भी नागरिक को किसी भी कारण से गिरफ्तार करके लोगों की स्वतंत्रता के साथ खिलवाड़ न कर सके। सरकार को इस बारे में निर्णय करना चाहिए कि वह क्या क्या अधिकार चाहती है। स्पष्टतः सरकार के समक्ष कुछ ऐसी सामग्री होनी चाहिए जिसके आधार पर कतिपय विशिष्ट मामलों के विरुद्ध सरकार को ऐसे कार्यकारी प्राधिकार प्राप्त करने का हक बनता हो और तब आप उन मामलों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं। यदि उसके बाद आप यह महसूस करते हैं कि देश के वर्तमान ढांचे के अन्तर्गत कुछ ऐसे अपराध हैं जो किये जा रहे हैं, और जिन पर वर्तमान दण्ड संहिता अथवा दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत कार्यवाही नहीं की जा सकती, तो आप उन कानूनों को संशोधित करने के लिए निश्चित प्रस्ताव पेश कर सकते हैं और अतिरिक्त अपराधों को कानून के अन्तर्गत ला सकते हैं। लोगों को गिरफ्तार करने और बिना मुकदमा चलाये उन्हें नजरबन्द रखने के इस खतरनाक खेल को बन्द किया जाना चाहिए और यदि ऐसी कार्यवाही जारी रखनी ही है, तो वह एक अस्थायी उपाय के रूप में, केवल राष्ट्रीय हितों के लिए अपनायी जानी चाहिए और इस बीच मूलभूत समस्याओं का समाधान करने के उद्देश्य से अन्य उपचार ढूंढने के लिए कार्यवाही की जानी चाहिए।

आवश्यक वस्तुओं की सप्लाई और सेवाओं के बारे में एक प्रश्न उठाया गया था। मैं इस बात से अवगत हूं कि न केवल इस सदन के अनेक सदस्यों ने ही वास्तविक मांग

की है, बल्कि सदन के बाहर भी इस आशय की मांग की गई है कि जो व्यक्ति इस प्रकार के अपराध करते हैं, भले ही समाज में उनका कोई भी स्थान हो, खतरनाक व्यक्ति हैं और उनके बारे में समुचित कार्यवाही की जानी चाहिए। यह मामले का एक पहलू है। लेकिन हमें कालाबाजारियों और उन अन्य व्यक्तियों को भारी दण्ड देने की वांछनीयता के बारे में कोई भ्रम नहीं होना चाहिए जो आवश्यक वस्तुओं के बारे में सप्लाई और सेवाओं की वर्तमान स्थिति के साथ हस्तक्षेप कर रहे हों। हमारी आज भी चर्चा की जो विषय वस्तु है, उस मुख्य प्रश्न के साथ हमें इसे नहीं मिलाना चाहिए। वे कौन सी परिस्थितियां हैं जिनके अंतर्गत संसद कार्यपालिका को किसी भी व्यक्ति को, बिना मुकदमा चलाये गिरफ्तार करने और नजरबंद रखने का अधिकार प्रत्यायोजित कर सकती है। यदि कालाबाजारियों और अन्य व्यक्ति इस विधेयक के क्षेत्राधिकार में आते हैं, तो उन्हें परिणाम भोगने होंगे। लेकिन आप तथाकथित कालाबाजारियों के बारे में भी ब्लैक मेल करने की नीति का अनुसरण नहीं कर सकते। यह भी एक खतरनाक खेल है। आप कुछ व्यक्तियों को पकड़ लेते हैं और यह कहते हैं कि वे कालाबाजारियें हैं और इसलिए आप उन्हें जेल में बंद कर देते हैं। किसी न किसी अधिकारी को निश्चित रूप से यह कहना होगा कि क्या अमुख व्यक्ति कालाबाजारिया है अथवा नहीं। आप निरपराध व्यक्तियों को जेल में नहीं डालना चाहते। जहां तक आप इन विशेष उपबंधों के अंतर्गत कार्यवाही करना चाहते हैं, आपको अत्यधिक सावधानी के साथ कार्यवाही करनी होगी।

यह कहा गया है कि हम राज्य के विरुद्ध अपराधों को सहन नहीं कर सकते। राज्य कभी-कभी एक बहुत ही अस्पष्ट और अपरिभाषित शब्द हो जाता है। यह कोई निकाय नहीं है जिसकी आप भर्त्सना करें अथवा यह कोई व्यक्ति नहीं है, जिसे आप ठोकर मार दें; परन्तु इसके साथ ही साथ राज्य के नाम से आप अनेक कार्य करने का दावा कर सकते हैं। हमें एक ऐसी सरकार के बीच जो एक दल की सरकार के रूप में कार्य कर रही है और समाज अथवा देश के हितों के बीच अंतर करना होगा। एक यह प्रश्न उठाया गया है कि इस प्रकार के अधिनियम को चुनाव के समय विशेष रूप से कठोर रूप से क्रियान्वित किया जा सकता है। अब यह एक ऐसा पहलू है जिसके बारे में बहुत सावधानी से विचार किया जाना चाहिए। यदि आपको अपनी मनमंर्जी से किसी भी व्यक्ति को नजरबंद करने का अधिकार मिल जाता है, यदि नजरबंद किये गये व्यक्ति सलाहकार बोर्ड के समक्ष जाते हैं और अपना दृष्टिकोण पेश करते हैं, तो किसी भी प्रकार की राहत मिलने से पहले कम से कम कुछ महीने बीत जायेंगे और फिर आप स्पष्ट रूप से एक ऐसी स्थिति पैदा कर सकते हैं, जो किसी भी व्यक्ति के लिए वांछनीय नहीं कही जा सकती।

इसलिए मैं गृह मंत्री को यह सुझाव देकर अपनी बात समाप्त करना चाहूंगा कि सबसे

पहले उन्हें संसद के समक्ष सभी सामग्री रखनी चाहिए और हमें यह बताना चाहिए कि वह किस श्रेणियों के लोगों के विरुद्ध कार्यवाही करना चाहेंगे। मैं जरा सी भी देर के लिए उन समूहों और संगठनों के अस्तित्व को कम नहीं करना चाहता, जो हिंसक तरीकों में विश्वास रखते हैं। आज कलकत्ता गोदी में एक हड़ताल की घोषणा की गई है। मैं नहीं जानता कि गृह मंत्री को इस बात की जानकारी है कि केवल एक पखवाड़े पहले ही गोदी के श्रमिकों के लिए एक ऐसी यूनियन को मान्यता दी गई है जिसपर कम्युनिस्टों का नियंत्रण है। सरकार की क्या नीति है? हमारे लिए यह समझ पाना बहुत कठिन है। सरकार को खतरों के बारे में जानकारी थी; सरकार ने लगभग एक पखवाड़े पहले कलकत्ता में एक सम्मेलन किया था, एक यह आम भावना थी कि इस प्रकार की मान्यता नहीं दी जानी चाहिए, और ऐसा कुछ भी नहीं किया जाना चाएि जिससे उन लोगों को प्रोत्साहन मिले जो कलकत्ता की गोदियों में समस्या पैदा करना चाहते हैं। यह एक ऐसा केन्द्र बिंदु है जिससे न केवल पश्चिम बंगाल, बल्कि सम्पूर्ण भारत के प्रशासन को ठप्प किया जा सकता है। लेकिन आखिरकार मान्यता दे दी गई और उसके तत्काल बाद वहां हड़ताल हो गई है। और आज आप यहां पर निवारक नजरबंदी विधेयक को पारित कर रहे हैं। आप इस बात के क्यों नहीं कहते कि इसका आप किन लोगों के विरुद्ध उपयोग करना चाहते हैं? यदि इस बारे में निश्चय हो जाये, तो आप के सामने सारी कहानी स्पष्ट हो जायेगी। देश को जानना चाहिए और आपको यह कहना चाहिए कि एक संगठन के रूप में कम्युनिस्ट एक खतरनाक खेल खेल रहे हैं और उन्हें कुचला जाना चाहिए। आप जनता का और देश का आह्वान करें और उन्हें यह बता दें कि आप निरपराध लोगों के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं करना चाहते। आपको यह कहना चाहिए कि आप किन खतरनाक लोगों को स्थिति में सुधार होने तक उनके प्रभाव क्षेत्र से बाहर रखना चाहते हैं। आप इस बारे में स्पष्ट नीति और लक्ष्य की घोषणा करें। लोगों को इस बारे में जानकारी होनी चाहिए। परन्तु आप कोई बात कहना और कल कुछ अन्य करना और यह कहना कि विश्व के कुछ भागों में इस विचारधारा से अच्छे उद्देश्य प्राप्त हुए हैं, लोगों में से काफी सीमा तक भ्रम पैदा करते हैं। आपको कहना चाहिए कि आपके समक्ष भारत की कम्युनिस्ट पार्टी से वास्तविक खतरा है, भले ही वे किसी भी रूप में कार्यरत हों और यदि आपके पास कोई सामग्री है, तो इस बारे में आपको वक्तव्य देना चाहिए और वह सामग्री सदन और देश के समक्ष रखनी चाहिए, इससे देश इस बारे में निर्णय कर सके। यह घोषणा की गई है कि अनेक व्यक्ति जो कम्युनिस्ट थे, अब हिंसा के मार्ग को छोड़ना चाहते हैं और एक संवैधानिक संगठन के रूप में कार्य करना चाहते हैं। यदि ऐसा है तो ऐसा रास्ता अपनाने का प्रयास नहीं किया जाये जिससे प्रत्येक व्यक्ति एक ही मंच पर आपस में मिल जायें। यदि आज लोग परिवर्तन चाहते हैं तो उन्हें ऐसा करने देना चाहिए।

आखिरकार ये कम्युनिस्ट कौन हैं? ये भी तो उसी तरह से भारतीय हैं, जिस प्रकार कि हम हैं। हो सकता है कि वे पथभ्रष्ट हो गये हों। यदि आप उन्हें सही मार्ग पर ले जा सकते हैं, तो आप उन्हें अपनी रचनात्मक नीति से ऐसे मार्ग पर ले जायें लेकिन सरकार को भय पर आधारित नहीं बल्कि कल्पना पर आधारित एक स्पष्ट नीति पेश करनी चाहिए। यह नीति घृणा पर नहीं बल्कि तथ्यों तथा आंकड़ों पर आधारित होनी चाहिए। यह मेरी पहली अपील है।

मेरा दूसरा सुझाव यह है कि धारा 3 में संशोधन किया जाये। मैं माननीय गृह मंत्री द्वारा अपने भाषण में दी गई परिभाषा को स्वीकार करता हूं और इसे धारा 3 के उपबंध के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। जिससे कि केवल उन्हीं मामलों में इस निवारक नजरबंदी अधिनियम को लागू किया जा सके।

इसके बाद उन अन्य मामलों के बारे में मैं यह कहना चाहूंगा कि इन सलाहकार बोर्डों में वे व्यक्ति शामिल नहीं होने चाहिए जो बाद में न्यायाधीशों के पद पर नियुक्त होने वाले हों। न ही वे व्यक्ति शामिल होने चाहिए जिन्हें गृह मंत्री न्यायाधीशों के रूप में पदोन्नत करने के प्रश्न पर विचार कर रहे हों। बल्कि इनमें या तो न्यायाधीश अथवा भूतपूर्व न्यायाधीश शामिल किये जाने चाहिए, और इन बोर्डों को सम्पूर्ण मामले पर विचार करना चाहिए। इन सलाहकार बोर्ड़ों से कोई भी चीज नहीं छिपाई जानी चाहिए। हमारे समक्ष जो मसौदा पेश किया गया है उससे यह बात स्पष्ट नहीं है। जो कुछ भी सामग्री आपके पास हो, उसे सलाहकार बोर्ड के समक्ष पेश कर दें और अभियोगी को तथा निरीह आदमी को एक मौका दें जिससे वह बोर्ड के समक्ष पेश हो सके और अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सके।

यदि गृह मंत्री ने अपने भाषण में जिन बातों का उल्लेख किया है उसके आधार पर परिवर्तन किये जाते हैं तो अधिनियम का दुरुपयोग होने की कम सम्भावना रहेगी। निश्चित रूप से सदन के सदस्यों को इस बात पर सबसे अधिक खुशी होगी कि एक दिन ऐसा आये जब भारत पर बिना किसी निवारक नजरबंदी अधिनियम का सहारा लिये शासन किया जा सके।

10

हिन्दू कोड बिल*

महोदय, हम यहां हिन्दू कोड बिल पर विचार करने के लिये लगभग सात महीने बाद मिल रहे हैं। इस अवधि के दौरान बहुत कुछ हुआ है। यदि मैं ऐसा कहता हूं तो यह बात संतोषजनक है कि सरकार ने इस बारे में अभी तक अंतिम निर्णय नहीं लिया है और संशोधन लाने के लिये तैयार है ताकि इस सभा के अंदर तथा बाहर आलोचनाओं का सामना कर सके।

मेरा विश्वास है कि हमारे देश के इतिहास में किसी भी कानून के समर्थन अथवा विरोध के बारे में अब तक इतनी आलोचना नहीं हुई है।

जिस खण्ड पर हम इस समय चर्चा कर रहे हैं वह सामान्य प्रकार का है। इससे समूचे कोड को लागू करने संबंधी प्रश्न उठता है और इस दृष्टि से मैं कुछ सामान्य टिप्पणियां करना चाहूंगा जो इस बारे में प्रसांगिक होगी।

यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या यह संहिता हिन्दुओं पर ही लागू होगी अथवा सिक्खों, जैनियों, बौद्धों सहित अन्य ऐसे वर्ग के लोगों पर भी लागू होगी जिनका जिक्र माननीय विधि मंत्री द्वारा प्रस्तुत संशोधन में किया गया है। यह प्रश्न भी उठाया गया है कि क्या कोड को देश के सभी नागरिकों पर लागू न किया जाये। मैं निश्चित रूप से कहूंगा कि जैसे कि संविधान के राज्य की नीति के निदेशक तत्व संबंधी अध्याय में संकेत दिया गया है, संसद को नये संविधान के अंतर्गत सचमुच एक ऐसी संहिता को पारित करने के लिये कहा गया है जो देश के सभी नागरिकों पर लागू होगी — अर्थात् एक आल इण्डिया सिविल कोड जब इस विधेयक पर चर्चा शुरू हुई थी उस समय हम लोग बिल्कुल भिन्न परिस्थितियों में काम कर रहे थे।

अतः यह खेद की बात है कि क्या नई सरकार को संविधान पारित हो जाने के बाद भी इस प्रकार का विधान लाना चाहिए था जो केवल एक वर्ग के लोगों पर ही लागू होता हो। यह कहा गया है कि हमारा देश धर्म निरपेक्ष राज्य है। वास्तव में हम प्रायः नए रोग से ग्रस्त रहे हैं जिसे ''धर्म-निपेक्षता'' कह सकते हैं। संसद इस बात पर कहां तक चर्चा कर सकती है — मैं कोई तकनीकी मुद्दा नहीं उठा रहा हूँ — परन्तु संसद के लिए यह

*संसदीय वाद-विवाद, 17 सित बर, 1951, कालम 2705-2724

कहां तक वांछनीय है कि वह एक ऐसा कानून पारित करे जो समुदाय के केवल एक ही वर्ग पर लागू होगा? मैं जानता हूँ कि विधि मंत्री क्या उत्तर देंगे, क्योंकि उन्होंने पिछले भाषण में इस प्रश्न का जिक्र किया था। उन्होंने कहा था कि यदि देश को वास्तव में एक ऐसी अखिल भारतीय सिविल संहिता की आवश्यकता है तो ऐसी संहिता बनाने में कोई कठिनाई नहीं है। यदि यही उत्तर है तो हमें संहिता क्यों नहीं बनानी चाहिए? मुझे इस बात में काफी संदेह है कि क्या इस संहिता में सुझाए गए कुछ उपबंधों को अन्य समुदायों विशेष रूप से मुसलमानों पर लागू करने के सुझाव का प्रस्ताव किया जा सकता है। हम एक पत्नी विवाह के प्रश्न पर चर्चा कर रहे हैं। मैं मानता हूँ कि यह तो कोई बात नहीं कि एक पत्नी विवाह केवल हिन्दुओं के लिए अथवा केवल बौद्धों के लिए, अथवा केवल सिखों के लिए ही अच्छा है। मैं मानता हूँ कि जो लोग एक पत्नी विवाह की वकालत कर रहे हैं वे ईमानदारी से यह महसूस करते हैं कि सिद्धांततः यह एक स्वस्थ है प्रणाली और इसे सब पर लागू किया जाना चाहिए। यदि इस सभ्य संसार में सभी व्यक्तियों पर नहीं, तो कम से कम भारत के उन सभी नागरिकों पर तो अवश्य लागू की जानी चाहिए जो इस संसद द्वारा पारित कानूनों द्वारा शासित होते हैं। अब हमें केवल एक पत्नी विवाह के बारे में एक अलग विधेयक क्यों नहीं लाना चाहिए और उसे सभी नागरिकों पर क्यों नहीं लागू करना चाहिए?

मैं इस बात को पूरी तरह से अस्वीकार नहीं कर रहा हूँ क्योंकि मैं इस विधेयक के प्रवर्तकों की कमजोरियों को जानता हूँ। उन्हें मुस्लिम समुदाय को छूने का साहस ही नहीं है। पूरे भारत में बहुत से लोग इस बात का इतना अधिक विरोध करेंगे कि सरकार इस पर आगे कार्यवाही करने का साहस नहीं करेगी। परन्तु निस्सन्देह आप हिन्दू समुदाय पर आप जैसी चाहें वैसी कार्यवाही कर सकते हैं, उसके परिणाम कुछ भी हों।

श्री राजागोपालाचारी : क्योंकि हम समुदाय हैं।

डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी : सभा तथा सरकार को अपील करने का मेरा आधार कुछ भिन्न होगा। मैं नहीं चाहता कि मेरा भाषण काफी विवादस्पद बने।

श्री कामथ : क्यों नहीं? आप इसे इतना अधिक विवादास्पद बनाइए जितना आप बना सकते हैं।

डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी : मैं ऐसा वातावरण पैदा करना चाहता हूँ जिसमें समाज सुधार से सम्बन्धित मामलों पर आदान-प्रदान की भावना से चर्चा की जा सकती हो। यह प्रैस

विधेयक नहीं है जिसे विधि मंत्री गृह मंत्री की ओर से प्रस्तुत कर रहे हैं। हम नहीं चाहते कि समाज सुधार से सम्बन्धित इस विधेयक को सुगमता से पारित होने में मदद करने के लिए पुलिस संसद से बाहर खड़ी रहे। उससे वास्तव में किसी की मदद नहीं होगी। समाज सुधार करने के उद्देश्य से लाए गह किसी भी विधेयक को देश के अधिकांश लोगों का समर्थन मिलना चाहिए।

यदि हम देश में सामाजिक सुधार लाना चाहते हैं तो हमें जनता के यथासम्भव अधिक से अधिक वर्गों को अपने साथ ले कर चलना होगा।

मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं कि सामाजिक सुधार लाना संसद का अधिकार नहीं है। मुझे हमारे प्राचीन वेदों, स्मृतियों तथा श्रुतियों — की प्रतिष्ठा जानकारी है। परन्तु इतिहास देखा जाये तो उन महान सिद्धान्तों, जिन्हें प्राचीन काल में मूल कानून निर्माताओं द्वारा प्रतिपादित किया गया है, की व्याख्या करने के लिये भाष्यकार थे। धीरे-धीरे भाष्यकार विलुप्त हो गए और हमने विगत 150 वर्षों में देखा कि सामाजिक सुधार को प्रभावित करने वाले बहुत से मामलों में न्यायाधीश, जिनमें दूर लंदन में बैठे हुए यूरोपीय न्यायाधीश और विधायक शामिल है, देश के सामाजिक ढांचे में परिवर्तन करने के लिये समय-समय पर आगे आए और उन्होंने परिवर्तन किए। इसलिये आज हम में से किसी के द्वारा यह कहना अनुचित है कि संसद को अब ऐसा कानून पास करने का कोई अधिकार नहीं है जो विद्यमान कानून के अंतर्गत इस देश की जनता को दिए गए अधिकारों तथा विशेषाधिकारों में बाधा डालते हों।

जहां तक इस संसद के अधिकारों का संबंध है, निस्संदेह, यह बहुत नाजुक मामला है। इस संस्था का सदस्य होने के नाते मेरे लिये इसके अधिकार क्षेत्र को चुनौती देना कठिन है, लेकिन जहां तक जनता की इच्छा को प्रस्तुत करने के इसके अधिकार का संबंध है, यह एक ऐसा मामला है जिस पर अगले कुछ महीने में निर्णय लिया जायेगा और जनता अपना जनादेश देगी। प्रतिपक्षी अथवा सत्ता पक्ष के सदस्यों द्वारा इस संसद के लिये ऐसी चीजों का दावा करने का कोई लाभ नहीं है कि जिनका इस निकाय के लिये वास्तव में, ईमानदारी से तथा उचित रूप से दावा न किया गया हो। लेकिन मेरा यह कहना है कि आज अधिकतर लोगों की यह राय है — एक मजबूत राय है जो इस विधेयक की कुछेक या अनेक मूल बातों के खिलाफ है। मैं उन माननीय सदस्यों, जो इस विधेयक का समर्थन कर रहे हैं, से प्रार्थना करता हूं कि वे इन आलोचनाओं की गहराई को समझें। इस विधेयक की कुछ खास बातें हैं, जिनसे मैं सहमत हू, लेकिन मैं इसे उन लोगों के नजरिये से देखने का प्रयास कर रहा हूं जो या तो इस विधेयक का समग्र रूप से अथवा अंशतः विरोध कर रहे हैं। क्योंकि हम उन लोगों की भावनाओं की गहराई को

समझ सकते हैं जो इसका समर्थन कर रहे हैं, इसी प्रकार उन लोगों की भावनाओं की गहराई को भी उसी प्रकार समझा जाना चाहिये जो इसका विरोध कर रहे हैं। इसका हल कैसे निकाला जाये? समाचार-पत्रों से हमें पता चला कि कुछ नीति संबंधी मामलों के कारण इस विधेयक के कुछ हिस्सों पर विचार न करने का निर्णय लिया गया है। इस बारे में एक तरह का "टास" किया गया लगता है। एक तरफ विवाह तथा तलाक है और दूसरी ओर सम्पत्ति है और किसी तरह से विवाह तथा तलाक पक्ष जीत गया है और सम्पत्ति को फिलहाल पीछे धकेल दिया गया है।

क्या उन संशोधनों पर विचार करते समय, जो खण्ड दो के अंतर्गत अब सभा के सामने हैं, कोई ऐसी प्रक्रिया निकालना हमारे लिये सम्भव है जिसके द्वारा उन लोगों को यह छूट दी जाये, जो इसके उपबंधों का पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिये इस संहिता के अंतर्गत आना चाहते हों। और इसके साथ-साथ उन लोगों को भी स्वतन्त्रता दे दी जाये जो विद्यमान हिन्दू विधि द्वारा शासित होने संबंधी उपबंधों की पवित्रता या वैधता या न्याय में विश्वास नहीं रखते हों।

यह एक ऐसा प्रस्ताव है जिसे मैं विभिन्न संशोधन के आधार पर पूरी तरह संगत तरीके से पेश कर रहा हूं जिसे आपने सभा के विचारार्थ रखे जाने का आदेश दिया है।

मेरे कुछ मित्रों ने मुझे बताया है कि बहुत से दूसरे देशों में हमारे पिछड़ेपन के लिये हमारी आलोचना हो सकती है। विगत कुछ दिनों में मुझे बताया गया है कि कुछ लोगों ने आकर कहा है कि चीन में लोग हिन्दू कोड बिल के पारित होने का इंतजार कर रहे हैं।

अमेरिका में कुछ लोग सगता है हिन्दू कोड के बारे में भारतीय जनता के दृष्टिकोण के संबंध में उनके प्रगामी स्वभाव को देख रहे हैं।

हमें अमेरिकी कानूनों पर नजर डालनी चाहिये। मैं अमेरिकी कानूनों के संबंध में कुछ जानकारी प्राप्त करने का प्रयास कर रहा हूं। मैंने पाया कि अमेरिका के 26 विभिन्न राज्यों में, वे लोग अमेरिकी तथा नीग्रो लोगों के बीच विवाह नहीं होने देते और फिर भी वे इसे अफ्रीकी रक्त का अंश बताते हैं जो अमेरिकी तथा नीग्रो लोगों के बीच किसी विवाह को अस्वीकार कर देगा।

कुछ देशों में अमरीकी और चीनी अथवा अमरीकी और मंगोलिन लोगों के बीच विवाह का निषेध है। व्यवहार में सभी देशों में विवाह संबंधी कानून अलग-अलग हैं। उनमें एकरूपता की तो बात ही क्या है? मैं मानता हूं कि संयुक्त राज्य अमरीका के

लोग विवाह संबंधी सभी कानूनों की एकरूपता के बिना ही काफी खुशहाली से और अच्छी तरह से रह रहे हैं। इसलिए, इस विषय में एकरूपता ही सब कुछ नहीं है। एकरूपता गतिरोध और निर्जीवता की सूचक है...।

मैं यह सुझाव देना चाहता हूं कि हमें अपने देश द्वारा दिखाये गये रास्ते पर चलना चाहिये। आइये अब पुनः रोमन कैथालिकों की बात करते हैं। उनके कठोर कानूनों और उनके धर्म के अनुसार उनको तलाक की अनुमति नहीं है। किन्तु लगभग सभी देशों में सिविल कानून पारित किए गये हैं जिनमें रोमन कैथालिकों को यह अनुमति दी गयी है कि यदि आवश्यक हो तो वे तलाक ले सकते हैं। किन्तु उन्होंने उनके धर्म को इसकी परिधि से बाहर रखा है। उन्होंने धर्म को इससे अलग रखा है किन्तु जो रोमन कैथालिक लोग सिविल कानून के अनुसार शासित होना चाहते हैं उन्हें ऐसा करने की स्वतंत्रता प्राप्त है। इन कानूनों का उपलब्ध होना अत्यन्त कठिन है। लेकिन संसदीय ग्रन्थालय में जो भी पुस्तकें उपलब्ध हैं मैंने उनको पढ़ने की कोशिश की है तथा मैंने यह देखा है कि दोनों प्रणालियों के बीच सुस्पष्ट अन्तर किया गया है।

अब हम विवाह और तलाक पर ही अपनी बात सीमित कर रहे हैं। वह क्या बात है जिससे इस देश की प्रगतिशील महिलाओं सहित तथाकथित प्रगतिशील लोग चिन्तित हैं?

वे इस बात के लिए चिन्तित हैं कि तलाक तथा बहुविवाह के संबंध में कानून में प्रावधान किया जाना चाहिये। इन दोनों बातों पर बहुत जोर दिया गया है। फिलहाल हम तलाक की बात करते हैं। आपके कानूनों को भारतीय विधायिका ने पारित किया है जिनमें तलाक की अनुमति दी गई है। एक स्थिति ऐसी थी जब कोई हिन्दू सिविल कानून के अंतर्गत तब तक विवाह नहीं कर सकता था जब तक वह यह घोषणा नहीं कर देता कि वह हिन्दू नहीं है। किन्तु अब इसको भी बदल दिया गया है। एक हिन्दू व्यक्ति हिन्दू बने रहने के साथ-साथ अपनी रुचि अथवा पति-पत्नी दोनों की रुचि के अनुसार विवाह कर सकता है। इसी प्रकार आपने अंतर्जातीय विवाह के संबंध में पहले ही कानून पारित किए हुए हैं तथा इसमें शामिल दोनों पक्षों के हिन्दू स्वरूप को छीने बिना ऐसे अंतर्जातीय विवाहों को अनुमति प्रदान की है। यहां तक कि लेजिस्लेटिव एसेम्बली द्वारा पारित किए गए कानूनों ने "सगोत्र विवाह", जिसे अधिकांश लोग बहुत अनुचित मानते हैं, को भी मान्यता प्रदान की है।

ये बातें इस बात का संकेत हैं कि इस देश की विधायिका ने विवाह कानूनों के प्रगतिशील विकास — यदि मैं यह कहूँ तो — की मांग को किस तरह पूरा किया है। यह वह विषय है जिसे हमारे संविधान में समवर्ती। सूची में रखा गया है तथा मेरा विचार है कि बम्बई तथा मद्रास ने इस विषय में कानून पारित किये हैं। कई ऐसे राज्य हैं जिनमें

लोगों की इच्छा के अनुरूप प्रावधान करके किसी न किसी रूप में प्रान्तीय कानून पारित किये गये हैं। अब मुद्दा यह है कि आप नये कानूनों को सभी हिन्दुओं के लिए अनिवार्य क्यों बनाना चाहते हैं? आप नहीं चाहते हैं कि तलाक के कानून का लाभ उठाया जाए अथवा लोग संबद्ध पक्षों की इच्छा के विपरीत तलाक के कानून का लाभ उठायें। यह एक सशक्त विधान है तथा उसमें पहले ही शक्ति विद्यमान है।

दूसरी ओर आप करोड़ों लोगों की संवेदनशीलता पर क्या प्रहार करने जा रहे हैं? अब आपने सांस्कारिक विवाह का रूप सामने रखा है। आपने इसको थोड़ा नया तथा आकर्षक रूप प्रदान करने के उद्देश्य से इसकी परिभाषा सांस्कारिक से बदल कर "धार्मिक" कर दी है। निस्सन्देह इसकी विषय-वस्तु में परिवर्तन नहीं हुआ है। जो सदस्य इस विधेयक का समर्थन कर रहे हैं मैं उनसे अत्यनत गम्भीरतापूर्वक पूछना चाहता हूं: आपको इस प्रस्ताव से क्या मिल रहा है?

जहां तक सांस्कारिक विवाह का संबंध है यह एक ऐसी विचाराधारा है जो लाखों — शिक्षित तथा अशिक्षित, साक्षर तथा निरक्षर — लोगों के मन में हिन्दू विवाह के चिरस्थायी स्वरूप के रूप में गहराई तक समाई हुई है। यह केवल शरीर (हाड़-मांस) का मामला नहीं है बल्कि यह एक धार्मिक मामला है। "...........हमें प्रायः कहा जाता है कि हमारी प्रणाली पिछड़ी हुई है। मैंने बड़े-बड़े भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों को पढ़ा है। उन्होंने उस तरीके की सराहना की है, जिस तरीके से हिन्दू समाज ने काफी कठिनाइयों के बावजूद अपने अस्तित्व को बनाए रखा है। मैं, यह बिल्कुल नहीं कह रहा हूं कि हिन्दू समाज में कोई बुराई नहीं है। मैं जानता हूं कि बुराइयां कहां हैं। परन्तु यह आश्चर्यजनक और अभूतपूर्व बात है कि हमारे धर्म या फिर उस महान सत्य के अनुरूप, जिस पर हिन्दुओं ने पिछली कई पीढ़ियों से हजारों वर्षों से विश्वास किया है, किसी हद तक अपने को ढाला है और उसके महत्व को समझा। ये बातें और कहीं देखने को नहीं मिलती हैं। इसका कारण क्या है? इसका कारण यह है कि हमारे साधुओं, ऋषियों ने जिस सत्य का प्रतिपादन किया या फिर उनके बाद के लोगों ने उसकी जो व्याख्या की वह सब सैद्धान्तिक नहीं था। जैसे-जैसे समाज की आवश्यकताएं बदलीं, उसी प्रकार कानून भी बदले। भारत एक बड़ा राष्ट्र है जो आज राजनीतिक दृष्टि से एक है, और इसे हम निस्संदेह, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से एक मजबूत राष्ट्र के रूप में तरक्की करते हुए देखना चाहते हैं और साथ ही हम इस बात को नहीं भूल सकते कि इस राष्ट्र के अनेक भागों, शहरों और गांवों में हजारों शिक्षित, अशिक्षित, संकल्पना वाले या बिना संकल्पना वाले लोग रहते हैं और उन्होंने एक ऐसा सामाजिक ढांचा खड़ा किया है जो वैयक्तिक और सामाजिक प्रगति तथा कल्याण के अनुरूप है। किसी प्रकार उस समाज ने विकास

किया है। क्या विश्व में ऐसा कोई दूसरा देश है जिसका सामाजिक ढांचा इतने अधिक आक्रमणों के बावजूद न टूटा हो?

भारत में सात सौ साल मुस्लिम शासन रहा। उस काल में कई सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया जो कि आज की परिस्थितियों में संकीर्ण दिखाई दे सकते हैं। परन्तु वे सब समाज को बनाए रखने और उसे मजबूत करने की जरूरत को ध्यान में रख कर बनाए गये थे और इन सिद्धांतों का उन पारंगत व्यक्तियों ने प्रतिपादन किया था जो किसी भी हालत में अपने विषयों पर बोलने में संसद में बैठे हम लोगों से कम नहीं थे।

इस देश में समय-समय पर आन्दोलन चलाए गये। इस संबंध में ब्रह्म समाज से आर्य समाज तक आंदोलनों का उदाहरण दिया गया है। जब यह लगा कि समाज स्थिर और रूढ़िवादी हो गया है, इस देश में कोई न कोई महान व्यक्ति उठ खड़ा हुआ और भारतीय ज्ञान के महान स्त्रोतों, वेदों, उपनिषदों से ज्ञान अर्जित किया और अपनी व्याख्या दी और समाज को संकीर्णता की बुराइयों और नैतिक पतन से बचाने का प्रयास किया। परन्तु आज क्या हो रहा है? उन आदर्शों को, जिनका देश में लगभग सौ वर्ष पहले ब्रह्म समाज ने समर्थन किया था, आज हिन्दू समाज ने व्यवहारिक रूप से आलसात कर लिया है। परन्तु फिर भी भारत से बाहर के कुछ मित्र आए। महा बौधी समाज के साथ मेरा कुछ संबंध है। मैं बौद्ध नहीं होते हुए भी इसका अध्यक्ष हूं। मैं एक हिन्दू हूं और फिर भी मैं इसका अध्यक्ष हूं क्योंकि मैं बुद्ध धर्म की महानता को स्वीकार कर सकता हूं, और फिर भी हिन्दू रह सकता हूं। भारत से बाहर के कुछ मित्र आए और उन्होंने शिकायत भरे लहजे में पूछा कि "भारत बुद्ध की भूमि है परन्तु भारत ने ही बुद्ध धर्म को मार दिया।" मैं इस समय उन विवादस्पद बातों में जाना नहीं चाहता। परन्तु एक बात मुख्य रूप से सामने आती है और वह यह है कि जब बुद्ध ने अपने महान सिद्धांतों का प्रचार करना आरम्भ किया तो उस समय भारत को न केवल विश्व की रक्षा के लिए बल्कि भारत की रक्षा के लिए भी बुद्ध की आवश्यकता थी। और बुद्ध कुछ ऐसी प्रवृत्तियों को पनपने से रोकने में सफल हुए जो हिन्दू सभ्यता को जड़-मूल से नष्ट करने वाली थीं। उन्हीं हिन्दुओं ने बुद्ध को अवतार माना है। यद्यपि भारत में कुछ ऐसे लोग भी थे जो बुद्ध धर्म के विरुद्ध लड़े। मैं इस बारे में इस समय कुछ नहीं कहूंगा कि वे लोग सही थे या गलत; परन्तु धीरे-धीरे यह देखा गया कि बुद्ध धर्म को भारत भूमि पर पनपना था और भारतीय संस्कृति में ही घुल-मिल जाना था।

बुद्ध धर्म दूसरे देशों में गया और फैला परन्तु बुद्ध धर्म के सिद्धांत धीरे-धीरे हिन्दू विचारधारा में रच-बस गए। मैं यह सब कुछ इसलिए कह रहा हूं कि हमें किसी के भी द्वारा की गई किसी भी आलोचना को सहन नहीं करना चाहिए, विशेषकर विदेशियों द्वारा

जबकि इसमें यह कहा जाए कि हिन्दू सभ्यता या हिन्दू संस्कृति गतिहीन या अनुन्नत या ह्रासोन्मुख प्रवृत्ति की होती जा रही है। हमारी संस्कृति और सभ्यता में कुछ ऐसी बात है जो इन्हें प्रगतिशील बनाये रखे हुए है और जिसके कारण ये पीढ़ी दर पीढ़ी चलती आ रही है। भारत की पराधीनता के दौरान भी हमारे यहां ऐसे धरा-पुत्रों ने जन्म लिया जो ऐसे महान आदर्शों पर अडिग रहे जिन्होंने नई और आधुनिक परिस्थितियों में भी हिन्दू सभ्यता के शाश्वत मूल्यों को नव-जीवन प्रदान किया। यह संहिता उस उद्गम स्थल को नष्ट कर रही है। खंड 4 के प्रभाव के बारे में सोचते हुए मैं कांप उठता हूं। यहां आप मार्ग बंद कर रहे हैं। आप कह रहे हैं कि ऐसी रीतियों या रिवाजों, जिन्हें इस संहिता के पाठ में मान्यता दी गई है, को छोड़कर बाकी सभी बातें आज से वर्जित होंगी। प्राचीन विचारधारा पर आधारित ये ही वे रीतियां और रिवाज हैं जिन्होंने समय-समय पर हिन्दू समाज की अभिवृद्धि की और इसे खुशहाल बनाया।

12 मध्याह्न

आज यह महान सभा— और हम सभी इसके सम्माननीय और विद्वान व्यक्ति विधिवत निर्णय कर रहे हैं कि हम भारतीय धर्म और भारतीय संस्कृति के मूलस्रोत हैं और इस संहिता में हम जो कुछ भी सम्मिलित करने का निर्णय करेंगे वह फिलहाल तो अंतिम निर्णय है तथा न्यायाधीशों और न्यायालयों को उसमें कुछ हस्तक्षेप करने नहीं दिया जाएगा। क्या सभा को जानकारी नहीं है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात 1951 में भी हमारे अपने उच्चतम न्यायालय को हिन्दू कानून संबंधी विचाराधीन मामलों पर अपने निर्णय देने हेतु मूल ग्रन्थों अथवा उनकी व्याख्याओं का सहारा लेना पड़ा था क्योंकि न्यायाधीश न्यायिक निर्णयों या पाठ्य-पुस्तकों से कोई उचित सादृश्य प्राप्त नहीं कर सके थे। आप आज अपने धर्म के मूलस्रोत को ही नष्ट कर रहे हैं जिसने हमारी पीढ़ियों को जीवन की वास्तविकता का इतना व्यापक आधार प्रदान किया और आप कहते हैं कि यह एक प्रगतिशील विधान है; यह तो अवनति की ओर ले जाने वाला कदम है; यह एक ऐसा कानून है जिसे किसी के लिए बिल्कुल भी सहायक नहीं है; यह तो देश को विभाजित करने में सहायक है। मैं किसी पर कोई आरोप नहीं लगाना चाह रहा हूँ। इसका समर्थन या विरोध करने वालों के कोई ऊंचे उद्देश्य हो सकते हैं। मैं यह बात मानने के लिए तैयार हूं; परन्तु मैं यह कहना चाहता हूं कि इसके उपबंधों को सभी व्यक्तियों पर अनिवार्य रूप से लागू मत करो। तलाक अनिवार्य नहीं है परन्तु हिन्दू विवाह के सांस्कृतिक बंधनों का टूटना अनिवार्य होगा और वही एक बहुत बुरी बात है। तलाक होता है या नहीं, यह एक बिल्कुल अलग बात है; आप तो बलपूर्वक रिवाजों और विश्वासों को बदल रहे हैं। किसी ने कहा कि दक्षिण भारत विशेष रूप से प्रगतिशील है और जिन अनेक कानूनों पर हम आज विचार कर रहे हैं वे वहां पहले से ही विद्यमान हैं। मैं दक्षिण भारत को अपनी

शुभकामनायें देता हूं। दक्षिण भारत दिनों-दिन आगे बढ़े—वहां एक के बाद एक तलाक हो। मेरी दक्षिण भारत से बिल्कुल भी कोई लड़ाई नहीं है, परन्तु जो लोग इसे नहीं चाहते उन पर इसे क्यों लागू किया जा रहा है? वास्तव में मेरे पास एक पत्र है। मुझे यह दो दिन पूर्व ही प्राप्त हुआ है। यह एक पोस्ट कार्ड है और मुझे नहीं मालूम कि यह पत्र किसने लिखा है।

यह अज्ञातनामिक पत्र कार्यालय से प्राप्त नहीं हुआ है। यह अज्ञातनामिक पत्र नहीं है। इससे केवल यही पता चलता है कि इस देश में तरह-तरह के रिवाज हैं। इस महोदय ने लिखा है कि:

"हिन्दू विधि से संबंधित प्रकाशित विधेयक में एक ऐसा उपबंध है जिसके द्वारा किसी लड़की और उसके मामा के बीच विवाह को प्रतिषिद्ध नातेदारी में होने के कारण अवैध किया जाएगा। उपर्युक्त रिवाज आन्ध्र और तमिलनाडु में व्यापक रूप से प्रचलित हैं और ब्राह्मण भी लड़कियों के मामाओं को अपनी लड़कियों के लिए अत्यंत योग्य और उपयुक्त वर मानते हैं। इस प्रतिषोध के बारे में शायद वकीलों और अन्य व्यक्तियों को पता नहीं है। मुझे विश्वास है कि हमारे अधिकतर लोगों को इस बारे में कोई ज्ञान नहीं है और ऐसी स्थिति में इस उपबंध की अज्ञानता में जो विवाह होते हैं उनसे अत्यधिक कठिनाइयां आयेंगी। अतः मैं आपसे एक संशोधन पेश करने का अनुरोध करता हूं..."

मैं नहीं जानता कि उन्होंने मुझे ही विशेष रूप से क्यों चुना और डा॰ अम्बेडकर को क्यों नहीं लिखा—

"इस प्रतिषोध के कारण रिवाज को समाप्त न होने दिया जाए अथवा विवाह सम्बंधी अध्याय लागू करने से पहले पर्याप्त समय निर्धारित किया जाए।"

यह उन लोगों के लिए है जो उन क्षेत्रों में रह रहे लोगों के प्रगतिशील स्वभाव के बारे में बातें करते थे। निस्संदेह वे बहुत आगे बढ़ गये हैं। यह केवल एक दृष्टिकोण है। मैं किसी राज्य की बुद्धमत्ता अथवा अज्ञानता को चुनौती नहीं दे रहा हूं। इस विशाल देश के लोगों और करोड़ों लोग इसका पालन करेंगे। निस्संदेह रिवाजों का एक विशेष रीति से विकास हुआ है। मेरे कहने का तात्पर्य यही है। आप इस संहिता को सभी पर लागू नहीं कर सकते— मैं इस समय विवाह और विवाह-विच्छेद की बात कर रहा हूं— लेकिन यह आप उन पर छोड़ दीजिये जो यह घोषणा करने के लिए भविष्य में विवाह करेंगे कि वे इन उपबंधों के अधीन शासित होना चाहेंगे न कि धार्मिक विवाह के परिणामों के अधीन; आप ऐसा करने के लिए उन पर छोड़ दीजिये। इसमें उन लोगों के मामले सम्मिलित हैं जो भविष्य में आयेंगे। मेरे विचार से हम वर्तमान संसद सदस्यों का विवाह भंग करने के लिए तो विधान नहीं बना रहे हैं। हम भविष्य की तरफ भी देख रहे हैं। हम भावी पीढ़ी

को कुछ देने की सोच रहे हैं जिससे वे शांतिपूर्वक और अधिक आराम से रह सकें। लेकिन यदि आप यह उन पर लागू करना चाहें जो पहले से ही विवाहित हैं......

उनके लिए भी आप उपबंध कर सकते हैं। मान लीजिए आप उन सभी पर इसे लागू करना चाहते हैं जो पहले से विवाहित हैं तो उनके लिए मैं एक समाधान बताना चाहूंगा। यह आप किसी पर भी छोड़ दीजिए, अर्थात् एक अथवा दो वर्ष के भीतर वह अपना यह निर्णय पंजीकृत करायेगा कि वह इसे चुनने के लिए इस संहिता द्वारा शासित होना चाहेगा, यदि आप उस भाषा का प्रयोग कर सकते हैं, तो ठीक है, "सभी जगह" । मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि आप दूसरों के लिए एक ऐसा निर्णय ले रहे हैं। जिसके लिए आज आपको हक नहीं है। आप एक कानून पारित कर रहे हैं जिसके द्वारा आप यह कह रहे हैं कि धार्मिक स्वरूप के विवाह अब बिना किसी संशोधन अथवा रद्दोबदल के जारी रहेंगे और लोगों को अन्य प्रकार के विवाहों की भी छूट है जो इनका लाभ उठाना चाहें। लोगों को भविष्य में अपनी पंसद बताने दीजिये। इसमें कोई जबरदस्ती नहीं है और वर्तमान लोगों को आप समय-सीमा दे सकते हैं अथवा नहीं भी दे सकते हैं। आप कह सकते हैं कि यदि कोई विशेष पक्ष इस संहिता के उपबंधों के द्वारा शासित होना चाहता है तो ऐसे व्यक्तियों को पंजीयक अथवा महापंजीयक अथवा महानिदेशक अथवा जो कोई भी हो, के समक्ष एक घोषणा करेगा और संहिता में उपलब्ध राहत प्राप्त करेगा । मैं पूर्ण गम्भीरता से पूछ रहा हूं कि ऐसा करके आप क्या खोएंगे? ऐसा करके आप जो पाएंगे वह यह है कि आज देश की एकता को भंग नहीं होने देंगे। आप करोड़ों लोगों द्वारा पावन तथा पवित्र समझे जाने वाले हिन्दू-विवाह के अटूट स्वरूप को समाप्त कर रहे हैं। इस सभा में संभवतः बहुत से लोग इससे सहमत न हों। मैं उन लोगों के साथ झगड़ा नहीं कर रहा हूं जो इस बात में विश्वास करते हैं कि विवाह एक द्विपक्षी समझौता है तथा यह और कुछ नहीं बल्कि एक अनुबन्ध है; कुछ लोगों की यदि ऐसी धारणा है तो मुझे उनके विरोध में कुछ नहीं कहना । वे ऐसा मानते रहें परन्तु कुछ ऐसे लोग हैं जिनका ख्याल दूसरा है जो वास्तव में यह मानते हैं कि सहस्त्रों वर्षों से चली आ रही यह पद्धति पवित्र है तथा उनकी परम्पराओं तथा धर्म में समाई हुई है। आपका इस सभा में बैठने तथा यह कहने का क्या अधिकार है कि आप इतने महान अधिकार को अपनी कलम चलाकर समाप्त करना चाहते हैं? आप मुझ पर विश्वास कीजिए। पता नहीं यह गलत है या ठीक, हिन्दू कोड़ बिल के मामले पर देश में भारी मतभेद है। मैं नहीं चाहता कि ऐसा हो, मैं चाहता हूं कि हम अपने सामाजिक ढांचे में प्रगति तथा सुधार करते रहे। परन्तु हम इसे ऐसे ढंग से करेंगे कि अधिकांश लोग हमारे साथ हों। उन पर सभा में किसी प्रकार का दबाव डालकर अथवा उन्हें बाहर किसी व्यापक आन्दोलन में शामिल करके नहीं करेंगे अपितु उनको समझा-बुझाकर और उनमें विश्वास पैदा करके करेंगे।

मैंने इस विषय पर अनेक लोगों के साथ बातचीत की है जो मेरी विचारधारा से सहमत हैं। मैंने उनसे भी बातचीत की है जो रूढ़िवादी हैं। परन्तु न जाने क्यों आज देश में इस बात पर मतभेद है। इस मामले में आगे कैसे कार्यवाही की जाए ? जैसा मैंने कहा कि यह कोई प्रेस कानून तो है नहीं कि कोई चीज खतरे में हो तथा आप प्रेस कानून पारित कर दें तथा इसे लागू कर दें। यह संविधान में संशोधन करना भी नहीं है। यह एक राजनैतिक मामला भी नहीं है। वास्तव में राजनैतिक मामलों पर हमारी राय भिन्न हो सकती है परन्तु हमारे महान देश में ऐसे सुधारों को लागू करने की आवश्यकताओं के बारे में मुख्यतः सहमति होनी चाहिए जो हमारी सभ्यता को अधिक प्रगतिशील तथा उन्नत बनाएंगे। हमारे दृष्टिकोण का सामूहिक आधार यही होना चाहिए। विद्यमान प्रथाओं या विधियों के उपबंधों का पालन करने वाले लोग प्रतिगामी नहीं हैं। सबसे दुखदः स्थिति तो यह है कि इस विधेयक के बहुत से ऐसे समर्थक हैं जो स्वयं को प्रगतिशील समझते हैं और यह सोचते हैं कि उस विषय पर उनकी विचारधारा ही सही है और वे ही प्रगति का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा दूसरे लोग प्रतिगामी हैं। यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण बात है। हमें दूसरों के दृष्टिकोण को भी ध्यान में रखना चाहिए, ऐसे लोगों के दृष्टिकोण पर जो विद्यमान विचारधारा में विश्वास करते हैं, जब तक कि यह आपत्ति न की जाए कि समाज में जो हो रहा है वह कतई बेकार है, अनैतिक है, या प्रतिगामी है। यदि ऐसी आपत्ति की जा सके तो मैं डा॰ अम्बेडकर तथा जो सुधार लाना चाहते हैं से सहमत हूं। परन्तु यह केवल मत की भिन्नता है, केवल दृष्टिकोण का फर्क है तथा जो आपके दृष्टिकोण से सहमत हैं उनके लिए आप जो मर्जी ले लें लेकिन आप अपना दृष्टिकोण उन करोड़ों लोगों पर क्यों थोपते हैं जो आपके विचारों से सहमत नहीं हैं? यही बात है जिसे मैं विधि मंत्री तथा सरकार से जोरदार शब्दों में कहना चाहूंगा। यदि मैंने ऐसा कोई सूत्र दिया होता जिससे संहिता के उन उपबंधों को उन लोगों के लिए रद्द किया जाता जो उसमें विश्वास रखते हों, तो आप मुझे दोषी ठहरा सकते हैं। मैं आपको दिव्यगति देता हूं आप अपने कार्य में आगे बढ़िए तथा उन लोगों के लिए जो आप चाहें कीजिए जो उस विचारधारा में विश्वास करते हैं जिसका आप यहां उपदेश दे रहे हैं। परन्तु उनके बारे में, जो तथा जिनके पूर्वज पुरानी प्रथाओं के अनुसार चलते रहे हैं तथा जो उनसे कम देशभक्त नहीं हैं जो इस विधेयक को ला रहे हैं, आप अपने विचार उन पर क्यों थोप रहे हैं?

अब विवाह-विच्छेद की बात लीजिए, क्या विवाह-विच्छेद विधि ने उन देशों में सभी सामाजिक समस्याओं का समाधान कर दिया है जहां यह विधि विद्यमान है? मैं समाजविज्ञान पर हाल ही में प्रकाशित कुछ पुस्तकों का अध्ययन करता रहा हूं। लोग परेशान हैं क्योंकि यह एक जटिल मानवीय समस्या है। संसार अभी तक भी इन समस्याओं का हल नहीं निकाल पाया है। जिन्होंने तलाक प्रणाली का सहारा लिया है

उनकी संख्या बढ़ती जा रही है। क्या उन्हें शांति मिली है। क्या उन्हें प्रसन्नता प्राप्त हुई है?

दूसरी ओर नई समस्याएं उभर आई हैं। मनो-विश्लेषण की नवीनतम पुस्तकें पढ़िये। उनमें यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि अनेकों ऐसी बुराइयों का कारण जो पाश्चात्य देशों के समक्ष आई हैं, पति-पत्नि में सही तालमेल का न होना है। ये जटिल समस्यायें हैं। पाश्चात्य की किसी चीज़ की आंखें बन्द करके नकल इसलिए क्यों की जाये क्योंकि संसार के कुछ भाग के कुछ लोगों ने आकर आपको बताया है कि जब तक आप इन चीजों को नहीं अपनाते पिछड़े ही बने रहेंगे यदि हम देश में कुछ उन्नत कहे जाने वाले लोग हैं और जो इस विचारधारा में विश्वास रखते हैं तो उन्हें इतनी लम्बी रस्सी दो ताकि वे उस रस्सी से स्वयं को लटका सकें। परन्तु आप ऐसे अन्य लोगों के जीवन में हस्तक्षेप न करें जिन्होंने अपनी समस्याओं के समाधान के लिये इससे बिल्कुल ही भिन्न रास्ता अपनाया है।

जहां तक एक विवाह प्रथा का सम्बन्ध है, मैं एक शर्त के साथ इसका समर्थन करता हूं। इसे भारत के सभी नागरिकों पर लागू किया जाना चाहिए। यह कोई प्रश्न नहीं है कि एक विवाह प्रथा हिन्दुओं के लिये तो अच्छी है और अन्य लोगों के लिये अच्छी नहीं है। एक ही सामाजिक सिद्धान्त पर अडिग रहिये। यदि आपको यह विश्वास है कि एक विवाह प्रथा सामाजिक प्रणाली के रूप में भारत की प्रथाओं में सर्वोत्तम है तो आप इसे हिन्दुओं से जोड़कर मत देखिये; इसे मानवता के दृष्टिकोण से देखिए और इसे सभी पर लागू कीजिये। कम से कम इस मामले में तो धर्मनिरपेक्ष देश के रूप में व्यवहार कीजिये। साहस बटोरिये और कहिये कि एक विवाह प्रथा भारत के सभी नागरिकों पर लागू की जायेगी। यदि आप ऐसा नहीं कर सकते तो इसे केवल एक ही वर्ग पर मत लागू कीजिये। आज हम आंकड़ों की दुनिया में रह रहे हैं। हम आंकड़ों को ही आधार मानते हैं चाहे यह वास्तविक हों या काल्पनिक। मैं कुछ जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करता रहा परन्तु अभी सफल नहीं हो पाया हूं। मैं यह पता लगाना चाहता था कि भारत में कितने लोग दूसरी बार शादी कर रहे हैं। दूसरी शादी तब करना जब कि पहली पत्नी जीवित हो। यह संख्या बहुत ही कम है। वास्तव में यह कोई समस्या नहीं है। उन्नत विचारों के कारण समाज ने स्वयं को व्यवस्थित कर लिया है और आर्थिक दशा व सामान्यजन द्वारा भर्त्सना करने के कारण यह प्रथा समाप्त हो गई है। आप यह क्यों कह रहे हैं कि आप कोई बड़ा सुधार करने जा रहे हैं और इसके लिये कानून बना रहे हैं? यदि आप इसे सिद्धान्त रूप में स्वीकार करते हैं तो इसे सम्पूर्ण भारत पर लागू कीजिये जैसा कि मैंने अभी-अभी कहा है।

जहां तक हिन्दू कोड बिल का सम्बन्ध है, मैं नहीं जानता कि क्या निर्णय होने वाला

है। प्रधान मंत्री ने इशारा किया है कि इस बात की अधिक सम्भावना है कि हम इस बिल के शेष प्रावधानों के लिये और कार्यवाही नहीं करेंगे और इसके लिए हमारे पास समय भी नहीं है। मैं यह पेशकश करने के लिये तैयार हूं। सम्पूर्ण हिन्दू कोड उसी रूप में पारित किया जाये जैसा कि यह है; केवल इसे वैकल्पिक बना दिया जाये। जो इसे अपनाना चाहते हैं। मैंने कट्टरवादी विचारधारा वाले लोगों के प्रतिनिधियों से बातचीत की है, मैंने उनसे बहस की है हालांकि उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो ऐसे किसी भी विधेयक के पारित होने के विरुद्ध हैं वे भी यह महसूस करते हैं कि जैसा वे अपने स्वयं के लिये सोचते हैं, अन्य लोगों को भी अपने लिये और अपने भविष्य के लिए ऐसा सोचने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। यह एक शानदार शुरुआत होगी। मैं इसे स्वीकार करने के लिये तैयार हूं कि चाहे इस कोड का कितना भी विरोध किया जाये, यह डा० अम्बेडकर और उनके सहयोगियों का एक शानदार कार्य है। मैं यह भी स्वीकार करने के लिये तैयार हूं कि यह बड़ा जटिल विषय है और उन्होंने इस मामले की जांच अपनी उतनी योग्यता से की है जितनी कि कोई कर सकता था। इसके लिये यदि वह संसद से कोई मानद उपाधि प्राप्त करना चाहें तो हम डा० अम्बेडर को यह उपाधि देने के लिये तैयार हैं। परन्तु यदि आप इसे एक ऐसे उपाय के रूप में देखते हैं जिसे आप ऐसे करोड़ों हिन्दुओं पर थोपना चाहते हैं जो इसके विरुद्ध हैं तो मेरा कहना है कि आप भारत के लोगों की सेवा नहीं कर रहे हैं। हम इस समय जो रास्ता अपना सकते हैं वह यह है कि हमें आपस में नहीं लड़ना चाहिये, हमें इस मूलभूत मुद्दे पर मतभेद होने के लिये सहमत होना चाहिए। यदि आप यह बताने के लिये तैयार हैं कि कुछ ऐसे मामले हैं जो तात्कालिक रूप से असामाजिक हैं या हिन्दू समाज के मूल जीवन को ही हानि पहुंचा रहे हैं तो ऐसे उपबन्धों को, यदि कोई हो तो, अनिवार्य बनाने के लिये सहमत हो जाये। अन्यथा यह नवीन महान ढांचा जिसे आपने तैयार किया है, कुछ वर्षों के लिये ऐसे ही रहने दिया जाये और यह कहा जाये कि कोई भी भारतीय नागरिक चाहे वह हिन्दू है अथवा नहीं जो इसे स्वीकार करना चाहता है, वह ऐसी घोषणा करे और विवाह, तलाक या सम्पत्ति संबंधी ये सभी उपबन्ध उन पर लागू हो जायेंगे। यह एक महान युग की शुरूआत होगी। आखिरकार इसका निर्णय अन्ततः कौन कर रहा है? आपके चुनाव आ रहे हैं। आप तब जनता के सामने जाइये। जैसा कि प्रधान मंत्री ने कहा है कि उनकी जीत की आंधी आयेगी और सभी विरोधियों को धराशायी कर देगी और ......

हां, बवंडर तो आयेगा ही। अच्छा हो, यदि ऐसा बवंडर हिन्दू कोड बिल के उपबंधों के बारे में आये। उन्हें जनता के पास जाकर यह समझाना चाहिए कि यह विधेयक उन पर थोपा नहीं जा रहा है। उन्हें कहना चाहिए, हम आपके सामने यह विकल्प रखते हैं। यह एक ऐसा स्वर्ग है जिसका सृजन हमने किया है। आप इस स्वर्ग में आये और मोक्ष

प्राप्त करें। जाइये और जनता के सामने यह स्पष्ट कीजिए और यदि वे यह समझेंगे कि यह वास्तव में ऐसा ही स्वर्ग है और दिल्ली का लड्डू नहीं है तो वे आयेंगे और इसे खुले दिल से अपनाएंगे। हमारे पास बहुत समय होगा। बहरहाल, हिन्दू सभ्यता हजारों वर्षों से जीवित है, बावजूद इसके कि विभिन्न क्षेत्रों से, जैसे कि सांस्कृति राजनीतिक और आर्थिक तथा ऐसे ही अन्य क्षेत्रों से इस पर हमले हुए हैं। हम इन सब हमलों से बच निकले हैं और अब हम एक स्वतंत्र राष्ट्र के नागरिक हैं। हम जीवित हैं और हमारा भविष्य पहले की तुलना में अत्यंत शानदार होगा। किन्तु जब हम इस विशाल देश में सामाजिक सुधार लाते हैं जहां विभिन्न मतों, विभिन्न दृष्टिकोणों तथा विभिन्न विचारधाराओं वाले लोग रहते हैं, तब केवल यही तरीका है कि हम इस कार्य को धीमी गति से करें। मैं आपसे उन सिद्धांतों को छोड़ने के लिए नहीं कह रहा हूं जिन्हें आप सही मानते हैं। मैं अभी यह नहीं कह रहा हूं। लेकिन कृपया आप जनता के पास जायें और उन्हें, हिन्दुओं को समझायें, जो अभी तक यह दावा करते हैं कि वे ऐसे सिद्धान्तों को मानते हैं जो किसी भी तरह से विश्व के किसी अन्य भाग में विद्यमान सिद्धान्तों से घटिया नहीं हैं। आप उन्हें अपने लिए स्वयं चुनाव करने का अवसर दीजिए। सभा तथा सरकार से मेरी यही अपील है और मैं विश्वास करता हूं कि इस अपील पर ध्यान दिया जायेगा।

11

भाषाई राज्य

भारतीय संघ में राज्यों की सीमाओं के पुनर्निर्धारण के प्रश्न पर विचार करते समय इस समस्या को किसी राजनीतिक दल के दृष्टिकोण से नहीं देखा जाना चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 3 के तहत केवल यह सदन ही इस प्रश्न पर विचार कर सकता है। हमारे यह कहने भर से कोई लाभ नहीं है कि यह समस्या कठिनाइयों से भरी है। निःसंदेह ऐसा है। लेकिन उन्हें हल किया जाना है तथा इस ढंग से हल किया जाना है जिससे कि सभी सम्बद्ध लोगों को उचित न्याय मिल सके। ऐसा सम्भव है कि भारतीय संघ के राज्यों की सीमाओं की पुनः जांच किये जाने के संबंध में किसी न किसी वर्ग द्वारा राजनीतिक लाभ उठाया जा रहा हो। लेकिन इसके बावजूद देश के उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम के अनेक भागों में इस समस्या पर विचार करने की मांग उचित ही है।

मैं बीते इतिहास में नहीं जाना चाहता। कांग्रेस ने साल दर साल अनेक वायदे किए और वास्तव में उसने यह भी घोषणा की थी कि वे सत्ता में आने के पश्चात् सबसे पहले भारतीय राज्यों को भाषा के आधार पर पुनर्गठित करने का मुद्दा उठायेंगे। मेरे समक्ष पंडित नेहरू, सरदार पटेल और डा० पट्टाभिसीतारामैया द्वारा हस्ताक्षरित रिपोर्ट मौजूद है। अपनी इस रिपोर्ट में उन्होंने एक स्थान पर कहा है कि कांग्रेस द्वारा ये वायदे किये जाने के बावजूद भी, इस मामले पर नए सिरे से विचार करना होगा। स्वाधीनता प्राप्ति तथा भारत के विभाजन के बाद विशेषकर अगस्त 1947 में इसमें प्रयुक्त भाषा का तात्पर्य यह है:—

> "हमें अपने सभी विचारों और क्रियाकलापों को भारत में आज व्याप्त समस्या और परिस्थितियों के अनुसार ढालना होगा। इससे बड़ी और कोई गलती नहीं हो सकती कि हम बीत चुके कल को आज मानकर चलें अथवा कि वर्तमान समस्या को बीते कल की समस्या की दृष्टि से हल करना चाहें।"

अतः हमारे लिये यह आवश्यक हो जाता है कि हम भाषायी आधार पर प्रान्तों के गठन की समस्या पर वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर विचार करें। मैं प्रधान मंत्री से अनुरोध करूंगा कि वह इस प्रश्न पर आज के परिप्रेक्ष्य में विचार करें न कि उन परिस्थितियों के आधार पर जो वर्षों पहले बीत चुकी हैं। हालांकि हम इतिहास से सबक

सीख सकते हैं तथापि हमें देश के विभिन्न भागों में उत्पन्न गंभीर स्थिति को भी ध्यान में रखना है और इस बात को सदा के लिये तय करना है कि क्या भारत को मुख्यतः भाषा के आधार पर विभाजित किया जाना है। जहां तक मेरा विचार है मैंने तो हमेशा कहा है कि भारत के विभाजन में भाषा का आधार ही केवल मुख्य आधार नहीं हो सकता है। इसके साथ-साथ आपको अन्य बातों जैसे—प्रशासनिक सक्षमता, सुरक्षा, आर्थिक विकास तथा देश की एकता का भी ध्यान रखना होगा। ये मुख्य बातें हैं जिनकी उपेक्षा कोई भी समझदार व्यक्ति नहीं कर सकता है। साथ ही भारत अनेक राज्यों में बंटा हुआ है। यदि प्रस्ताव यह है कि हमें यहां किसी राज्य की आवश्यकता नहीं है तथा यहां मात्र जिले होंगे जहां भाषा का विवाद नहीं होगा तो मैं इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए सहर्ष तैयार हूं। प्रान्तों को समाप्त हो जाने दो। लेकिन यदि प्रान्तों का रहना आवश्यक है तो इसके लिए कुछ मूलभूत आधार होने चाहियें जिन पर इन प्रान्तों का गठन किया जाये और उनके गठन में भाषा का आधार एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आधार होगा। समय के अभाव के कारण मैं देश के विभिन्न भागों जैसे—पंजाब, बम्बई, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र, मैसूर, कर्नाटक में उभर रहे विभिन्न पहलुओं को नहीं दर्शा सका हूं। अपने निर्धारित समय में अपने प्रांत पश्चिम बंगाल का ही वर्णन करना चाहूंगा।

पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य लोगों द्वारा भेजी गई रिपोर्ट, जिसका मैंने अभी-अभी वर्णन किया था में उन्होंने उत्तर भारत के दावे को ठुकरा दिया है। इसके 10वें पृष्ठ पर सदस्यगण ने कहा है कि:

> "हमारा प्रान्तीय सीमाओं के मामूली समायोजन, जैसा कि उत्तरी भारत के कुछ भागों में मांग की गई है, से कोई वास्ता नहीं।
>
> इस संदर्भ में हमारे विचार के बावजूद भी, हम इस बात के लिए दृढ़ संकल्प हैं कि वर्तमान में ऐसा कोई मुद्दा नहीं उठाया जाना चाहिए। इसका आशय यह नहीं है कि प्रान्तीय सीमाओं के समायोजन के संबंध में की जाने वाली मांग अनुचित या निरर्थक है।"

वे इस प्रश्न को अभी उठाने के लिए तैयार नहीं हैं। मैं स्वतंत्र भारत की संसद के समक्ष गम्भीरतापूर्वक पश्चिम बंगाल के मुद्दे को रखूंगा। मैं इसे विवादग्रस्त आधार पर पेश नहीं करना चाहता। मैं ऐसा प्रश्न नहीं उठाना चाहता जिससे कि इस सभा में ही बिहार और बंगाल के बीच कोई झगड़ा शुरू हो जाए। परन्तु समस्या को आज के परिप्रेक्ष्य में

देखिये। मैं इस रिपोर्ट में पंडित नेहरू द्वारा कही गई बात कह रहा हूं। यह एक ऐसा राज्य है जिसे आज बहुत कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है। भारत की मुक्ति के लिए इसका विभाजन किया गया......।

आज अगर आप बंगाल के क्षेत्र को देखें तो यह पहले की उपेक्षा 1/3 भाग रह गया है। जब हमने बंगाल की सीमाओं का पुनःसमायोजन करने का प्रश्न उठाया तो सहज ही हमने बिहार के कुछ भागों; जैसे मनभूम जिला, सिंहभूम और संथाल परगना के कुछ हिस्से तथा पूर्निया के कुछ भागों को बंगाल में शामिल करने का प्रश्न उठाया था। बंगाल का विभाजन वर्ष 1905 में हुआ था और सभा को याद होगा कि स्वतंत्रता आन्दोलन की शुरूआत कैसे हुई थी। जब 1911 में बंगाल विभाजन को रद्द किया गया था तो यह निर्देश भी दिया गया था कि बंगाल की सीमाओं का पुनः वितरण किया जाये और उसकी सीमाओं को विशेषतः उन जिलों के संबंध में समंजित किया जाये जिनका मैंने उल्लेख किया है। मुझे उन ऐतिहासिक तथ्यों की याद आती है जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। वस्तुतः 1911 के कांग्रेस अधिवेशन में एक संकल्प पारित किया गया था जिसमें यह कहा गया था कि बंगाली बोलने वाले क्षेत्रों को जल्द से जल्द बंगाल के हवाले कर दिया जाना चाहिए। इस संबंध में सन् 1912 में बिहार के महान देशभक्त दिवंगत नेता डा० सचिदानन्द सिन्हा के नेतृत्व में लोगों द्वारा एक वक्तव्य जारी किया गया। उन्होंने यह स्वीकार किया था कि बंगाल को इन क्षेत्रों का लौटाया जाना न्यायसंगत है तथा इस दिशा में शीघ्रताशीघ्र कदम उठाया जाना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं किया गया। ऐसा क्यों नहीं किया गया? सरकारी दस्तावेज अब प्रकाशित किये जा रहे हैं। सन् 1905 में बंगाल-विभाजन का इतिहास क्या था? एक गुप्त पत्र, जिसे लॉर्ड हार्डिंग द्वारा ब्रिटिश सेक्रेट्री ऑफ स्टेट को भेजा गया था, उसमें यह कहा गया था कि बंगाल को नियंत्रण में रखने के लिए उसका विभाजन किया जाना आवश्यक है। यह विभाजन प्रशासनिक कारणों या उस क्षेत्र के लोगों के सहायतार्थ या देश के हित में नहीं किया गया था। तत्पश्चात् हम देखते हैं कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने, अनेक संकल्प पारित करके भाषा के आधार पर राज्यों के गठन को न्यायसंगत माना था। बिहार के बंगला भाषी क्षेत्रों को बंगाल में शामिल किए जाने के दावे को भी स्वीकार कर लिया गया। वास्तव में इस दिशा में दिसम्बर, 1937 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक के दौरान, जिसमें प्रधान मंत्री के साथ-साथ अनेक लोग मौजूद थे, भारतीय प्रान्तों को भाषा के आधार पर पुनर्गठन के प्रश्न पर एक संकल्प पारित किया गया। बैठक के अंत में यह कहा गया कि बिहार के कांग्रेसी मंत्रिमंडल से इस दिशा में जल्दी कदम उठाने तथा बिहार के उन क्षेत्रों को बंगाल के हवाले करने का अनुरोध किया जाये। यह दिसम्बर, 1937 की बात है जब भारत के विभिन्न राज्यों में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल कार्यरत था।

अब मैं यह प्रश्न उठाता हूं किस कारण से? यह हमारे लिए भावुकता की बात नहीं है। यह तो हमारे बंगाल के अस्तित्व और जीवन-मृत्यु का प्रश्न है। आज इसका क्षेत्र पहले की उपेक्षा एक-तिहाई रह गया है। आप 1951 की जनगणना को देखें.....। इसमें जनसंख्या का घनत्व सन् 1941 में 755 की तुलना में बढ़कर 805 हो गया है......। आज जनसंख्या का घनत्व 805 है। यदि मुझे ऐसी जानकारी होती तो आज इसका दूसरा रूप होता। करीब 90 लाख हिन्दु पूर्व-बंगाल में रहते हैं कोई नहीं कह सकता कि उनका भविष्य क्या होगा।

कभी-कभी प्रधान मंत्री भ्रमित करने वाले वक्तव्य देते हैं। उस दिन उन्होंने कहा कि जो लोग आ रहे हैं वे भिखारी हैं। अचानक हजारों भिखारी पूर्वी बंगाल से भागे आ रहे हैं। वे सभी भिखारी नहीं हैं। वे उस राज्य द्वारा जानबूझ कर निकाले जा रहे हैं। उन्हें वहां नहीं रहने दिया जाएगा। मान लीजिए दस या पन्द्रह या तीस लाख लोग आ जाते है तो वे रहेंगे कहां? क्या पश्चिमी बंगाल उनको रख लेगा? यह समस्या है जिसका हल इस सभा को निकालना है न कि अकेले पश्चिम बंगाल को। यह सारे भारत की समस्या है। यह सुझाव दिया गया है कि उन्हें किन्हीं प्रान्तों में भेजा जा सकता है। यह प्रस्ताव व्यावहारिक नहीं है। आप कुछ हजार लोगों को अन्य प्रान्तों में भेज सकते हैं। उन्हें बंगाल के बच्चों के रूप में रहना पड़ेगा। यह कोई प्रान्तीय दावा नहीं है जो मैं कर रहा हूं। जैसाकि मैंने शुरू में कहा कि यदि संसद निर्णय करती है कि कोई प्रान्त ही नहीं होगा तो ठीक है। किन्तु यदि आप भाषाई आधार पर प्रान्त बनाते हैं तो आपको लोगों के प्रत्येक विशिष्ट वर्ग को एक इकाई बना देना चाहिए ताकि वे उस क्षेत्र को अपनी परम्पराओं तथा भावनाओं के अनुसार विकसित कर सकें तथा राष्ट्रीय शक्ति तथा भारत की एकता को मजबूत कर सकें। मैं शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार के पक्ष में हूं। यद्यपि प्रान्तों के लिए शक्तियों का विकेन्द्रीयकरण किया जा सकता है परन्तु मेरा सुझाव यह नहीं है कि प्रान्तों को शक्तियां इस प्रकार दी जाएं कि भारत के टुकड़े-टुकड़े हो जाएं। इसके विपरीत लोग संतुष्ट होने चाहियें। उन्हें इस बात का भरोसा होना चाहिये कि उन्हें वह सब कुछ मिल रहा है जो उनका जन्म-सिद्ध अधिकार है और अपनी मातृभूमि को एकजुट करने के लिए उन्हें अपने अधिकतम योगदान की अनुमति मिल रही है।

हिन्दी एक सार्वजनिक भाषा हो सकती है तथा हम सभी को यह सीखनी चाहिए। किन्तु मझे यह देख कर आश्चर्य हुआ है कि अभी अन्त में बोलने वाले माननीय सदस्य ने यह कहा कि देश में आज कोई कठिनाई नहीं है क्योंकि हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। यहां तक कि संविधान में भी यह व्यवस्था है कि हिन्दी क्षेत्रीय भाषाओं की कीमत पर नहीं फले-फूलेगी। भारत के लिए वह एक दुःखद

दिन होगा जिस दिन ये महान भारतीय भाषाएं, जिन्होंने समग्र रूप में भारतीय संस्कृति का विकास करने में अपना योगदान दिया है तथा जिनमें से कुछ ने तो विश्व संस्कृति तथा सभ्यता में बहुत ही सार्थक योगदान दिया है। स्वतन्त्र भारत से लुप्त हो जाएंगी...... । यह कोई भी आपत्ति नहीं कर रहा कि राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को क्यों स्वीकार किया गया है; किन्तु आप भारत में अकेले हिन्दी को ही नहीं रख सकते। भारत में अभी भी विभिन्न इकाइयां तथा प्रान्त हैं जिन्हें अपनी प्रिय परम्पराओं तथा संस्कृति के अनुसार फलना-फूलना है। अब यहां प्रश्न यह है कि हम पश्चिम बंगाल के भविष्य का हल कैसे करने जा रहे हैं? आप हमें समीप के उन प्रान्तों से रहने के लिए थोड़ी जगह दीजिए जहां काफी संख्या में बंगला भाषी रह रहे हैं। मेरा सुझाव यह नहीं है कि आप हमें वे क्षेत्र दें जिनके देने से समीप के प्रान्त कमजोर पड़ जाएं। मेरा ऐसा सुझाव बिल्कुल नहीं है। कहने का अर्थ यह नहीं है कि मैं समीप के प्रान्तों से अनुचित रूप से कुछ छीनना चाहता हूं तथा उन्हें कमज़ोर या अकुशल बनाना चाहता हूं या प्रशासनिक दृष्टि से उनका चलाना असंभव करना चाहता हूं। मैं ऐसा कोई सुझाव नहीं दे रहा हूं। असम तथा बिहार दोनों में ही कुछ ऐसे सुसीमांकित क्षेत्र हैं जिन्हें उन राज्यों को हानि पहुंचाये बिना ही दिया जा सकता है— जैसाकि प्रायः स्वयं कांग्रेस ने भी स्वीकार किया है। त्रिपुरा का पश्चिम बंगाल में आना उचित ही होगा। यदि आप पिछले मतगणना-प्रतिवेदन में किए गए परिकलन को देखें तो आपको पता लगेगा कि विभाजन के बाद भारत में लगभग सभी प्रान्तों को लाभ पहुंचा है क्योंकि उनमें बहुत से राज्य जुड़ गए हैं तथा इनमें से अधिकांश क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व कम हुआ है; हर हालत में उन्हें पर्याप्त जगह से भी अधिक जगह मिली है। मैं उनके लिए उज्जवल भविष्य की कामना करता हूं; परन्तु थोड़ा बहुत समायोजन तो हो सकता है— आपस में लड़-झगड़ कर नहीं, बल्कि आपस में मिल-बैठ कर, बातचीत करके। पहल कौन करेगा? किसी तीसरे पक्ष को पहल करनी पड़ेगी। प्रधान मंत्री जी कहते हैं: कि पहले सहमति होने दीजिए, तथा फिर हम देखेंगे कि इस बारे में हम क्या कर सकते हैं। यह सम्भव नहीं है। इसमें भारत के प्रधान मंत्री के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पहल नहीं की जा सकती क्योंकि वह ही सभी लोगों तथा समूचे भारत के अधिकतम हित में ऐसा कर सकते हैं। उन्हें ही सम्बन्धित लोगों को एक साथ बुलाना पड़ेगा। विवाद खड़े करने के लिए नहीं बल्कि मामलों का निपटान करने के लिए। तथ्य तथा आंकड़े मौजूद हैं। प्रत्येक को अपना मामला प्रस्तुत करने दीजिए तथा प्रत्येक इकाई को इस तरीके से मजबूत करने दीजिए कि वे सभी यह महसूस करें कि यह देश के अधिकतम हित में किया जा रहा है।

पश्चिम बंगाल यद्यपि आज छोटा सा क्षेत्र रह गया है, क्योंकि इसके ऊपरी भाग को इसके निचले भाग से काट दिया गया, यह रेडक्लिफ अधिनिर्णय का फल है, फिर भी

आज पश्चिम बंगाल क्या योगदान कर रहा है? जहां तक आय-कर से प्राप्त राजस्व का सम्बन्ध है, आज भी भारत के कुल आय-कर का लगभग 35 प्रतिशत राजस्व पश्चिम बंगाल से आता है तथा इसके बदले पश्चिम बंगाल को मिलता है लगभग 12.5 प्रतिशत ही। यदि आप अपने सीमा-शुल्क राजस्व को देखें तो भारत की सीमा-शुल्क की कुल प्राप्तियों का लगभग 40 प्रतिशत भाग इस टूटे हुए पश्चिम बंगाल प्रान्त से आता है। यदि आप, उदाहरण के तौर पर, भारी उद्योग को लें तो आज भी भारत में भारी उद्योग का लगभग 70 प्रतिशत उद्योग इस छोटे से पश्चिम बंगाल के एक भारी भीड़-भाड़ वाले क्षेत्र में स्थित है। यदि आप भारत के समुद्री व्यापार को लें, भारत के समुद्री व्यापार का 40 प्रतिशत भाग आज भी पश्चिम बंगाल के इस छोटे से प्रान्त के हाथों में है। इसके साथ ही यहां पटसन है, अन्य उद्योग हैं डालर प्राप्त करने के उद्योग हैं, कोयला उद्योग हैं- तथा ये सभी इस छोटे से क्षेत्र में संकेद्रित हैं। और आज इस प्रान्त की जनसंख्या की कितनी दर है? यदि आप पिछले जनगणना प्रतिवेदन को देखें तो आप पायेंगे कि आज भी पश्चिम बंगाल के 20 रतिशत लोग भारत के विभिन्न भागों से आये हुए हैं। इस दृष्टि से यह सार्वभौमी प्रान्त है तथा मेरे मातृ-प्रान्त में उनके साथ जिस तरह का व्यवहार किया जाता है उस पर मुझे गर्व है। शिक्षा को लीजिए। पिछले 50 वर्षों के दौरान मेरा यह प्रान्त ही सबसे पहला ऐसा प्रान्त है जहां शिक्षा प्राप्त करने आए प्रत्येक व्यक्ति को उसकी मातृ-भाषा में शिक्षा प्राप्त करने की पूरी-पूरी छूट दी गई है तथा पूर्ण अवसर प्रदान किए गए हैं। वहां गुजराती स्कूल, खालसा स्कूल, हिन्दी स्कूल जैसे स्कूल हैं। हमने हमारे प्रान्त में आए उन गैर-बंगाली लोगों पर बंगाली थोपी नहीं है। मैं नहीं चाहता कि यहां बंगाली तथा गैर-बंगाली की भावना उत्पन्न की जाए। कुछ क्षेत्रों में ऐसा हो सकता है कि ऐसी फुसफुस सुनाई दे परन्तु यह प्रायः निराशा के कारण ही सुनाई देती है या इस महत्वपूर्ण प्रश्न का समाधान करने में सत्ता की अक्षमता के कारण सुनाई देती है कि पश्चिम बंगाल जी पाएगा या नहीं। यह प्रश्न है जो मैं इस सभा के समक्ष रखना चाहता हूं, एक दल के सदस्य के रूप में नहीं तथा किसी अन्य क्षेत्र से कोई क्षेत्र छीनने के प्रयोजन से भी नहीं रखना चाह रहा हूं। हमें रहने के लिए कुछ क्षेत्र चाहिए ताकि हम अपनी प्रतिभा के अनुसार तथा उस रीति से जिसे हम ठीक तथा उचित समझें, अपने आपको विकसित कर सकें तथा समग्र रूप से भारत के विकास में अपना योगदान दे सकें।

पूर्वी बंगाल एक प्रान्त है। मैंने बार-बार प्रधान मंत्री से कहा है कि विभाजन का अब कोई आधार नहीं रह गया है। विभाजन का मुख्य आधार यह था कि दोनों ही प्रदेशों में मुसलमान हों या हिन्दु सभी लोग रहेंगे। भारत ने अपनी भूमिका अदा कर दी है। एक के बाद एक समझौता किया गया, परन्तु यह केवल एक तरफा ही मामला रहा है, केवल एक तरफा कार्यवाही ही रही है। यदि आप केवल यही पूछ सकते कि क्या पूर्वी बंगाल

भारत को समानुपात में क्षेत्र देगा; यदि आप पूर्वी बंगाल का एक तिहाई भाग भारत के लिए मांग सकते थे—सरदार पटेल ने कोई तीन वर्ष पूर्व अपने नागपुर भाषण में यही प्रश्न उठाया ताकि उन लाखों अभागे लोगों, जिन्हें निकाल दिया गया है, को कुछ भूमि मिल सके जिस पर वे रह सकें, वरना मैं यह प्रश्न नहीं उठांता। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी नीति प्रेम तथा शान्ति बनाये रखने की है। पाकिस्तान के लिए आपका दृष्टिकोण ऐसा रहे। परन्तु जहां तक हमारे देश का सम्बन्ध है कम से कम आप इस समस्या का तो समाधान कीजिए। प्रधान मंत्री से मेरी केवल यही अपील है कि उन्हें इस समस्या को नजरअन्दाज नहीं करना चाहिए। झगड़ा मोल लेने के प्रयोजन से हम कोई विवाद नहीं खड़ा करना चाहते। हम एक मजबूत मामला बना सकते हैं कि भाषा की दृष्टि से तथा प्रशासन की दृष्टि से पश्चिम बंगाल के पास अधिक जगह होनी चाहिए ताकि इस प्रान्त पर अब पड़ रहे दबाव को भारत की उन्नति की दृष्टि से किसी न्याय संगत तरीके से रोका जा सके।

माननीय पुनर्वास मन्त्री ने कुछ समय पूर्व कहा था कि बंगालियों को भारत के अन्य भागों में भेजा जा सकता है। परन्तु यह उनके राज्य से बाहर भेजे जाने का प्रश्न नहीं है। प्रश्न उनके कानूनी अधिकारों का है। उनके प्रतिनिधित्व का है। यदि आज बीस या तीस लाख लोगों को भारत के अन्य भागों में भेज दिया जाता है तो मुझे समझ नहीं आता कि भारत का कौन सा भाग बंगाल से आने वाले उन लोगों को जिनकी भाषा अलग है, जिनका रहन-सहन का ढंग अलग है-कैसे खपा पाएगा। यहां भारतीय संसद में उनके प्रतिनिधित्व का भी प्रश्न है। सेवाओं, व्यापार तथा कारोबार आदि के प्रति उनके दावे का भी प्रश्न है। ये ऐसे मामले हैं जिन्हें आपको गंभीरता से लेना चाहिए। इससे पूर्व की स्थिति और खराब हो, मैं इस सभा से अनुरोध करता हूं कि इस प्रश्न पर विचार किया जाए—केवल अकेले बंगाल का ही नहीं बल्कि अन्य राज्यों सहित राज्यों के प्रति भी कोई ढुलमुल नीति अपनाने या यह सोचने कि सब कुछ सही सलामत चल रहा है, कोई लाभ नहीं है। यदि आप कहते हैं कि किसी भी कारण से भारत की सीमाओं का पुनर्निधारण न किया जाए, यदि सरकार की यही नीति है तो वह ऐसा कहें, उन्हें वह इसकी घोषणा करें तथा फिर परिणाम भुगतें। तब लोगों को पता लगेगा कि सरकार की स्थिति क्या है। इससे संकट पैदा हो सकते हैं परन्तु फिर उसके लिए सरकार ही तो स्वयं दोषी होगी। यदि आप कहते हैं कि पुनर्निधारण उस सिद्धांत के अनुरूप करना पड़ेगा जो कांग्रेस पिछले 35 वर्षों से घोषित करती रही है तो संबंधित पक्षों द्वारा मामले को निर्णय के लिए मत छोड़िए। इसकी शुरूआत अपने हाथों से ही कीजिए। पंडित जवाहरलाल नेहरू से मेरा यही अनुरोध है। शुरूआत वह अपने ही हाथों से करें, आयोग की नियुक्ति करें, सलाहकारों की नियुक्ति करें या संबंधित क्षेत्रों के अग्रणी प्रतिनिधियों का

अनौपचारिक सम्मेलन बुलाएं तथा मामले को इस तरह से हल करें कि वह ऐसा निर्णय ले पाएं जो सभी को परस्पर स्वीकार्य हो। मैं जानता हूं कि जो भी निर्णय लिया जाएगा वह सभी को पूरी तरह स्वीकार्य नहीं होगा। कुछ वर्ग ऐसे हो सकते हैं जो किसी भी निर्णय का विरोध करें, यह बात मैं मानता हूं। यदि हम एक बार न्यायसंगत आधार पर मुख्य-मुख्य मुद्दों का निपटान कर लेते हैं तथा लोगों के एक बड़े भाग द्वारा उसे मनवा लेते हैं, तो हम इस स्थिति का सामना कर सकते हैं। कांग्रेस की ओर से या गैर-कांग्रेस पक्ष की ओर से यह कोई वाद-विवाद का प्रश्न नहीं है। यह एक मुख्य राष्ट्रीय मुद्दा है जिसका समाधान राष्ट्रीय आधार पर किया जाना चाहिए न कि दलगत आधार पर। यह किसी सरकार, दल या विरोधी दल का प्रश्न नहीं है। यह एक ऐसा मामला है जिस पर हमें संबंधित इकाइयों की आवश्यकताओं तथा संपूर्ण भारत की सुरक्षा को भी ध्यान में रखते हुए अति सावधानी तथा सतर्कता से विचार करना है; और यदि हम जिम्मेवार प्रतिनिधियों के रूप में इस लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं तो मुझे पूरा विश्वास है कि हम इस समस्या का समाधान कर पाएंगे जिस पर हमारी इस भूमि के करोड़ों लोगों की शांति तथा समृद्धि निर्भर करती है।

12

कश्मीर समस्या*

मैं प्रधानमंत्री से सहमत हूं कि कश्मीर का मामला बहुत पेचीदा है और हम सभी को, किसी का दृष्टिकोण चाहे कुछ भी हो, इस समस्या पर रचनात्मक दंग से विचार करना चाहिए। मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि इस योजना को जिसे प्रधानमंत्री के प्रस्ताव पर सभा में प्रस्तुत किया गया है स्वीकार करके हम एक नये स्वर्ग और एक नई पृथ्वी की रचना कर रहे हैं। इस समस्या को दो भागों में बांटा जा सकता है। एक भाग कश्मीर मसले से उत्पन्न होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से जुड़ा है और दूसरा भाग कश्मीर के भावी संविधान के संबंध में कश्मीर और हमारे बीच की जाने वाली व्यवस्था से जुड़ा है।

यह कहा गया है कि जब संयुक्त राष्ट्र संघ को कश्मीर का मामला सौंपने का निर्णय किया गया था तो मैं उसमें शामिल था। यह एक सही बात है। मुझे कोई अधिकार नहीं है और मैं उन असाधारण परिस्थितियों जिनमें यह निर्णय किया गया था तथा भारत सरकार को उस मौके पर जो बड़ी उम्मीदें थीं, का उल्लेख नहीं करना चाहता, लेकिन यह सभी को ज्ञात है कि संयुक्त राष्ट्र ने हमारे साथ ठीक व्यवहार नहीं किया, जैसी कि हमें आशा थी। विलय के प्रश्न को हल करने हेतु हम संयुक्त राष्ट्र नहीं गये थैं क्योंकि उस समय विलय तो एक सुस्थापित तथ्य था। हम वहां पर संयुक्त राष्ट्र संघ से उन हमलों के संबंध में शिघ्र निर्णय कराने के लिए गये थे, जो उन व्यक्तियों द्वारा किए जा रहे थे जिनके पीछे पाकिस्तान सरकार का हाथ था। उन हमलावरों ने किसी अन्य के इशारे पर कार्यवाही की थी। चार वर्ष बीत गये हैं। प्रधानमंत्री ने डा० ग्राह्म की प्रशंसा की थी। वह इसके हकदार थे या नहीं, यह बात अलग है। कोरिया युद्ध शुरू हो गया था। वहां पर आक्रमण कियां गया था और तुरन्त उन्हीं बड़े देशों ने जिनका संयुक्त राष्ट्र संघ में दबदबा था, संपूर्ण विश्व से आजादी की सुरक्षा के नाम पर उनका साथ देने का आह्वान किया था। लेकिन इन्ही लोगों ने उस आक्रमण के बारे में, जो कश्मीर की ही घरती पर नहीं बल्कि भारत की घरती पर हुआ था, भारत के सीघे से दृष्टिकोण का विरोध किया

*लोक सभा वाद विवाद, 7 अगस्त, 1952, का० 5885-5899।

था। मुझे मालुम है कि संयुक्त राष्ट्र संघ से तकनीकी आधार पर कोई भी मामला वापस नहीं लिया जा सकता। तकनीकी तौर पर हैदराबाद का मामला अभी भी वहां है। दक्षिण अफ्रीकी विवाद की तकनीकी तौर पर संयुक्त राष्ट्र संघ में है। लेकिन इन मामलों का क्या हुआ? इनमें कुछ भी प्रगति नहीं हो रही है। फिर भी जहां तक कश्मीर मामले का संबंध है, हमें स्वयं इसे संयुक्त राष्ट्र संघ से वापस ले लेना चाहिए। हम उन्हें सम्मानजनक रूप से कह सकते हैं कि संयुक्त राष्ट्र ने काफी प्रयास कर लिया है, अब हमें स्वयं अपने प्रयासों द्वारा इसे हल करना चाहते हैं। मेरा यह सुझाव नहीं है कि भारत को संयुक्त राष्ट्र संघ से अपनी सदस्यता वापस ले लेनी चाहिए। अभी भी जो विवाद चल रहा है वह केवल कश्मीर के एक तिहाई क्षेत्र का है जोकि दुश्मन के कब्जे में है। प्रधान मंत्री ने आज कहा है कि वह भाग वहां है। यह एक राष्ट्रीय अपमान का मामला है। हमारा कहना है कि कश्मीर भारत का अंग है स्थिति यही है। अतः भारत का एक भाग आज दुश्मन के कब्जे में है और हम मजबूर हैं। इसमें संदेह नहीं है कि हम शान्तिप्रिय हैं। लेकिन किस सीमा तक शान्तिप्रिय है? क्या हम शत्रु को अपनी भूमि कें एक हिस्से पर कब्जा करने की छूट दे सकते हैं? हालांकि, प्रधान मंत्री ने कहा थाः जहां है, वहीं तक और आगे नहीं। यदि हमलावर कश्मीर के किसी हिस्से में घुसते हैं, तो उन्होंने इसे पाकिस्तान और कश्मीर के बीच युद्ध का खतरा न मानकर भारत और पाकिस्तान के युद्ध की संज्ञा दी है।

क्या इस क्षेत्र के वापस मिलने की कोई सम्भावना है? हमें यह संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयासों सें नहीं मिल सकताः हमें पाकिस्तान के साथ बातचीत करके यह शान्तिपूर्वक तरीकों से वापस नहीं मिल सकता। इसका अर्थ है, यदि हमने बल का प्रयोग नहीं किया तो हम इसे गवां देंगे। प्रधान मंत्री बल-प्रयोग करना नहीं चाहते। हमें वास्तविकता का सामना करना चाहिए—क्या हम इस क्षेत्र को गवां देने के लिए तैयार हैं।

यह कहा गया है कि संविधान में कोई ऐसा उपबंध है कि हम उन वायदों के लिए प्रतिबद्ध हैं जो वायदे हमनें किये है। हमनें हैदराबाद को एक वचन दिया था। क्या हमने यह नहीं कहा कि हैदराबाद के लिए एक संविधान सभा बनाई जायेगी। इसके बाद एक और वायदा किया गय था कि हैदराबाद के भविष्य का फैसला हैदराबाद की विधानसभा द्वारा किया जोयगा। परन्तु क्या हैदराबाद पहले ही भारतीय संघ का हिस्सा नहीं है? हमने रियासतों के नरेशों के साथ भी वायदे किये थे, जिन्हें विभिन्न तरीकों से आज हम तोड़ रहे हैं। यदि हम वायदों की बात करते हैं तो हमने अनेक अन्य अवसरों पर वायदे दिए हैं। हमने पूर्वी बंगाल में अल्पसंख्यकों से वायदा किया। यह स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् किया गया था। प्रधान मंत्री ने एक दिन कहा था कि यदि कश्मीर का भारत के साथ उस समय विलय नहीं भी हुआ होता, जब हमलावरों द्वारा कश्मीर पर आक्रमण किया गया था, तो

मानवीय आधार पर भारतीय सेना आगे बढ़ती तथा व्यथितों एवं उत्पीड़ितों की रक्षा करती। इस बात पर मैंने गर्व महसूस किया लेकिन यदि मैं, अपने ऐसे 90 लाख भाइयों और बहनों का जीवन और सम्मान बचाने के प्रयोजनार्थ ऐसा ही कोई वक्तव्य अथवा सुझाव देता, कम से कम कुछ सीमा तक जिनके बलिदानों से स्वतन्त्रता प्राप्त हुई हैं—तो मैं साम्प्रदायिकतावादी हो जाता हूं, प्रतिक्रियावादी हो जाता हूं, और युद्धोन्मादक हो जाता हूं।

वायदे? निस्संदेह वायदे किए हैं। मैं भी इस बात के लिए उत्सुक हूं कि वायदों का सम्मान किया जाना चाहिए और इन्हें माना जाना चाहिए। इन वायदों का क्या स्वरूप था? हमने कश्मीर को कोई नया वचन नहीं दिया। हमें इस बारे में स्पष्ट होना चाहिए।

जिस समय अंग्रेज भारत से गए, उस समय हमारे भारत का क्या स्वरूप था, जिसे हमने स्वीकार किया था? उस समय भारत को भारत और पाकिस्तान में बांट दिया गया था मैं उसे रियासतों का भारत ही कहूंगा। उन पांच सौ शासकों में से प्रत्येक शासक को सिद्धान्त रूप से स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और इन्हें केवल तीन मामलों के बारे में भारत के साथ मिलने की आवश्यकता थी। जहां तक शेष रियासतों का संबंध है तो यह विशुद्ध रूप से स्वेच्छा से हुआ। यह ढांचा था जो हमें ब्रिटिश सरकार से मिला। जहां तक 498 रियासतों का संबंध है, वे भारत सरकार के पास आईं और केवल तीन विषयों के संबंध में वे 14 अगस्त, 1947 को भारत में सम्मिलित हुईं लेकिन फिर भी यह विलय ही था, पूरा विलय था। बाद में, वे सभी इन विषयों के संबंध में आए और धीरे-धीरे भारत के संविधान में आत्मसात हो गए जिसे हमने पारित किया। कल्पना करो, ऐसे वायदों को पूरा करने की, जिन्हें हम कश्मीर के संबंध में अक्षरक्षः पूरा करने के संबंध में सोच रहे हैं, इन राज्यों द्वारा मांग की जाती, तो क्या हम इन वायदों को पूरा करने के लिए सहमत होते। हम सहमत नहीं होते, क्योंकि इससे भारत के टुकड़े टुकड़े हो गए होते। लेकिन इन समस्याओं के समाधान के लिए एक पृथक दृष्टिकोण था। उन्हें यह महसूस कराया गया कि भारत के हित में, उनके हित में, पारस्परिक प्रगति के हित में है। उन्हें यह संविधान स्वीकार करना होगा जिसे हम तैयार कर रहे हैं और इस संविधान में इसके ढांचे में, इन्हें स्वाभाविक रूप से आत्मसात करने के लिए, विस्तृत उपबन्ध किए गए हैं। कोई जबरदस्ती नहीं है, कोई अनिवार्यता नहीं है। उन्हें यह महसूस कराया गया था कि वे इस संविधान से जो चाहते हैं, प्राप्त कर सकते हैं।

क्या मैं यह जान सकता हूं कि क्या शेख अब्दुल्ला इस संविधान के पक्षकार नहीं थे? वह संविधान सभा के सदस्य थे, लेकिन वह विशेष बर्ताव के लिए कह रहे हैं। क्या वह यह संविधान 497 रियासतों सहित शेष भारत के संबंध में स्वीकार करने के लिए सहमत

नहीं थे। यदि यह संविधान सबके लिए अच्छा है तो कश्मीर में उनके लिए अच्छा क्यों नहीं है?

हमें संविधान के उपबन्ध का हवाला दिया गया। बिहार के माननीय सदस्य ने कहा था कि यह भी विवशता थी; कि हम जम्मू और कश्मीर के सिर पर पिस्तोल ताने हुए हैं और कह रहे हैं कि उन्हें हमारी शर्तें अवश्य स्वीकार करनी चाहिए। मैंनें इस प्रकार की कोई बात नहीं कही है। हम यह कैसे कह सकते हैं? हमने संविधान में क्या उपबन्ध किया है? अनुच्छेद 373 पढ़िए और श्री गोपालस्वामी अय्यंगार का उस समय का भाषण पढ़िए जब उन्होनें यह असाधारण उपबन्ध स्वीकार करने हेतु प्रस्ताव किया था। तत्पश्चात क्या स्थिति थी? अन्य सभी रियासतें के बारे में स्पष्ट हो चुका था। विशेष कारणों से कश्मीर के बारे में स्थिति स्पष्ट नहीं हो पाई थी। कारण थे—सबसे पहले, तो यह मामला सुरक्षा परिषद को सौंपा जा चुका था; फिर युद्ध से सम्बन्धित था, तीसरा कारण यह था कि कश्मीर राज्य क्षेत्र का एक हिस्सा दुश्मन के हाथों में था और आखिरी कारण यह था कि कश्मीर को यह आश्वासन दिया गया था कि उसे संविधान सभा के गठन की अनुमति दी जाएगी और जनमत संग्रह के माध्यम से कश्मीर की जनता की इच्छा जानी जाएगी। ये तथ्य थे जिन्हें अभी पूरा किया जाना बाकी है और इसी कारण कोई स्थायी निर्णय नही लिया जा सका। यह अस्थायी उपबन्ध था।

उन्होने स्पष्ट रूप से कहा था कि वह और कश्मीर सरकार आशा करती है कि जम्मु और कश्मीर का भारत के साथ विलय हो, जैसा अन्य राज्यों के मामले में हुआ है तथा संविधान के उपबन्ध स्वीकार किए गए हैं। यह हमारी ओर से विवशता का प्रश्न नही है। भारत का संविधान यह नहीं कहता है कि जम्मू और कश्मीर की संविधान सभा जो भी मांगेगी वह भारत देगा। यह उपबन्ध नहीं है। उपबन्ध है—समझौता, सहमति।

आज कतिपय प्रस्ताव किए गए हैं। हम में से कुछ इन्हें पसन्द नहीं करते हैं। हमें क्या करना होगा?

यदि हम इसकी बात करते हैं तो हम प्रतिक्रियावादी कहलाते हैं, हम साम्प्रदायिकतावादी बन जाते हैं, हम दुश्मन बन जाते हैं। यदि हम चुप रहते हैं और यदि कोई विपत्ति एक वर्ष बाद आती है तो इसके तलबदार आप होंगे और आप भी कुछ नहीं कह पाएंगे—इसलिए आपको कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

मैं इस बात अर्थात काश्मीर के मामले पर अत्याधिक चिन्तित और उतना ही चिन्तित हूं कि जितना कोई दूसरा व्यक्ति है इसलिए हमें काश्मीर का एक सम्मानीय और शान्तिपूर्ण समाधान ढूंढ़ निकालना चाहिए। मैं काश्मीर की भूमि पर किए जा रहे एक बड़े परीक्षण को समझता हूं। देश के बंटवारे से किसी को फायदा नहीं हुआ मैं उस क्षेत्र से

आया हूं जहां लोग लगातार दुख झेल रहे हैं और वे सहते जा रहे हैं। हम प्रतिदिन, प्रतिक्षण बंटवारे के दुखदायी प्रभाव को राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति एक संकुचित और साम्प्रदायिक दृष्टिकोण अपनाने की दुखान्त सम्भावनाओं को समझते हैं। हम शेख अब्दुल्ला की नीति के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द क्यों नहीं करते। मैं अपनी आवाज बुलन्द कर सकता हूं। मैंने ढाई वर्ष पहले यह सरकार छोड़ दी है। दूसरी ओर मैंने जहां भी कश्मीर सरकार की नीति का खुलकर उल्लंख किया मैंने उसका समर्थन भी किया। मैंने कहा कि जो कुछ वहां हो रहा है वह एक महान परीक्षण है और हमें चुपचाप रहना है और यह देखना है कि यह परीक्षण सफल होवे। हम यह दिखाने में समर्थ होने चाहिएं कि भारत में केवल सैद्धान्तिक बात नहीं चलती बल्कि वास्तव में यह एक ऐसा देश है जहां हिन्दू, मुसलमान, इसाई और अन्य धर्मों के लोग निर्भय होकर समानता के साथ निवास करते हैं। हमारा संविधान इसी प्रकार का बना हुआ है और इसे हम दृढ़ता और ईमानदारी से लागू करना चाहते हैं। इसके विरोध में जहां-तहां कुछ मांगे उठ सकती हैं। लेकिन जब संविधान की अवहेलना होती है और नीतिगत कतिपय मामलों का विरोध किया जाता है तो इसमें कुछ संकुचित और साम्प्रदायिक लक्ष्य नजर आने लगता है ऐसी स्थिति में एक आशंका होने लगती है कि कहीं इतिहास की पुनरावृत्ति न हो। यह आंशका रहती है कि आप जो कुछ कर रहे हैं उससे भारत पर विपत्ति आ सकती है। उन लोगों के हाथ मजबूत हो सकते हैं जो एक सुदृढ़ संयुक्त भारत को नहीं देखना चाहते, उन लोगों के हाथ मजबूत हो सकते हैं जो इस बात में विश्वास नहीं करते कि भारत पृथक-पृथक राष्ट्रिकों का एक सम्मिश्रण है। ऐसी स्थिति खतरनाक है।

अब शेख अब्दुल्ला ने किस बात की मांग की है? उन्होंने संविधान में कतिपय संशोधन करने की मांग की है। हमें इस मामले पर शान्ति एवं सावधानीपूर्वक बिना किसी गरमा-गर्मी या उत्तेजना के चर्चा करनी चाहिए। हमें प्रत्येक संशोधन का अध्ययन करना चाहिए और उनसे तथा स्वयं से पूछना चाहिए कि यदि हम इस मामले में कुछ ढील देते हैं तो क्या हम भारत को आहत करते हैं अथवा क्या इससे हम कश्मीर को मजबूत बनाएंगे? मेरा यही दृष्टिकोण रहेगा। मैं इस बारे में बिना सोचे-समझे कुछ नहीं कहूंगा क्योंकि इससे भारत के संविधान के कुछ उपबन्धों का अतिक्रमण होगा। मैं ऐसा नहीं करूंगा। जब शेख अब्दुल्ला यहां थे तो मैं चाहता था कि प्रधान मंत्री विपक्ष में हम में से किसी को उनके पास भेजते। आज वे अपने निर्णयों के साथ हमारा सामना कर रहे हैं। मैं इस पर सार्वजनिक चर्चा नहीं करना चाहता क्योंकि मैं जानता हूं कि कुछ वर्गों में इसकी प्रतिक्रिया वाछंनीय नहीं हो सकती। वे हमारे सुझावों को अस्वीकार कर सकते हैं लेकिन मैं चाहता था कि हममें से वो व्यक्ति जिनका इस मसले पर प्रधान मंत्री महोदय से मतभेद है, उनसे मुलाकात कर लें। मैंने उनसे एक प्राइवेट बैठक में मुलाकात की और

हमने इस मसले पर पूर्ण रूप से खुलकर चर्चा की। लेकिन हम मित्रता के तौर पर शेख अब्दुल्ला तथा अन्य व्यक्तियों से मिलना चाहते थे और उन्हें अपने दृष्टिकोण से अवगत कराना चाहते थे। हम एक समझौता करना चाहते हैं। एक ऐसा समझौता जिसके अन्तर्गत भारत अपनी एकता कायम रख सके और कश्मीर पाकिस्तान से हटकर अपना पृथक अस्तित्व बनाए रखकर भारत में अपना विलय कर दे।

यह समस्या कब से चली आ रही है। हमें तटस्थ होकर इस बात पर गौर करना चाहिए। कुछ समय पहले शेख अब्दुल्ला की पेरिस से वापसी हुई और उन्होंने यहां आकर जो वक्तव्य दिए उनसे हमारे लिए यह परेशानी पैदा हुई। तब भी हमने इस बात पर ज्यादा बहस नहीं की विदेश में अपने पहले साक्षात्कार में उन्होंने अपने वक्तव्य में एक स्वतन्त्र कश्मीर के संबंध में अपने दृष्टिकोण को उजागर किया। और यहां आने के पश्चात् वे इसके बारे में बढ़ाचढ़ाकर कहने लगे तत्पश्चात् वे पुनः अपनी बात से मुकर गए और अपनी सफाई देने लगे और उसके बाद पिछले कुछ महीनों के दौरान उन्होंने जो भाषण दिए वे शान्तिभंग करने वाले उत्तेजक भाषण थे। यदि वे समझते हैं कि उनकी सुरक्षा भारत से बाहर रहने में है तो ठीक है, उन्हें ऐसे वक्तव्य देने दो, लेकिन हमें खेद है कि उनके लिए यह अनिवार्य भी हो सकता है। लेकिन यदि वे अन्यथा ईमानदारी से ऐसा समझते हैं जैसी मेरी हमेशा उम्मीद व इच्छा रही है, तो निश्चित रूप से उन्हे इसकी भी सफाई देनी होगी कि वे इस रद्दो बदल को क्यों चाहते हैं।

तीन-चार महीने पहले शेख अब्दुल्ला ने कश्मीर की संविधान सभा में कुछ ऐसे शब्द बोले जिन्हें वापस नहीं लिया गया, और इन शब्दों ने दलगत भावना से हटकर सभी भारत वासियों के दिलोदिमाग में काफी भ्रान्तियां पैदा की। मुझे नहीं मालूतः कि प्रधान मंत्री महोदय ने उक्त वक्तव्य देखा अथवा नहीं: ''हमारा शत-प्रतिशत प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य है। कोई देश हमारी प्रगति में अड़चन पैदा नहीं कर सकता। इस राज्य पर न तो भारत की संसद और न ही राज्य के बाहर किसी अन्य संसद् का कोई अधिकार है।''

यह एक अशुभ वक्तव्य है। मैं चाहूंगा कि प्रधानमंत्री महोदय और शेख अब्दुल्ला इस स्थिति पर बातचीत करें। मैं एक अन्तरिम उपाय के रूप में इस योजना का पूर्णरूप से अपने खुले दिल से समर्थन करुंगा।

प्रधान मंत्री ने कहा है कि इसमें कुछ भी निर्णायक नहीं है। यह अन्तिम निर्णय नहीं हो सकता क्योंकि इन मुद्दों पर अभी विस्तृत रूप से चर्चा की जानी है। लेकिन फिर भी मैं अपना समर्थन देने को तैयार हूं। इन दो शर्तों को पूरी होने दें।

शेख अब्दुल्ला को घोषणा करने दे कि वे इस संसद की प्रभुसत्ता स्वीकरते हैं। भारत में दो प्रभुसत्ता सम्पन्न संसदें नहीं हो सकतीं, आप कश्मीर को भारत का हिस्सा होने की

बात करते हैं और शेख अब्दुल्ला काश्मीर के लिए एक प्रभुसत्ता सम्पन्न संसद् की बात करते हैं। यह एक असंगत बात है। इस बात में विरोधाभास है। इस संसद का आशय थोड़े से हम लोगों से ही नहीं है जो इस का विरोध कर रहे हैं। इस संसद् में जनता की वह बहुलता सम्मिलित है जिसे छोटी-छोटी बातों से विचलित नहीं किया जा सकता और वह स्वतन्त्र भारत की प्रभुसत्ता को स्वीकार करने से क्यों डरे?

दूसरी बात यह है कि यह राष्ट्रपति के आदेश से संविधान के उपबन्धों में परिवर्तन करने का मामला नहीं है। हम मांग किए जा रहे कुछ परिवर्तनों पर गौर करते हैं। हम महाराजा के समर्थक हैं। हमारे विरुद्ध यही बात कही गई है। मैं उन्हें व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता हूं। हम इस महाराजा या इस तरह के किसी महाराजा के समर्थक नहीं है। लेकिन महाराजा वहां अपनी स्वतन्त्र इच्छा से नहीं है। भारत की संसद, संविधान ने उसे जम्मू और कश्मीर के संविधान का प्रमुख बनाया है। और यह कैसी विडम्बना है। वर्तमान समय में शेख अब्दुल्ला की सरकार संविधान के अनुसार महाराजा के प्रति उत्तरदायी है, उस व्यक्ति के प्रति उत्तरदायी है जिसे एक अभागा व्यक्ति बताया जा रहा है जिसने वहां आमूल-चूल परिवर्तन लाना है। महाराजा वहां संवैधानिक प्रमुख है। यदि आप समझते हैं कि महाराजा को इस व्यवस्था से अलग कर देना चाहिए और संविधान में संशोधन करना चाहिए तो ऐसा कहिए कोई वंशानुगत राजप्रमुख नहीं होगा। इस मामले पर विचार किया जाना चाहिए। हमें इस पर विचार करना चाहिए। लेकिन जरा इस बात पर गौर कीजिए कि इस मामले को कैसे उठाया गया है। एक हिन्दू महाराजा को हटाया जा रहा है। पाकिस्तान में लड़ाई का एक मुद्दा यह भी है। लेकिन हिन्दू महाराजाओं की शाही ताकतों को किसने समाप्त किया? शेख अब्दुल्ला ने नहीं बल्कि स्वतन्त्र भारत ने। हमने ऐसा किया हमने कहा कि किसी भी शासक के पास असाधारण शक्तियां नहीं होंगी, वह सरकार का प्रमुख होगा जो तकनीकी रूप से उसके प्रति उत्तरदायी होगी लेकिन तदन्तर वह एक निर्वाचित विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होगा। लेकिन अब इसका श्रेय लिया जा रहा है कि काश्मीर में एक अद्‌भुत कार्य किया जा रहा है। अपने प्रत्येक भाषण में वे कहते हैं—महाराजा, डोगरा राज समाप्त किया जा रहा है। क्या यह प्रचार है क्या यह आवश्यक है? आप बेकार में लाठी पीट रहे हैं। यह मामला तो समाप्त हो गया है। ऐसे कहने का अब क्या फायदा?

निर्वाचित राज्यपाल से संबंधित मामला क्या है मेरे पास यहां संविधान सभा की कार्यवाही वृत्तांत है। प्रधान मंत्री महोदय को याद होगा कि अपने संविधान में हमने सर्वप्रथम एक निर्वाचित राज्यपाल का प्रावधान किया था, और तत्पश्चात सरदार पटेल, प्रधान मंत्री महोदय तथा अन्य विद्वानों ने यह महसूस किया कि लोकतान्त्रिक ढांचे में, जिसका हमने विचार किया है, एक निर्वाचित राज्यपाल के लिए कोई स्थान नहीं होता।

भाषण को पढ़िए। इसमें कहा गया है कि राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करेगा और यदि राज्यपाल का चुनाव जनता द्वारा अथवा विधानमण्डल द्वारा होता है और मुख्य मंत्री का चुनाव भी होगा, तो ऐसी स्थिति में टकराव होने की आशंका बनी रहेगी, और पुनः राज्यपाल भी एक पार्टी का सदस्य होगा। प्रधान मंत्री महोदय ने इन सब बातों को स्पष्ट कर दिया था और दावा किया कि कुछ खास कारणों की वजह से तथा भारत की एकता को कायम रखने के लिए और केन्द्र तथा सभी राज्यों के बीच सम्पर्क बनाए रखने के लिए राज्य में राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल मनोनित किया जाएगा। आपने इन मुख्य बातों की उपेक्षा की है क्योंकि शेख अब्दुल्ला कहते हैं किः ''मुझे एक निर्वाचित प्रमुख चाहिए'' आप उन्हें तथा अन्य व्यक्तियों को वह प्रावधान क्यों नहीं बता देते जो आपने संविधान में किया है कि मूलतः हमने एक निर्वाचित राज्यपाल की व्यवस्था की थी लेकिन काफी सोच विचार के बाद हमने यह व्यवस्था समाप्त कर दी। फिर भी मैं तो कहता हूं कि आज अपने विवेक से आप यह महसूस करते हैं कि एक निर्वाचित प्रमुख अनिवार्य है, तो इस मसले पर विचार कीजिए। इसे एक विशेष प्रस्ताव के रूप में लाइए। हमें इसके प्रत्येक पहलू पर चर्चा करनी होगी। क्या आप प्रत्येक राज्य में निर्वाचित प्रमुख उपलब्ध कराएंगे? वास्तव में, समय के साथ-साथ जैसे-जैसे घटनाक्रम चलता जाएगा हम राज्यपाल का पद समाप्त कर लेंगे। राज्यपाल का पद बहुधा निराश, पराजित, अस्वीकृत, अवांछित मंत्रियों आदि विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों के लिए आरक्षित रहता है। हमें इस श्रेणी की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। और यदि आप इन्हें बनाए रखना चाहते हैं तो बनाए रखिए। विशेष रूप में मेरी कोई रूचि नहीं है। लेकिन यह वह परिवर्तन होगा जिसका कोई औचित्य नहीं दिया जा सकेगा।

अब झण्डे की बात आती है झन्डे का अपना महत्व है। इस पर प्रधान मंत्री यह नहीं कहेंगे कि यह एक भावनात्मक मामला है। तीन दिन पहले दस्तावेजों में यह घोषणा की गई थी कि भारत का झण्डा केवल दो औपचारिक अवसरों पर ही फहराया जाएगा और अन्यथा वहां केवल राज्य का झन्डा ही फहराएगा। यदि आप समझते हैं कि इससे भारत की एकता और अखण्डता पर आंच नहीं आएगी और इससे उक्त विघटनकारी प्रवृत्तियों को शह नहीं मिलेगी तो पूर्णतया स्वीकार कीजिए और इसके अनुरूप कार्य कीजिए। लेकिन ऐसा शेख अब्दुल्ला की मांग के आगे झुकने के रूप में क्यों करें?

वह अपने आपको प्रधान मंत्री कहना चाहते थे, उन्होंने इसी तरह से शुरूआत की थी। हममें से कुछ इस बात को पसंद नहीं करते थे, हम जानते थे कि कश्मीर सहित भारत का एक ही प्रधान मंत्री हो सकता है, आप दो प्रधान मंत्री कैसे बना सकते हैं, एक दिल्ली में और दूसरा श्री नगर में जो अपने आपको मुख्य मंत्री नहीं बल्कि प्रधान मंत्री कहेगा। पहले तो मैंने सोचा कि यह एक मामूली बात थी और हमें इस पर ध्यान नहीं देना चाहिए

लेकिन देखिए घटनाक्रम का विकास कैसे हो रहा है—हर कदम पर एक विशेष व्यवहार—इसलिए उसका सही तरीके से इलाज किया जाना चाहिए। नागरिकता अधिकारों और मूलभूत अधिकारों को देखिए। हम यह क्या कर रहे हैं? क्या सदन ने इस पर विचार किया है? क्या सदन ने इस सम्बन्ध में की गई सिफारिशों की अच्छाई-बुराई पर बहस की है? आप नागरिकता के सम्बंध में संविधान में दिए गए प्रावधानों को बिना विचार किए बदल रहे हैं। यह कहा गया था कि धनी व्यक्ति कमीर जा कर वहां सम्पत्ति खरीद रहे हैं। जैसा कि प्रधान मंत्री ने अपने वक्तव्य में कहा है कि अनुच्छेद 19(5) में इस सम्बंध में एक प्रावधान है। हमने संविधान तैयार करते समय इस अनुच्छेद की भली-भांति जांच की थी। उस समय विभिन्न प्रदेशों ने कोशिश की थी और वे बड़े पैमाने पर सम्पत्ति की अबाध खरीद-फरोख्त पर कोई अंकुश चाहते थे। हमने इस बारे में क्या कहा है? हमने कहा है कि किसी राज्य का विधानमंडल जनहित में अथवा अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के हित में सम्पत्ति खरीदने तथा एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाने में उचित निमंत्रण रखने सम्बंधी कानून बना सकता है। अगर शेख अब्दुल्ला चाहते हैं कि कश्मीर में कुछ विशेष नियंत्रण रखा जाए तो इसके लिए खंड दिया गया है। मैं प्रधान मंत्री से इस बारे में स्पष्ट रूप से पूछना चाहूंगा। उन्होंने इसका उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने इसे छोड़ दिया है। क्या कश्मीर विधान सभा द्वारा लगाए जाने वाले नियंत्रण इस अपवाद सहित संविधान के अनुरूप होंगे या इसे और अधिक अधिकार दिए जाएंगे? नागरिकों की चार श्रेणियां हैं। मैरे पास इस बारे में सूचनाएं हैं, लेकिन उन्हें पढ़ने का समय नहीं हैं। लेकिन इन्हें और ये निरकुंश महाराजा समय में बनायी गयी थी। क्या वे नागरिकों की चार श्रेणियां रखेंगे या इन्हें समाप्त कर देंगे? मुझे लार्ड कर्जन द्वारा लिखी गई एक कहानी याद आ रही है। इंग्लैंड का एक सम्भ्रान्त व्यक्ति 50 या 60 वर्ष पहले अपनी पत्नी सहित फारस के शाह के दरबारे में गया। उन्हें शाह के सामने पेश किया गया। शाह ने उन पर ध्यान नहीं दिया और उसके सैक्रेटरी ने पूछा "कि महिला को क्या सम्मान दिया जाना चाहिए।" उस समय तीन प्रकार के "आर्डर आप चेस्टिटी" थे। और उसे "आर्डर ऑफ चेस्टिटी—क्लास थ्री" दिया गया। इस प्रकार यह आर्डर दिया गया और तब यह पता चला कि यह बात हतप्रभ करने वाली थी। इसके बाद इस में संशोधन किया गया। जम्मू और कश्मीर में नागरिकों की चार श्रेणियां—किसलिए हैं। इन्हें समाप्त कर दिया जाना चाहिए। नागरिकों की केवल एक श्रेणी रहनी चाहिए। क्या भारतीय आपकी सारी सम्पत्ति ले जाएंगे? भारतीयों को यहां सम्पत्ति खरीदने का सुझाव नहीं दिया गया था। मान लीजिए किसी भारतीय ने यहां आकर कुछ सम्पत्ति खरीद ली तो आप इस बारे में कुछ कानून बना सकते हैं। हमें यह बात स्वीकार है, डर किस बात का है? हमारा प्रधान मंत्री एक कश्मीरी है। हमारा गृह मंत्री भी एक कश्मीरी है। हम भारत में खुश हैं।

क्या इस बात का डर है कि भारतीय कश्मीर पर चढ़ाई कर देंगे और उनमें से एक मुख्यमंत्री बन जाएगा? हम जम्मू और कश्मीर पर चढ़ाई नहीं कर रहे हैं। मैं देश के इस खूबसूरत हिस्से में नहीं गया हूं। मैं वहां जा कर कुछ समय रहना चाहूंगा। मेरे पास घर खरीदने के लिए पैसा नहीं है। फिर भी, मैं वहां जाना चाहूंगा, यह बात हमारे मूलभूत अधिकारों में कही गई है। वहां पर नए परिवर्तन हो रहे हैं, जोकि ठीक नहीं हैं। प्रधान मंत्री ने दो-तीन बातों का—स्कालरशिप और नौकरी आदि का उल्लेख किया था। यह आदि क्या है? और नौकरियां क्यों? क्या नौकरी में आप एक और दूसरे नागरिक के बीच अंतर करना चाहते हैं। हमारे संविधान में केवल संसद को ही नौकरी में प्रवेश देने तथा किसी को सुरक्षा देने के बारे में विशेष प्रावधान बनाने का अधिकार है। अब इसी तरह की मांग दक्षिण के राज्यों में भी की गई। मैं पिछले कुछ सपताहों से उनकी मांगों को पढ़ रहा हूं। वे भी कुछ प्रावधानों पर कठोर नियंत्रण किए जाने से विचलित हो रहे हैं। जब आप उन्हें यह सुविधा दे देंगे तो वे भी इसी प्रकार का संरक्षण चाहेंगे।

एक अन्य बात जिसके बारे में प्रधान मंत्री ने उल्लेख नहीं किया है। मैं आश्चर्य चकित था कि एक विशेष प्रावधान कैसे किया जा सकता है। जैसा कि आप जानते हैं कि दो लाख व्यक्ति पाकिस्तान चले गए हैं। इस बारे में यह प्रावधान है कि इन लोगों को कश्मीर में बुलाने के लिए एक विशेष कानून बनाया जाएगा। लड़ाई अभी जारी है। एक ओर नागरिक स्वतंत्रता के मूलभूत अधिकारों को और कड़ा बनाने का विचार है और दूसरी ओर आप इसमें ढील देकर पाकिस्तानियों को कश्मीर जाने की अनुमति दे रहे हैं। इसके लिए एक विशेष कानून होना चाहिए और इस बारे में एक विशेष समझौता है। शेख अब्दुल्ला को, पाकिस्तान भागने वालों को वापस बुलाने के लिए विशेष प्रावधान करने की बैचैनी क्यों हो रही है जो कि वापस आने को तैयार नहीं हैं। क्या इसका कोई विशेष अर्थ है। इससे सुरक्षा पर क्या प्रभाव पड़ेगा? जो मारे गए हैं वापस नहीं आ सकते हैं जो जीवित हैं अगर उन्हें भारत में विश्वास है और अगर वे जम्मू में रहना चाहते हैं तो वे आ सकते हैं। उनकी जांच होनी चाहिए। उन्हें वापस आने दो। इसके लिए किसी विशेष प्रावधान की आवश्यकता नहीं है। जहां तक जम्मू का सम्बन्ध है, जैसा कि आप जानते है कि यह एक त्रासदीपूर्ण राज्य था। यह दोनों पक्षों द्वारा किया गया था। इसमें मुसलमान थे जो क्रुद्ध थे और हिन्दु भी थे जो मर मिटने को तैयार थे। वह एक अंधकारमय समय थी जब भारत के अधिकांश हिस्सों में यही हाल था। लेकिन आज क्या स्थिति है? आपने कितने हजार व्यक्तियों को आने की अनुमति दी है। मैं संख्या भूल गया हूं। वे जम्मू और कश्मीर से आए हैं तथा भारत पर एक भार स्वरूप हैं। इस बारे में कोई विशेष प्रावधान क्यों नहीं है कि उन्हें तत्काल जम्मू और कश्मीर वापस बुलाया जाए? वहां से हजारों व्यक्ति आए हैं।

जहां तक दूसरी स्थिति का सम्बन्ध है यह भी एक गम्भीर मामला है। जम्मू और कश्मीर के एक-तिहाई भाग में, जो कि अब पाकिस्तान के नियंत्रण में है, वहां से लगभग एक लाख सिख और हिन्दू आए हैं और उन्होने कश्मीर की सीमा के अंदर आश्रय लिया है। उनका क्या होगा? उनकी देखभाल की जाएगी। आप उनके बारे में सोच रहे हैं जो इस समय पाकिस्तानी हो गए हैं, आप उन्हें फिर से कश्मीरी नागरिक का दर्जा दे देंगे लेकिन वे अभागे जो आज यहां आश्रय के लिए आए हैं उन्हें रहने के लिए मकान कैसे दिए जाएंगे। क्या वहां उनके लिए पर्याप्त मात्रा में भूमि है। ये ऐसे मसले हैं जिन पर ध्यान नहीं दिया गया है।

आपातकालीन स्थिति के बारे में मेरा कहना है कि यह एक अद्‌भुत स्थिति है। अगर आंतरिक गड़बड़ी के आधार पर आपातकालीन स्थिति लागू की गई है तो भारत के राष्ट्रपति इस बारे में निर्णय नहीं कर सकते हैं। भारत के राष्ट्रपति को डर किस बात का है। क्या आप भारत के राष्ट्रपति का इससे बड़ा अपमान कर सकते हैं। कश्मीर सरकार को भारत के संविधान के अनुरूप चलना चाहिए। अगर वहां आंतरिक गड़बड़ी है जो उनकी अपनी कुव्यवस्था का परिणाम है, तो वे इस बारे में अनुरोध क्यों करते हैं?

वे आपसे इस सम्बन्ध में अनुरोध क्यों करते हैं अगर वे उदाहरण के लिए हमारे अन्य मित्रों के माध्यम से चीन अथवा रूस से मिले हुए हैं? वे आपके पास आकर हस्तक्षेप करने का अनुरोध क्यों करते हैं। मैं प्रधान मंत्री से पूछना चाहूंगा कि इस सम्बन्ध में अन्य आपातकालीन स्थिति सम्बंधी प्रावधान लागू होंगे या नहीं। जैसा कि आप जानते हैं कि संविधान में आपातकालीन स्थिति सम्बंधी अन्य दो अत्यंत महत्वपूर्ण प्रावधान हैं। अनुच्छेद 354 के अंतर्गत आपातकालीन स्थिति लागू होने पर राजस्व के वितरण से सम्बंधित प्रावधानों को लागू करने से है तथा अन्य अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राज्य में सरकार के असफल हो जाने की स्थिति में लागू किए जाने वाले प्रावधान आते हैं।

क्या शेख अब्दुल्ला ने वित्तीय आपातकालीन स्थिति के रूप में अनुच्छेद 356 को लागू करना स्वीकार किया है या उसने अनुच्छेद 360 में दिए गए अत्यंत महत्वपूर्ण प्रावधानों को स्वीकार किया है, क्या उसने इस प्रावधान को स्वीकार कर लिया है? प्रधान मंत्री ने इस बारे में कोई उल्लेख नहीं किया है, उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार को भी अभी स्वीकार नहीं किया गया है।

मैं यह रचनात्मक सुझाव देते हुए अपनी बात समाप्त करुंगा, अपनी टिप्पणियां मैंने शेख अब्दुल्ला की प्रतिक्रिया पर विस्तारपूर्ण टिप्पणियों के बिना की है। जब पिछली बार वे दिल्ली में थे तो उन्होने मुझे लिखा था कि वे मुझसे मिलना चाहते हैं। उस दिन मैं यहां नहीं था, इसलिए मैं उनसे मिल नहीं सका। मैंने उन्हें एक दोस्ताना उत्तर भेजा।

शायद मैं उन्हें फिर कभी मिलूं। वास्तव में मेरा उनसे या उनका मुझ से मिलने का प्रश्न नहीं है, मेरा कहना है कि हमें कुछ नियम बना कर आगे चलना चाहिए। सबसे पहले राष्ट्रपति द्वारा अपनी शक्तियों के प्रयोग से मौलिक मामलों में संविधान के प्रावधानों में सारभूत परिवर्तन करने का आदेश देने का प्रश्न ही नहीं उठता।

यदि प्रधान मंत्री महसूस करते हैं कि कतिपय महत्वपूर्ण उपबंधों की पुनः जांच करने के लिए कोई मामला तैयार किया गया है, उदाहरण के लिए भूमि संबंधी उपबन्ध ही लें। यदि आप महसूस करते हैं कि भूमि का अधिग्रहण बिना मुआवजे का भुगतान किए ही कर लिया जाए, तो इसके लिए संविधान में उपबंध करना होगा आप इन सभी मदों पर विचार करें और अपने उपबंध इतने उदार बनाएं ताकि चाहे तो आप उन्हें पूरे भारत में लागू कर दें अथवा केवल उन भागों में लागू करें, जहां यह भारतीय संसद यह महसूस करे कि वहां इस प्रकार की विशेष व्यवस्था आवश्यक है। संवैधानिक उपबंधों के अनुसार ही कार्यवाही की जाए, संविधान के साथ खिलवाड़ मत कीजिए। संविधान एक पवित्र दस्तावेज है और यह एक ऐसा दस्तावेज है जिसको तैयार करने में कड़ा परिश्रम और गहन विचार-शक्ति लगी थी। यदि आप महसूस करते हैं कि भारत में नई व्यवस्था जो धीरे-धीरे विकसित हो रही है। पर विचार करने की दृष्टि से चाहे कशमीर में, अथवा चाहे भारत के किन्ही अन्य भागों में कुछ परिवर्तन आवश्यक हैं, तो देश के लोगों को अपने विचार प्रकट करने का पूरा-पूरा अवसर दीजिए।

अन्त में मुझे कहना है कि हम पर यह आरोप लगाया गया था कि हम में से कुछ लोगों ने जम्मू और लद्दाख के बारे में एक दूसरे से भिन्न कारणों को महत्व दिया है। मैं आपको और सभा को आश्वासन देता हूं कि मैं नहीं चाहता कि जम्मू और कश्मीर का विभाजन किया जाये। मैं विभाजन की विभीषिका से परिचित हूं। यदि विभाजन किया गया, तो उसके क्या परिणाम होंगे, इसे में जानता हूं। लेकिन विभाजन को रोकने की जिम्मेदारी उन लोगों पर है, जो आज जम्मू और कश्मीर के मालिक बने बैठे हैं और भारत के संविधान को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। यदि आज जम्मू के लोग दावा करते हैं कि उन्हें अलग दर्जा दिया जाना जाए, अलग दर्जा इस मायने में कि उन्हें पूरी तरह भारत में शामिल होने दिया जाए, तो इसमें क्या अपराध है? इस पर ध्यान दीजिए, यह भारत से भागने का प्रश्न नहीं है—यदि वे कहते हैं कि वे स्वतंत्र भारत का संविधान पूरी तरह स्वीकार करना चाहते हैं, तो क्या इसमें उन्होंने कोई अपराध कर दिया है? मैं यह सुझाव नहीं दे रहा हूं कि आप कश्मीर को अथवा कश्मीर घाटी को भारत से अलग कर दें। और इस मामले पर मुझे अथवा इस सभा में बैठे हम लोगों को निर्णय नहीं करना है। जैसा कि प्रधान मंत्री ने विल्कुल ठीक ध्यान दिलाया है, यह मामला उस

भूभाग के लोगों को तय करना होगा। अब, मान लीजिए जम्मू और लद्दाख के लोग महसूस करते हैं कि या तो जम्मू और कश्मीर के मामले में, इनका पूरा विलय होना चाहिए अथवा, यदि शेख अब्दुल्ला को यह बात स्वीकार नहीं हैं, तो कम से कम ऐतिहासिक रूप से अथवा अन्यथा अलग-अलग अस्तित्व रखने वाले इन दो प्रांतों को भारत में शामिल होने दिया जाए। कश्मीर की स्थिति को, वे चाहें, बने रहने दिया जाए, हो सके तो कि उसे और अधिक स्वायत्तता दे दी जाए, भारत द्वारा हस्तक्षेप की संभावनाएं कम की जाएं; यह ऐसी संभावना है, जिससे हम इनकार नहीं कर सकते। मुझे आशा है कि इस प्रश्न पर, इसकी प्रत्येक कठिनाई ध्यान में रखते हुए विचार किया जाएगा।

कश्मीर के मेरे मित्र, मौलाना मसुओदी ने, जिनका मैं अत्यधिक आदर करता हूं—आज प्रातः मैंने उनका भाषण समझने का प्रयास किया—जम्मू का हवाला दिया गया था यहीं अंतिम मुद्दा है जिसका मैं उत्तर दूंगा। अच्छा, यदि जम्मू यह मांग करता है, उन्होंने कहा—कि जम्मू एक ऐसा प्रान्त है, जहां वर्ष 1941 में मुस्लिम लोगों का बाहुल्य था। उन्होंने यह तो बताया किन्तु पूरी कहानी नहीं बताई। निस्संदेह, 1941 में यह मुस्लिम बहुल प्रान्त था, किन्तु अन्य उन जिलों सहित यह मुस्लिम बहुल हो गया, जो इस समय पाकिस्तान के अधिकार क्षेत्र में चले गए हैं। अतः यदि आप उन क्षेत्रों को शामिल न करें............

मैं उन्हें वापस लैटाने की बात नहीं कह रहा हूं। मुझे बड़ी खुशी है कि उन्होंने यह प्रश्न पूछा है। प्रधान मंत्री का कहना है कि उक्त क्षेत्र पर पुनः अधिकार नहीं लिया जाएगा। किन्तु यह एक भिन्न प्रश्न है। आप इसे पुनः अधिकार में लेने नहीं जा रहे हैं और यह संभव नहीं है। कोई भी स्थिति हों, उन लोगों ने जम्मू और कश्मीर के हितों के विरुद्ध कार्य किया है, जैसा कि कई बार कहा जा चुका है भारत की अपेक्षा पाकिस्तान के साथ उनके अधिक मैत्रीपूर्ण संबंध हो गए हैं।

यदि आप 1951 की जनगणना के आंकड़े देंखे—आंकड़े प्रकाशित नहीं किए गए हैं, लेकिन हमारे अधिकार में जो भूभाग है, उसके अनुसार जम्मू की जनसंख्या में 75 प्रतिशत हिन्दू होंगे। लेकिन मैं हिन्दू और मुसलमानों के आधार पर तर्क नहीं दे रहा हूं। मुझे यह बात स्पष्ट करने दीजिए। मैं उन लोगों की इच्छा के आधार पर तर्क दे रहा हूं जो पूरे के पूरे अथवा कुछ भाग के रूप में भारत में आते हैं। यदि लद्दाख और जम्मू, ये दोनों प्रान्त कहते हैं कि ये अपनी सारी जनता सहित भारत में आएंगे तो उन्हें ऐसा करने दीजिए।

कश्मीर के लोगों के लिए, जिस अधिकार की आप मांग कर रहे हैं, वही अधिकार जम्मू और लद्दाख के लोग भी मांग सकते हैं। हमें मित्रता की भावना से कार्यवाही करनी

चाहिए। लगभग एक महीने पहले शेख अब्दुल्ला ने स्वयं कहा था कि यदि जम्मू और लद्दाख के लोगों ने वास्तव में यह महसूस किया है उन्हें भारत में ज़ाना है, तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी—मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप इस तरह से कार्यवाही कीजिए किन्तु उन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को अपने इरादे निश्चित करने का अवसर दीजिए, इस प्रकार से कार्यवाही करना ठीक रहेगा। और यह शेख अब्दुल्ला के बुनियादी दावों, जिनका प्रधान मंत्री ने समर्थन किया है अर्थात आत्म निर्णय के सिद्धान्तों के अनुकूल भी रहेगा।

13

पाकिस्तान और भारत के मध्य अप्रवासियों की आवाजाही

आज हमें एक ऐसे अत्यधिक महत्वपूर्ण मामले पर विचार करना है जो न केवल लाखों लोगों से अपितु, सम्पूर्ण देश से संबंधित है। ऐसा पहली बार नहीं है कि यह मामला इस सभा के समक्ष लाया गया हो। इस गम्भीर विषय पर अपने विचार प्रकट करने के लिए देश के अनेकों नागरिकों में पिछले ढाई वर्षों के दौरान यह मामला मुझे दिया है।

आज, मैं जब इस प्रस्ताव पर बोलने जा रहा हूं तब एक टीस और विषाद की भावना के साथ-साथ दायित्व और कर्तव्य की भावना से भी अभिप्रेत हूं। अनेक लोगों के साथ मेरा भी विचार है कि भारत सरकार द्वारा अब तक अपनाई गई नीतियां कतई संतोषजनक नहीं रही हैं और वह लक्ष्य प्राप्ति में असफल रही है। हममें से अनेक ने मत व्यक्त किए हैं जो सरकार द्वारा स्वीकार्य नहीं है। हमारे सामने मौजूद मुद्दे इतने अधिक महत्वपूर्ण हैं कि हममें से कोई शेष और भावावेश में बहना नहीं चाहेगा बल्कि इस आशा में अपने महत्वपूर्ण विचार अत्यधिक स्पष्टता और निभीर्कता से रखेंगे कि इसके पहले कि इसमें और अधिक विलम्ब हो इस विकट समस्या का समाधान किया जा सके।

'पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों के प्रश्न को पिछले पांच वर्षों में विभिन्न तरीकों से निपटाया गया है। जहां तक पश्चिमी पाकिस्तान का सम्बन्ध है वहां अल्पसंख्यकों की समस्या वस्तुतः रूप से समाप्त कर दी गई है पिछड़े पखवाड़ेसिंध से दो जहाजों में प्रवासी भारत आये और मैं यह नहीं जानता कि वहां अभी कितने हजार बाकी हैं।

जहां तक पूर्वी पाकिस्तान का संबंध है बंटवारे के समय हिन्दू अल्पसंख्यकों की जनसंख्या लगभग 1 करोड़ 40 लाख थी। सरकारी आंकड़ों के अनुसार पिछले पांच वर्षों में लगभग 30 लाख लोग देश छोड़कर बाहर जा चुके हैं। हम इस आंकड़ों की सत्यता पर विश्वास नहीं करते लेकिन मैं ब्यौरे में नहीं जाना चाहता। यदि हम पाकिस्तान की

* लोक सभा वाद विवाद, 15 नवम्बर, 1952, कालम 596—619

पिछली जनगणना रिपोर्ट को ही देखें तो प्रतीत होता है कि लगभग 45 लाख हिन्दू देश छोड़कर बाहर जा चुके हैं क्योंकि इस जनगणना के अनुसार पूर्वी बंगाल में इस समय हिन्दू जनसंख्या 95 लाख के लगभग है।

इस मुद्दे को लेकर भारत और पाकिस्तान के बीच एक बार, दो बार नहीं बल्कि तीन बार करार और समझौते हुये और हम सभी को स्पष्ट रूप से याद है कि भारत के प्रधान मंत्री और पाकिस्तान के वज़ीरे आज़म के बीच 8 अप्रैल, 1950 को करार किन दुःखद परिस्थितियों में हुआ था। नियतिवश मुझे उस करार का विरोध करना पड़ा—विरोध इस आशय से नहीं करना पड़ा कि उस करार में कुछ भी हितकर न था, किन्तु मुझे इस आधार पर विरोध करना पड़ा कि वही लोग, जो इस नर-संहार के जिम्मेदार थे, फिर से उन्हें ही अल्पसंख्यकों की देख रेख करने का दायित्व सौंपा जा रहा था। मुझे लगा कि यह योजना काम नहीं करेगी। उस करार की भाषा कितनी शानदार थी? उसकी भाषा मेरे सामने है। मैं इसे फिर से नहीं पढ़ना चाहता किन्तु उसमें जो सभी उच्च भावनायें प्रकट की गई थीं और उचित रूप से प्रकट की गई थी, उन्हें साकार नहीं किया गया। आखिर पाकिस्तान से कहा जा रहा था? उससे कोई अस्वाभाविक और अनूठी बात नहीं कही जा रही थी। हमने उससे केवल यही तो कहा था कि वह एक सभ्य देश की तरह व्यवहार करे और अपनी अल्पसंख्यक जनता की देखभाल करे। किन्तु उस अवसर पर जो कोमल भाषा प्रयोग की गई, उसके बावजूद पाकिस्तान पिछले ढाई वर्षों में करार के मूलभूत सिद्धांतों का उल्लंघन करता रहा है और हम पिछले कुछ महीनों में एक बार और वहां से बड़े पैमाने पर प्रवर्जन देख चुके हैं।

यहां मैं जिस एक बात पर बल देना चाहूंगा और जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है, वह यह है कि भारत में जनमत केवल तभी दोलायमान होता है जब बड़ी संख्या में लोग देश छोड़ते हैं। दुर्भाग्य, लज्जा, वेदना और अपमानभरी अपनी व्यथायें लेकर जब ये अभागे लोग सैंकड़ों, हजारों बल्कि लाखों की तादाद में आते हैं, केवल तभी जनमत प्रभावित होता है और हमारी सरकार इस मामले पर नये सिरे से विचार करना शुरू करती है। किन्तु यदि प्रवर्जन एकसाथ भारी तादाद में न हो, होम्योपेथी की दवाओं के प्रभाव की भांति धीमे-धीमे हो, तो जाहिर है कि उसकी ओर पर्याप्त ध्यान नहीं जाता और यह नतीजा निकाल लिया जाता है कि पूर्वी पाकिस्तान में सब ठीक-ठीक चल रहे हैं।

पिछले ढाई सालों में हममें से अनेक व्यक्ति बार-बार इस बात को दोहराते रहे हैं कि सही मामलों में इस प्रश्न पर केवल आकंड़ों के आधार पर विचार नहीं किया जा सकता। मैं आंकड़ों के महत्व को नहीं नकारता, इसके लिये समस्या के प्रति मानवीय दृष्टिकोण भी अपनाना होगा और विशेषकर यह पता लगाने के लिये कि ये लोग पूर्वी

पाकिस्तान में किन हालातों में रह रहे हैं, उन्हें किन शर्तों को स्वीकार करने के लिये बाध्य किया जा रहा है और क्या अल्पसंख्यक सचमुच वहां रह सकते हैं, ऐसा करना आवश्यक है। दुर्भाग्यवंश ऐसा किसी भी कारण से हो पाकिस्तान में सूचना तन्त्र के कारण हो अथवा उसकी ओर से सहयोग के अभाव के कारण हो ऐसी जानकारी हमेशा नहीं मिलती रही है।

मैं चाहता हूं कि यह सभा एक बात ध्यान में रखें। ये अभागे लोग जो अब वहां से बाहर आ रहे हैं, उन्होंने इन सब हालातों के बावजूद पूर्वी पाकिस्तान में रहने का निश्चय किया था। 1950 की दुखद घटनाओं के बावजूद, जिनमें कुछ ही महीनों के भीतर भारी पैमाने पर 50,000 हिन्दू मार दिये गये थे और जिनमें स्पष्टतः उस राज्य के शासकों की मिली भगत से बेमिसाल बर्बरतापूर्ण घटनायें हुई, उन्होंने ऐसा किया। इन सब के बावजूद इन लोगों ने वहीं रहने का निश्चय किया, आखिर कौन अपना घर-बार छोड़ना चाहता है और किस आशा से छोड़ना चाहता है? बेशक हमने उनके लिये अपने दरवाजे खोल दिये हैं, किन्तु हम जानते हैं कि फिर से बसाना कितना कठिन है। मनुष्य को एक बार अपनी जगह से उखाड़ दिया जाये तो उसका पूर्णतया भिन्न परिस्थितियों में फिर से बसना आसान नहीं है।

पिछले कुछ महीनों में, सरकार के मुताबिक करीब 3 लाख, किन्तु हमारे मुताबिक इसके कम से कम दो गुने लोगों को बाहर जाने के लिये मजबूर किया गया। ऐसी स्थिति में हम सहज ही यह महसूस कर सकते हैं कि किन बाध्यकर परिस्थितियों ने उन्हें ऐसा करने के लिये विवश किया।

उनके एक देश को छोड़, दूसरे देश जाने के बुनियादी कारण क्या हैं? जैसाकि हम सब जानते हैं पहला कारण तो स्वयं पाकिस्तान देश की अवधारण ही है। पाकिस्तान हिन्दुओं और भारत के प्रति घृणा से जन्मा था। हालांकि यह समझ गया था कि पाकिस्तान बनाने वाले भारत के साथ सद्भावना का वातावरण बना कर ठीक से बस सकेंगे और अपने देश के विकास के लिये सोचेंगे, किन्तु वे आशायें झुठला दी गई हैं। पाकिस्तान के निर्माता का मुख्य उद्देश्य यही था कि पूर्णरूप से एक इस्लामी देश का निर्माण किया जाये और उनके स्थान पर आने वालों ने हर सम्भव तरीके से इस आदर्श को कार्यान्वित किया। हिन्दुओं को सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक, धार्मिक और राजनितिक-हर क्षेत्र से अलग कर दिया गया है। उनसे जिम्मियों जैसा व्यवहार किया जाता है।

दूसरा कारण है, अल्पसंख्यकों को त्रस्त कर देश से निकालने-बाहर निकालने की नहीं, बुरी तरह संत्रस्त कर निकाल बाहर करने की नीति। मुझे इसका उल्लेख करना पड़ेगा

क्योंकि कल ही पुनर्वास मंत्री ने एक प्रश्न उठाया था कि यदि पाकिस्तान के शासकों की यह नीति है कि अपने अल्पसंख्यक समुदायों को अत्यन्त त्रास देकर बाहर निकलने के लिये विवश कर दिया जाये, तो पासपोर्ट की व्यवस्था हो जाने के बाद अधिक लोग वहां से क्यों नहीं आ रहे हैं। पाकिस्तान को भारी संख्या में लोगों को जाने से क्यों रोकना चाहिए? किन्तु वह बाहर नहीं निकाल रहा, संत्रस्त कर बाहर निकलने को विवश कर रहा है क्योंकि यदि एकबारगी भारी संख्या में लोग बाहर चले जाते हैं तो तत्काल भारत में इसकी प्रतिक्रिया होती है और स्वाभाविक रूप से इससे ऐसी स्थिति पैदा हो सकती, जिसका पाकिस्तान इच्छुक नहीं होगा।

महोदय, तीसरी बात यह है कि केवल हिन्दू अल्पसंख्यकों पर ही हमले नहीं किए जा रहे हैं और यह एक ऐसा लक्षण है जिसे हम आज इस भारी समस्या पर विचार करते समय नहीं भूल सकते हैं, जो लोग आज सत्ता में हैं उन्होंने इस ढंग से अपना प्रशासन चलाया है कि लोकतांत्रिक विचारों को अभिव्यक्त करके कें किसी प्रयास अथवा वास्तविक स्वतंत्रता के प्रति निष्ठा पर रोक लगा दी गई है। हम उस महान नेता अब्दुल गफ्फार खां अथवा उनके देशवासियों की लगातार नजरबंदी को और किस तरह अभिव्यक्त कर सकते हैं जो भले ही मुसलमान है फिर भी पाकिस्तान के जेलों में सड़ रहे हैं और जिनके विरूद्ध केवल एक सप्ताह पहले उत्तर पश्चिम सीमान्त प्रान्त के मुख्यमंत्री ने आरोप लगाया है कि आखिरकार वे भारत के जासूस और दोस्त ही हैं और उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। भाषा के मुद्दे पर पूर्वी बंगाल में हाल में हुई गड़बड़ी को हम कैसे बताएं जब 18 मुसलमान छात्रों के सीनों में गोलियां लगी न कि उनकी पीठ में क्योंकि उनमें अपनी मातृभाषा को मान्यता दिलाने और संरक्षण के लिए गोलियां झेलने का साहस था। वहां पर भी वे लक्षण थे, समस्या का अन्तिम हल निकालने के लिए यदि हम वास्तव में चिंन्तित हैं तो इन सभी बातों पर हमें ध्यान देना होगा।

लगभग चार माह पूर्व जब मैंने आंकड़ों के बारे में प्रधान मंत्री के गलत दृष्टिकोण का उल्लेख किया था तो वे नाराज हो गए थे। उन्होंने मुझे आंकड़े प्रस्तुत करने की चुनौती दी यहां पर चुनौती या प्रति चुनौती देने का प्रश्न नहीं है परन्तु मैं उनसे अनुरोध करूंगा कि सारे मामले पर विचार करने के लिए त्रुटिपूर्ण तरीकों को छोड़ दें। आंकड़े क्या हैं? ये आंकड़े उन लोगों के हैं जो एक देश से दूसरे देश में जाते हैं, उन्हें कैसे प्राप्त किया जाता है? ऐसे प्रत्येक व्यक्ति पर जो पाकिस्तान जाता है या वहां से आता है यह दर्शनि वाली मोहर नहीं लगी है कि वह हिन्दू है या मुसलमान है परन्तु कुछ मोटे तौर पर और अन्दाजे के तौर का तरीका अपनाया जाता है और प्रवासियों का साम्प्रदायिक विभाजन किया जाता है। तत्पश्चात् पूर्वी बंगाल और पश्चिमी बंगाल के बीच 700 मील की सीमा को छोड़ते हुए केवल दो रेलवे स्टेशनों पर आकलन किया जाता है। अतः जब सरकार मूलतः इन

आंकड़ों के आधार पर कार्यवाही करती है और अपनी गलत नीति को युक्त संगत ठहराने की कोशिश करती है तो महोदय, मुझे कहना पड़ता है कि सरकार कुछ ऐसा कर रही है जो न केवल अपने आप में गलत है बल्कि वह पूर्णतः लोगों के प्रति भी अन्याय है। समस्या को समझने का एक मात्र सम्भव तरीका यही है कि पूर्वी पाकिस्तान की स्थिति की जानकारी प्राप्त की जाय। मैं भारत के 36 करोड़ स्वतंत्र नागरिकों के प्रतिनिधियों की इस सभा से यह कहना चाहूंगा कि वे हमेशा के लिए अपने मन में इस बात को ग्रहण कर लें कि क्या वर्तमान परिस्थितियों में पूर्वी पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों का रहना सम्भव है —यही मूल मुद्दा है—और यदि वे कहते हैं कि यह सम्भव नहीं है तो तब उनको यह निश्चय करना होगा कि उनकी सुरक्षा के लिए स्वतंत्र भारत सरकार के लिए कोई प्रभावी कदम उठाना सम्भव होगा।

मुझे इस देश के विभाजन के इतिहास के ब्यौरे पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। इस सभा के सभी सदस्य उससे भलीभांति परिचित हैं परन्तु एक मूल मुद्दा है जिस पर अब ध्यान दिया जाना चाहिए। भारत के विभाजन का आधार क्या था? आधार यह था कि अल्पसंख्यक लोग अपने सम्बद्ध क्षेत्रों में रहते रहेंगे, मैं भी उन लोगों में से एक था जो किसी भी परिस्थिति में भारत के विभाजन के विरुद्ध थे। मैंने बंगाल के विभाजन और पंजाब के विभाजन का तभी समर्थन किया जब यह निर्णय कर लिया गया था कि भारत का विभाजन अपरिहार्य है क्योंकि तब मि॰ जिन्ना का दावा था कि सारा बंगाल और सारा पंजाब पाकिस्तान में मिलाया जाना चाहिए। हमने जो किया वह भारत के विभाजन से सहमत होना नहीं था बल्कि हमने एक ऐसे आन्दोलन का समर्थन किया जिससे स्वयं पाकिस्तान का विभाजन हो गया। उस समय मुझे याद है मैंने कांग्रेस के कई नेताओं को विशेष रूप से गांधी जी को देखा और हम में से कुछ लोगों ने वास्तविक दृष्टिकोण को समझने का अनुरोध किया था। कि क्या उन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए जिनके अन्तर्गत एक नया राष्ट्र जन्म ले रहा था। पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों का रहना सम्भव होगा। और हमने विभाजन की योजना के एक अंग के रूप में सरकारी स्तर पर जनसंख्या और सम्पत्ति की सुनियोजित अदला-बदली का सुझाव दिया था। उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। कांग्रेस के नेता इसे इसलिए स्वीकार नहीं करना चाहते थे क्योंकि उनका दृष्टिकोण यह था कि वह भारत के साम्प्रदायिक विभाजन से नहीं बल्कि भारत के क्षेत्रीय विभाजन से सहमत हैं। उन्होंने पूरे जोर से इस बात पर बल दिया कि अल्पसंख्यकों को नये भारत में अथवा पाकिस्तान कहे जाने वाले नये राष्ट्र में अपना घर-बार और सम्पत्ति को छोड़कर जाने के लिए विवश करने का कोई प्रश्न ही नहीं है, जब मुझे पूर्वी बंगाल में इन लोगों के बीच रहना पड़ा तो मैं इनके लिए कांग्रेस के इन नेताओं का सन्देश ले गया और उनमें से एक आज भारत का प्रधान मंत्री है, उनको आश्वासन दिया गया था कि उनका मामला नहीं भूला जायेगा और यदि कोई वास्तविक

आपात स्थिति आई तो स्वतंत्र भारत चुपचाप नहीं बैठा रहेगा और उनकी सुरक्षा की जायेगी। उस समय यह उम्मीद की जा रही थी कि शायद पाकिस्तान के अल्पसंख्यकों की भारत द्वारा इस प्रकार की सुरक्षा की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यहां पर भारत एक मूलभूत प्रश्न को नहीं भूल सकता है। कोई भी हिन्दू, कोई भी सिख कोई भी गैर मसलमान भारत का विभाजन नहीं चाहता था।

भारत के विभाजन की मांग मुसलमानों के एक बहुत बड़े भाग ने की जिसने मुस्लिम लीन के निदेशों का अनुपालन किया और इसलिए अल्पसंख्यकों, जिन्होंने अविभक्त भारत की स्वतंत्रता के लिए बहुत परिश्रम किया जिन्होंने अपना खून बहाया जिन्होंने अपनी हर वस्तु का बलिदान किया जो उन्हें बहुत प्रिय थीं, जब उन्हें एक ऐसे देश में रहने के लिए कहा गया जो भारत के लिए विदेश थी, स्पष्ट ही उन्हें कुछ ऐसी वस्तु का परित्याग करने के लिए कहा गया था जो उन्हें अत्याधिक प्रिय थी। उस बलिदान का मूल्याकन नेताओं ने किया, पंडित जवाहर लाल नेहरू ने किया। मैं उस वक्तव्य में से केवल एक वाक्य पढ़ूगा, जो पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 15 अगस्त को पाकिस्तान में रहने वाले हिंदुओं, जो कि पाकिस्तान में अल्पसंख्यक है, के संदर्भ में कहा था :

"उन्होंने कहा कि हम अपने उन बहनों और भाईयों के बारे में भी सोचते हैं जो राजनीतिक सीमाओं के कारण हमसे कट गए हैं और जो दुर्भाग्य से इस समय हमें प्राप्त स्वतत्रता का भोग नहीं कर सकते। वे हमारे हैं और हमारे रहेंगे चाहे भविष्य में कुछ भी हो और हम अच्छे बुरे दोनों समयों में समान रूप से भागीदार रहेगे।"

और अब पंडित जवाहरलाल नेहरू को, जो कि भारत के प्रधानमंत्री हैं कहता हूं कि वे इस प्रण को पूरा करें जो उन्होंने तने अच्छे शब्दों में उन लोगों के साथ किया था जिन्होंने अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए उनके साथ ऐसा ही कष्ट उठाया था जितना कि उन्होंने स्वयं उठाया था। ऐसा ही एक संदेश सरदार वल्लभ भाई पटेल ने भी दिया था। निश्चित रूप से वे और एक कदम आगे आये और उन्होंने कहा कि वे अब भी उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं जब देश का यह नकली विभाजन समाप्त हो जाएगा और दोनों देश फिर से एक हो जायेंगे।

गांधी जी ने एक संदेश दिया था। तब दुबारा एक नाटक हुआ। एक के बाद दूसरा झटका लगा और लोग घरों से बाहर आने लगे तथा जब दबाब और अत्याचार की रिपोर्ट छपनी शुरू हुई तो उस समय मैं सरकार में था। हमने मामले पर विचार किया हमने स्थिति की गंभीरता को समझा। मैं भारत सरकार के एक प्रतिनिधि के रूप में कलकत्ता गया और पूर्वी बंगाल की स्थिति पर विचार करने के लिए प्रथम भारत-पाकिस्तान सम्मेलन में भाग लिया पाकिस्तान के प्रतिनिधिमंडल के नेता श्री गुलाम मुहम्मद थे जो अब

पाकिस्तान के गवर्नर जनरल है। ख्वाजा निजामुद्दीन भी वहां पर थे हमने कई दिन एक साथ बिताये जब मैं आप से कड़ी कार्यवाही की बात करता हूं तो मैं ऐसा ताव में आ कर नहीं कहता न ही मैं बचकानी आवेश में कहता हूं। न मैं ऐसा किसी सनक में कहता हूं बल्कि मैं अपनी उन असफलताओं को ध्यान में रखते हुए कहता हूं जो कड़वी तथा दुःखद थी, जो हमने पिछले पांच वर्षों में देखी और हम सरकार से अन्य तरीके अपनाने के लिये कहते है।

अभिव्यक्ति के वे शब्द जो कि पंडित जवाहर लाल नेहरू ने फरवरी 1950 में सोच समझ कर इस्तेमाल किए थे-जब शान्तिपूर्ण तरीके सफल न हो पाये तब सरकार अन्य तरीके अपनायेगी और अब मैं प्रधान मंत्री जी से यह बताने के लिए कहूंगा कि वे हमें बतायें कि क्या अन्य तरीके अपनाने का समय आ गया है या नहीं।

मेरे पास यहां पर रिपोर्ट है। हमने समझौतों, प्रतिज्ञाओं, वचनों प्रत्येक पर हस्ताक्षर किए हैं। यह कुछ महीनों तक चलता रहा और जैसा कि आमतौर पर होता है पाकिस्तान ने उनका उल्लंघन किया बाद में हम दिल्ली में फिर से मिले और गुलाम मुहम्मद फिर से पाकिस्तानी प्रतिनिधि मंडल के नेता के रूप में आये। भारत पाकिस्तान के पहले सम्मेलन के निर्णयों को निष्ठापूर्वक रिकार्ड किया गया और उसके बाद एक और समझौता किया गया। मैं भी इस का एक सदस्य था और क्योंकि उस अवस्था तक भी मैं समझता था कि इस समस्या का शान्तिपूर्वक तथा सम्मानीय समाधान ढूंढने के लिए कोई भी और कसर नहीं रह जानी चाहिए। निःसंदेह सामान्यतः सरकार को अपनी जनता की जिम्मेदारी लेनी होगी और पाकिस्तान सरकार को ही अपने अल्पसंख्यकों का संरक्षण करना होगा। उस आधार पर हम कार्यवाही करते रहे। उस समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए गए थे। कुछ महीनों के लिए सब कुछ चलता रहा और फिर जनवरी फरवरी 1950 का त्रासद झटका लगा। उसके विस्तार में जाने की मैं आवश्यकता नहीं समझता किंतु उस समय भी श्री लियाकत अली आये वे क्यों आये वे इसलिए आये कि उन्होंने देखा कि भारत के विचार को मूल से ही झकझोर दिया गया था। वे इसलिए आये कि उन्होंने देखा कि भारत में एक अलग किस्म की तैयारियां चल रही थीं। उन पर इंग्लैंड तथा अमरीका का दबाब था। लाखों मुसलमान भारत से पाकिस्तान चले गए। उन्होंने देखाकि यह बात एक तरफा नहीं रही और जो खेल वे खेल रहे थे अन्य भी खेल सकते थे। वे आये, वे एक दिखावे की दोस्ती के इरादे में थे। और फिर 8 अप्रैल, 1950 को करार किया गया। वह $2^{1/2}$ वर्षों तक चला।

इसलिए सरकार से मेरा आधारभूत प्रश्न यह है कि क्या आपको विश्वास है कि अल्पसंख्यकों के संरक्षण की कोई जिम्मेदारी है। उस अवसर पर पंडित जीं ने कहा था

कि ''उनकी चिन्ता हमें करनी है, अल्पसंख्यकों का मामला एक ऐसा मामला है जिसे हमें अपने हाथ में लेना होगा। यदि संभव हुआ तो उन्हें उनके घ्रों में फिर से बसाया जाएगा या आवश्यक हुआ तो कहीं और बसाया जायेगा। अब यदि पाकिस्तान सरकार बार बार असफल हो रही है तो भारत सरकार का क्या उत्तर है। पासपोर्ट प्रणाली चला दी गयी है। यह कहा गया है कि पासपोर्ट प्रणाली के कारण लोग दूर जा रहे हैं। हमारे अल्पसंख्यक मंत्री, श्री विश्वास ने एक दिन कलकत्ता में प्रेस सम्मेलन आयोजित किया जिसमें उन्होंने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि पासपोर्ट केवल एक संकेत है जिसमें उसी भाषा का प्रयोग किया जाता है जिसका हम करते हैं, यह लोगों के बाहर जाने का मुख्य कारण नहीं है। उसके पीछे कोई गंभीर बात है लेकिन यदि अन्य सब कुछ ठीक हो तो केवल पासपोर्ट प्रणाली अपनाने से लोगों के मन में ऐसा भय क्यों उत्पन्न हुआ है कि उन्हें अपना देश छोड़कर जाने के लिए मजबूर किया जा रहा है।

मैं सरकार के विशेष रूप से प्रधान मंत्री के वर्तमान आत्मतुष्टि के खतरनाक रवैये के बारे में कुछ कहना चाहता हूं। मुझें उनका यह वक्तव्य सुनकर आश्चर्य हुआ जिसमें उन्होंने बार-बार यह बात दुहराई है, और जनता को बताया है कि व्यवहार्यतः समस्या का समाधान कर लिया गया है, लोग अधिक संख्या में नहीं आ रहे हैं, पासपोर्ट की कोई कठिनाइयां नहीं हैं—वह बिल्कुल नगण्य हैं और पुनर्वास के मामले को छोड़कर, जो निस्संदेह एक महत्वपूर्ण माम्ला है, इस समय कोई समस्या नहीं है। महोदय, मैं उनसे इस बात पर सहमत हूं। यह सही स्थिति नहीं है। निस्संदेह लोगों की संख्या कम हो गई है। एक दिन एक माननीय सदस्य ने कहा था कि यह अनुपयुक्त रवैया है। एक तरफ आप कह रहे हैं कि इन लोगों को बाहर निकाला जा रहा है और दूसरी ओर उन्हें आने से रोका जा रहा है। अतः यदि पाकिस्तान उन्हें देश से बाहर निकाल रहा है तो लोग अधिक संख्या में क्यों नहीं आ रहे हैं?

प्रश्न यह है कि पाकिस्तान की नीति यह है कि या तो अल्पसंख्यक चले जाएं अथवा जो रहे वह धर्म परिवर्तन करके अथवा दास बन कर रहें। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है। इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी लोग चले जाएं। यदि लोगों को पूर्व-पाकिस्तान में रहने का तरीका पसंद है तो शायद वे वहीं रहें। पाकिस्तान भी नहीं चाहता है कि बड़ी संख्या में लोग बाहर जाएं क्योंकि वह जानता है कि इससे भारत में तत्काल तीव्र प्रतिक्रिया होगी।

जहां तक पासपोर्ट का संबंध है उसकी स्थिति क्या है? प्रधान मंत्री महोदय ने कुछ आंकड़े दिए हैं। मेरे पास आंकड़े भी हैं। 15 अक्तूबर तक सात, आठ, दस हजार लोग प्रतिदिन आ रहे थे। अचानक ही 18 अक्तूबर के एक बार यह संख्या घटकर शून्य हो

गई। कोई व्यक्ति नहीं आया। 18 अक्तूबर से 2 नवम्बर तक बोगइगांव स्टेशन पर जहां प्रतिदिन पूर्वी बंगाल से पांच, छः और आठ हजार लोग आ रहे थे कोई भी व्यक्ति नहीं आया। इस बात पर गम्भीरता से ध्यान देने की आवश्यकता है कि एक रात में ही परिस्थितियों में इतना चमत्कारिक परिवर्तन हो गया कि इतने दिनों से एक साथ आ रहे लोगों ने आना बंद कर दिया। इसी प्रकार बानपुर में संख्या घटकर आठ, छः और किसी दिन दस, ग्यारह और किसी-किसी दिन शून्य हो गई।

अब समाचार पत्रों में प्रतिदिन यह खबरें छप रही हैं कि लोग किन कारणों से नहीं आ पा रहे हैं। महोदय, यह पासपोर्ट प्रणाली क्या है? व्यक्तियों को जाकर अपना आवेदन पत्र देना होता है, तब उन्हें एक फार्म दिया जाता है जिसे भर कर और कुछ भुगतान करके कुछ प्रश्नों के उत्तर देने होते हैं। मामला पुलिस को दे दिया जाता है। फोटो देनी होती है और कल की समाचार पत्र में यह रिपोर्ट छपी थी कि अब प्रत्येक फोटोग्राफ के दाम तेजी से बढ़ गए हैं। आप तब तक फोटो प्राप्त नहीं कर सकते हैं जब कि 10 अथवा 15 रु० न दे दें। इसका प्रभाव किस पर पड़ता है? केवल शहरी व्यक्तियों पर नहीं बल्कि इसका प्रभाव गांवों में रहने वाले हजारों अशिक्षितों और भोले वाले लोगों पर पढ़ता है। जो लोग आए हैं उन्होंने हमें लिखा है, हमसे बातचीत की है और बताया है कि स्थिति अत्यंत नाजुक है और खतरे से खाली नहीं है। हजारों लोग जो अपना घर-बार छोड़कर भारत में रहने के लिए आए हैं उन्हें अचानक ही 15 अक्तूबर को रोक दिया गया। जब उस समय में पंडित जी से कलकत्ता में मिला तो मैंने उनसे यह विशेष अनुरोध किया कि वह कुछ कदम उठाएं ताकि ये लोग जिनकी संख्या दो-तीन लाख है फंस न जाएँ। वे अपने घर छोड़कर आए हैं, और कुछ रास्ते में हैं, उनमें से कुछ अशिक्षित, भोले भाले गरीब किसान, और खेतिहर मजदूर हैं। बड़ी सख्या में आने वाले लोग धनी लोग नहीं हैं वे पहले ही चल चुके हैं। उनके बारे में दयनीय समाचार प्राप्त हो रहे हैं। कुछ वापिस चले गए हैं, कुछ लापता हैं—मैं नहीं जानता कि वे अब कहां हैं। जब वे दुबारा इस प्रक्रिया को शुरू करेंगे और पासपोर्ट विनियमों से गुजरते हुए भारत आएंगें तो यह एक आसान कार्य नहीं होगा। अतः ऐसा नहीं है कि सब कुछ ठीक है और लोग जब चाहे आ सकते हैं और यदि न चाहे तो नहीं आये। परसों ही हमें यह समाचार मिला है कि ढाका पासपोर्ट के पास हजारों लोग प्रतिक्षा कर रहे हैं। इनमें से अधिकतर दूरवर्ती भागों से आए हैं और उन्हें मालूम नहीं है कि रात में कहां पर सोयेंगे। स्टीमर सेवा रद्द कर दी गई है। क्या भारत सरकार को पता है कि नारायणगंज और गोआलैन्डों के बीच स्टीमर सेवा बन्द कर दी गई है? यह पूर्वी बंगाल के बहुत महत्वपूर्ण भागों में से एक है। कुछ अन्य स्टीमर मार्गों की भी बन्द कर दिया गया है ताकि यदि लोग बाहर आना भी चाहें तो उनके लिए आना सरल न हो।

लोगों को अपनी सम्पत्तियों को किसी भी कीमत पर बेचने की चिन्ता लगी है। जिलाधिकारी ने प्रतिबन्ध लगा दिया है जिसकी खबरें अखबारों में छपी हैं: "कि हिन्दुओं की सम्पत्तियां मत खरीदो।" इसलिए वे अपनी सम्पत्तियों को बिना पंजीकृत दस्तावेजों के बेच रहे हैं तथा वहां से गरीब होकर चले आ रहे हैं।

यह खबर पांच दिन पहले कलकत्ता में एक अखबार में छपी थी जिसमें पूर्वी बंगाल से भारत आए मुसलमानों के वक्तव्य छपे हैं। मेरे विचार से प्रधान मंत्री को उनकी बातें तत्परता से स्वीकार कर लेनी चाहिए ताकि यहां पर कोई साम्प्रदायिकता नहीं है। उन्होंने यही बातें कही हैं। जनाब रहीम जो कि छठे वर्ष का विद्यार्थी है आवश्यक पासपोर्ट लेकर इस पार आया है। उस ने कहा है कि ये दस्तावेज बाईस दिन की कड़ी मेहनत के बाद मिले हैं। जनाब अख्तर खान भी हैं जो भारत में पासपोर्ट सहित आए हैं, ने बताया कि काफी संख्या में लोग ढाका में इन्तजार कर रहे हैं और यहां प० बंगाल में चले आने के लिए बड़ी मुश्किल से अपनी यात्रा के अनुज्ञा-पत्र मिले। एक पाकिस्तानी ईसाई ने बताया कि काफी दौड़-धूप और ढाका में कुछ उच्चाधिकारियों से कहलवाकर उन्हें उनका पासपोर्ट मिल सका। इसी के साथ एक हिन्दू ने भी इस बात की पुष्टि की है कि उससे और अन्य लोगों से जो पैसा उनके पास था, ले लिया गया और ये वास्तव में गरीब होकर ही यहां आए हैं। पासपोर्ट व्यवस्था शुरू कर देने के बाद से यही कुछ हो रहा है।

मैं विस्तार में नहीं जाना चाहता, लेकिन मैं यह बताना चाहूंगा कि पूर्वी बंगाल में एक पासपोर्ट साइज के फोटो की कीमत 10 रु० पड़ रही है। और अचानक वकीलों की एक जमात सामने आ गई है जो विशेषज्ञ होने और आसानी से पासपोर्ट दिलवा देने का दावा कर रही है तथा ये लोग इसके लिए 40 रु० शुल्क ले रहे हैं।

इसके अतिरिक्त तेजपुर (असम) से भी एक रिपोर्ट मिली है। वहां पर दरांग के उपायुक्त को स्थिति से अवगत कराया गया है। यह "अलग तरह का मामला है।" लगभग 250 हिन्दुओं, जो इधर आ रहे थे, को रोका गया और केवल मुसलमानों को आने दिया गया। उपायुक्त ने पूर्वी बंगाल सरकार को कड़ा विरोध-पत्र भेजा है।

इसी तरह से, मुझे आज सुबह एक पत्र मिला है। यह बहुत दिलचस्प बात है और मुझे पता नहीं है कि प्रधान मंत्री जी इस स्थिति के बारे में जानते हैं या नहीं। यह बात तीन दिन बहले कलकत्ता में हुई थी। एक हिन्दू कुछ निजी कारणों से पूर्वी बंगाल जाना चाहता है। वह कलकत्ता में उप उच्चायुक्त के कार्यालय में गया, उसने मुझे लिखा है कि रोज ही बार-बार प्रयास करने के बाद भी वह पासपोर्ट प्राप्त नहीं कर सका तथा अन्तिम तिथि को उससे कहा गया कि अब उसे अपनी पाकिस्तानी नागरिकता उन दस्तावेजों अथवा अन्य चीजों से जिन्हें वह पाकिस्तान से ले सकता है, सिद्ध करनी होगी जिससे वह

पूर्वी पाकिस्तानी वापिस जा सके। यह प्रमाणपत्र यूनियन बोर्ड के प्रेसीडेन्ट अथवा पाकिस्तानी के किसी राजपत्रित अधिकारी से प्राप्त करना पड़ेगा और यदि वह इसे प्राप्त नहीं कर सकता तो उसे पासपोर्ट मिलने की कोई सम्भावना नहीं है। वह कहता है कि यह नियम तीन दिन पहले बदला गया है।

एक और पत्र जो मुझे आज मिला है, वह किसी दिनेश चन्द्र सूर के प्रधान मंत्री को भेजे गए पत्र की प्रति है। मैं उसे नहीं जानता। लेकिन उसने एक बड़ी करुणाजनक दास्तान बतायी है कि उसकी मां को पूर्वी पाकिस्तान में किस तरह से रोक लिया गया है। उसका पिता वहां से इधर आ गया है। उन्होंने अपनी सम्पत्ति बेच दी है यह एक तरह से पूर्वी पाकिस्तान में रह रहे मुसलमान और प० बंगाल में रह रहे हिन्दुओं के बीच सम्पत्ति की अदली बदली है। मकान मिल जाने के बाद, नकदी की मांग सामने आई जो उनके पास नहीं है। उसकी पत्नी को रोक लिया गया है और उन्होंने प्रधान मंत्री को एक कारुणिक अपील भेजी है कि उनका पैसा वापिस दिलवाने के लिए शीघ्र ही कुछ कदम उठाए जायें। यह पत्र आज ही आया है; मूल पत्र प्रधान मंत्री के पास है।

लगभग 8000 हिन्दुओं के बेघर हो जाने के सम्बन्ध में एक खबर आई है। मैंने कलकत्ता में इसके बारे में प्रधान मंत्री से जिक्र किया था। जैसाकि आपको पता होगा पूर्वी पाकिस्तान के भीतर जलपाइगुड़ी के पास कुछ एक घिरे हुए भारतीय क्षेत्र हैं। वहां लगभग 8000 हिन्दू रह रहे हैं जिनका वहां से बाहर निकल पाना असम्भव है क्योंकि उन्हें पाकिस्तानी क्षेत्र को पार करना होगा लेकिन उन्हें पासपोर्ट के बिना ऐसा नहीं करने दिया जायेगा और किसी बाहरी व्यक्ति को उन क्षेत्रों में जाने की अनुमति नहीं दी जा रही है। सरकार ने इसका विरोध किया है। वहां के लोगों ने अपनी निराशाजनक स्थिति के बारे में बार-बार तार भेजे हैं। मैं ऐसे सैकड़ों उदाहरण दे सकता हूं पर ऐसा करना आवश्यक नहीं है। मैं केवल प्रधान मंत्री के इस तर्क की सारहीनता पर प्रहार करना चाहता हूं कि सब कुछ ठीक है।

मैं प्रधान मंत्री के तर्क के खोखले पन को मिटा देना चाहता हूं कि सब कुछ ठीक है, वहां पर पासपोर्ट प्रणाली है यदि लोग चाहे तो आ सकते है और यदि न आना चाहे तो न आऐं परन्तु ऐसा नहीं है। वहां पर पाकिस्तान सरकार ने ऐसे उपाय किए हैं कि इन लोगों को यहां पर आना मुश्किल हो गया है। इन लोगों के नैतिक विवाद को न भूलें। अब उनकी मानसिक स्थिति कैसी है? उनमें से बहुत से लोग गरीब तथा अनपढ़ है। वे इधर से उधर भटक रहे हैं तथा आज उन्हें कठिन परिस्थितियों में पासपोर्ट प्राप्त करने की जटिल समस्या का सामना करना पड़ रहा है।

हम हरिजनों की बात करते हैं। हमारे संविधान में उनकी देखभाल के लिए विशेष

प्रावधान है। क्या यह सभा जानती है कि पश्चिम बंगाल के 95 लाख हिन्दुओं में से 50 लाख लोग हरिजन है मैं उनके कुछ प्रतिनिधियों से मिला था। उनमें से कुछ लोगों ने अपनी दयनीय स्थिति मुझे बताई। वहां पर कुछ नामसूद्र है जो मुकाबला कर सकते हैं और लड़ सकते हैं किन्तु वहां जो अत्याचार हुए हैं, उसके कारण उनका वहां जिन्दा रहना असंभव सा हो गया है। वे नियमों तथा विनियमों की परवाह नहीं करते वे जानते है कि अपने जन्मसिद्ध अधिकारों को कैसे पाया जाता है। किन्तु आज वे पूर्णतः सताए हुए तथा कमजोर लोग हैं।

उनके साथ क्या होगा। वे कहते हैं कि हम भारत में पुर्नवास के लिए आये थे वह हमें मिल गया है। हमारे बच्चे मर गए हैं। हम वापिस जा रहे हैं। हमने क्या अपराध किया है? हमने पाकिस्तान नहीं चाहा था। आपने हमें वहां पर रहने के लिए कहा और हम हिन्दू हैं केवल इसलिए हमें इस संकट का सामना करना पड़ा। हम इस्लाम की शरण में चले जायेंगे। हम आत्मसमपर्ण कर देंगे। क्या इससे भारत का नाम रोशन होग्रा। क्या यह ऐसी कोई बात होगी जिस पर भारतीय लोग गर्व कर सकेंगे।

गांधी जी ने हरिजनों के लिए अपना जीवन दे दिया। हर व्यक्ति गांधी जी के नाम पर गांधी जी की विचारधारा तथा गांधीजी के दर्शन की बात करता है। मैं जानता हूं कि किन परिस्थितियों में गांधीजी नोआखाली गए थे। चूंकि वहां पर रहने वाले अधिकांश लोग दलित वर्ग के थे। आपने इस 50 लाख लोगों को एक ऐसे राज को सौंप दिया है जो अपने मूल कर्तव्य को नहीं जानता है तथा वे लोग शनैःशनैः मृत्यु की ओर बढ़ रहे हैं।

मैंने इस समस्या पर दो प्रकार से विचार किया : एक पुनर्वास तथा दूसरा उन लोगों का भविष्य जो अभी भी पूर्वी बंगाल में है। पुनर्वास को जारी रखना स्वाभाविक है। मैं इसके महत्व से इन्कार नहीं करता। मैं प्रारंभ से ही यह कहने के लिए तैयार हूं कि जहां तक पुनर्वास का संबंध है इसे दलगत राजनीति का मामला नहीं बनाना चाहिए। यह राष्ट्रीय मामला है तथा यह हम सबका मर्यादित कर्तव्य है कि अपने राजनैतिक मतभेदों को छोड़कर हम खुले दिल से पुनर्वास योजनाओं को सफल बनाने में अपना सहयोग दें। बशर्ते कि इस प्रकार का सहयोग मांगा जाएं तथा पुनर्वास व पुनर्वास का प्रशासन वास्तव में इन अभागे लोगों की अपेक्षाओं तथा राष्ट्रीय मांगों के साथ वास्तव में सामंजस्य रखा गया हो।

लोग पश्चिम पाकिस्तान से आये हैं उनमें से 65 लाख पर आपने 130 करोड़ रु० खर्च कर दिए। क्या आप उन्हें अभी तक पूरी तरह बसाने में सफल हो सके है? उनकी क्षतिपूर्ति का क्या होगा। मुझे बताया गया है कि उनके सत्यापित दावे 500 करोड़ रु० के बनते हैं इसके बाद उनके कृषि भूमि का प्रश्न आता है अभी इतना कुछ भी नहीं किया

गया है। मैं किसी पर दोष नहीं लगाता। यह एक बहुत बड़ा काम है—65 लाख लोगों की देखभाल की जानी है, जबकि उनमें से बहुत से लोगों को जनसंख्या तथा सम्पत्ति के हस्तांतरण की रक्तरंजित प्रक्रिया के द्वारा बसाया गया है तथा काम में लगाया जा चुका है। हिन्दू आए तथा मुसलमान चले गए। मैं सरकार में था। ऐसी इच्छा व्यक्त नहीं की गई थी कि ऐसा किया जाये। किन्तु घटनायें सरकार पर हावी हो गई तथा उसी सरकार को जो किन्हीं भी परिस्थितियों में जनसंख्या को हस्तांतरण नहीं चाहती थी। इस भारी दबाव के आगे झुकना पड़ा। आप जानते हैं कि हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के लिए कितने बुरे दिन थे। किन्तु इस सबके बावजूद हम पश्चिम पाकिस्तान से आए इन प्रवासियों के प्रति अपने कर्तव्त को पूरा नहीं कर पाए हैं। पूर्वी पाकिस्तान से 30 लाख लोग और आए हैं। कल के समाचार पत्रों के अनुसार पश्चिम बंगाल सरकार ने और 30 करोड़ रु० की मांग की है। आपकी आयोजना योजनाएं कहां है? तब आप लोग क्या करेंगे यदि पाकिस्तान 50 अथवा 60 लाख और लोगों को बाहर निकाल देता है तथा वे यहां आ जाते हैं। आपको केवल उनके पुनर्वास पर और 300 करोड़ रु० खर्च करना पड़ेगा यदि आपको उसकी क्षतिपूर्ति करनी है तो वहां कम से कम 1000 करोड़ रु० की सम्पत्ति ऐसी है जो हिन्दुओं की है तथा जो पूर्वी पाकिस्तान में है। क्या आप उन्हें बसा पायेंगे तथा उनकी देखभाल कर पायेंगे। तथा भारत को इसी स्थिति में क्यों रखा जाये कि उसकी अपनी अर्थव्यवस्था नष्ट हो जाये।

हमने कुछ मूलभूत शर्तों के अधीन विभाजन को स्वीकार किया था। जब पाकिस्तान के द्वारा उन शर्तों का पालन नहीं किया गया तो वे शर्तें स्वतः समाप्त हो जाती हैं। इस दृष्टि से विभाजन रद्द हो जाता है तथा भारत उनके प्रति वचनबद्धता से नहीं बधा है ये केवल मेरे ही शब्द नहीं है।

प्रधान मंत्री ने उसी स्थल से स्वयं यह घोषणा की है कि बुनियादी शर्त यह है कि अल्प संख्यकों की सुरक्षा पाकिस्तान को करनी चाहिए। हमने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया है। भारत ने अपने अल्प संख्यकों की रक्षा की है। अनेक बाधाओं और कठिनाईयों के बावजूद, जैसा कि इस समस्या के बारे में हुई चर्चा से विदित है, हमने इसे साम्प्रदायिक रूप नहीं लेने दिया। यह एक राजनैतिक समस्या है। यह एक प्रादेशिक समस्या है। यह एक राष्ट्रीय समस्या है और हमें इसका राष्ट्रीय समाधान ढूंढना है। कुछ निर्दोष मुसलमानों को इसलिए मारना कि पाकिस्तान गें हिन्दुओं का कत्ले आम किया गया है, अत्यन्त अमानवीय होगा और एक दुष्चक्र होगा। हिन्दु धर्म की वास्तविक परिभाषा यह है कि यदि कोई व्यक्ति गलती करता है तो आपको उसे दंड देना चाहिए परन्तु यदि कोई व्यक्ति निर्दोष है और आप उसकी गर्दन काट देते हैं तो इससे वातावरण में कटुता ही उत्पन्न होगी। इससे लोगों की रक्षा नहीं होगी।

इसलिए हम बार-बार इसकी बात पर बल दे रहे हैः प्रधान मंत्री जी जागो और अपने दायित्व को समझो, स्थिति को बद से बदतर न होने दो, मानवीय भावनों की स्थिति पर काबू न पाने दो, एक जिम्मेदार सरकार के रूप में कार्य करो और अपने वचनों को पूरा करो।

पुनर्वास कार्य किया जाना चाहिए। परन्तु पुनर्वास ही केवल समस्या नहीं है। समस्या है इन लोगों की सुरक्षा के लिए उपाय ढूढंना ताकि वे अपने घरों में रह सकें।

पाकिस्तान में स्थिति क्या है? वहां हिन्दुओं का कोई स्थान अथवा स्तर नहीं है। पिछली मार्च में पाकिस्तान संविधान सभा के एक सदस्य द्वारा पाकिस्तान संविधान सभा में दिये गये भाषण के कुछ अंश मैं पढ़ कर सुनाता हूँ। उस सदस्य का नाम श्री भूपेन्द्र कुमार दत्त है। वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य थे। उन्होंने भारत की आजादी के लिए अपने जीवन के 23 वर्ष जेल में व्यतीत किये। वह पाकिस्तान से नहीं आये। उन्होंने वही पर रहने का निर्णय किया। उन्होंने देखा कि पिछले पांच वर्षों में पाकिस्तान में क्या हुआ है और उन्होंने पाकिस्तान संविधान सभा में पाकिस्तान सरकार पर आरोप लगाने का साहस किया। उन्होंने भारत आने के पश्चात् एक वक्तव्य के माध्यम से ऐसा नहीं किया। मैं उनके साहस की प्रशंसा करता हूँ। काश! ऐसे साहसी व्यक्ति कुछ और होते जो इस भद्र पुरुष की भाँति सच्चाई का सामना कर सकते? उन्होंने क्या कहा? मैं कछेक शब्द ही पढूंगा क्योंकि इससे सभा को और देश को वास्तविकता का पता लग जायेगा कि पूर्वी पाकिस्तान में घटना क्रम किस प्रकार चल रहा है जिसके कारण अधिकारियों के समक्ष प्रूर्ण समर्पण के बिना वहां रहना नितान्त असम्भव है। उन्होंने कहा हैः

> सफाया हो चुका है। पूर्वी बंगाल में रह गये लगभग एक करोड़ लोगों के प्रतिनिधि के रूप में हम हताश और निराशा का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। मैं निराश लोगों का एक प्रतिनिधि हूँ।"

इसके बाद उन्होंने फरवरी 1950 के पश्चात् की घटनाओं का उल्लेख किया है। मैं प्राचीन इतिहास का उल्लेख नहीं करुँगा। मैं यह उल्लेख करुँगा कि पाकिस्तान अधिकारियों ने किस प्रकार जान बूझ कर दिल्ली संधि को टुकड़े-टुकड़े कर दिया था। मेरा आरोप पाकिस्तान की जनता पर नहीं है। अपने सभी भाषणों और अभिव्यक्तियों में मैंने पाकिस्तान सरकार और पाकिस्तान की जनता के बीच भेद किया है। मैं यह नहीं कह सकता कि पाकिस्तान के सभी लोग बुरे हैं और इसी प्रकार मे यह भी नहीं कह सकता कि सभी भारतीय अच्छे हैं। अच्छे लोग भी है बुरे लोग भी हैं। लेकिन वहाँ सरकार निर्दयता से कार्य कर रही है। वहां की सरकार इस तरह निरकुंश शासन चला रही है

जिससे कि जनता, विशेष तौर पर हिन्दुओं, के लिए अपने मौलिक अधिकारों का इस्तेमाल असम्भव हो गया है। 1950 के बाद हुई घटनाओं के संबंध में उन्होंने ऐसा ही कहा है। 1950 की संधि के बाद सरकार के गुप्त परिपत्र जारी किये।

"सभी थाना प्रभारियों को एक परिपत्र भेजा गया जिसमें उनसे अल्प संख्यकों (हिन्दु) के व्यक्तियों के प्रभाव आदि तथा उनके विरुद्ध कार्य करने वाली संभावित पार्टियों का ब्यौरा भेजने के लिए कहा गया था।" जानकारी हासिल करने के लिए एक पूर्ण परिपत्र भेजा गया था। "एक और परिपत्र भेजा गया था जिसमें अनेक वाणिज्यक फर्मों के प्रमुखों से कहा गया था कि किसी भी गैर-मुस्लिम को (पूर्वी बंगाल) में नौकरी देने से पूर्व जिला मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति प्राप्त करें। कुछेक फर्में किसी गैर-मुस्लिम को नौकरी देने से पहले जिला मजिस्ट्रेट की अनुमति प्राप्त करने की तकलीफ उठाती भी हैं।"

जब सभा में पहले इस परिपत्र का उल्लेख किया गया था तो इसको चुनौती दी गयी थी। तत्पश्चात् इस परिपत्र की एक प्रति इसी वाणिज्यक संगठन के यूरोपीय सचिव द्वारा अध्यक्ष को भेजी गयी थी और प्रति उसके पास थी।

यह उसकी टिप्पणी का दूसरा भाग था। अब इसके बाद अन्तिम और सबसे अधिक चकित करने वाला भाग आता है जिसका कि दिल्ली-समझौते पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा हैः

"इस संबंध में नवीनतम चौदह पृष्ठों का परिपत्र कुछ महीने पहले सभी जिला न्यायाधीशों को भेजा गया। इसमें उन्हें यह हिदायत दी गई है कि उन्हें किसी भी तरह वापिस आने वाले पलायनकर्ताओं को उनकी भूमि और सम्पत्ति लौटानी नहीं है, परन्तु उसे मुस्लिम शरणार्थियों में बांट देना है। वापिस आने वाले पलायनकर्ताओं को कोई न कोई बहाना बना कर टाल देना है। एक के बाद एक कानूनों, आदेशों और कानूनी अड़चनों की एक लम्बी सूची बनने लगी। अधिक महत्वपूर्ण पंक्तियां इस प्रकार हैं। दूसरे सभी मामलों को निपटाने में जिला न्यायाधीशों को इन हिदायतों को अपने दिमाग में रखना होगाः 'अल्पसंख्यकों और उनके प्रतिनिधियों से मुस्कराहट के साथ मीठी जुबान में बात करनी है। आप लोगों ने माननीय श्री सी० सी० बिश्वास जैसे लोगों से प्रशंसा प्राप्त की है जिन्होंने यह कहा है कि कुछ अधीनस्थ अधिकारी ही इन गड़बड़ियों के लिए जिम्मेवार हैं (मेरे माननीय मित्र श्री सी० सी० बिश्वास की गिद्ध जैसी आंखों में धूल झोंक कर भी) अपनी इज्ज़त किसी प्रकार बनाये रखनी है। इस हिदायत को गोपनीय रखिए। दूसरे अधिकारियों का विश्वास मत कीजिए। वे कभी-कभी स्थिति को निपटने में असफल तथा अक्षम सिद्ध होते हैं।

दिल्ली समझौते के विभिन्न प्रावधानों के कार्यान्वयन के संबंध में पाकिस्तान सरकार की ईमानदारी का कोई और प्रमाण आप चाहते हैं? यह वक्तव्य भारत के साम्प्रदायिक

तथा प्रतिक्रियावादी तत्वों द्वारा तैयार नहीं किया गया है। यह वक्तव्य पाकिस्तान संविधान सभा में ख्वाजा निजामुद्दीन तथा अन्य लोगों की उपस्थिति में पढ़ा गया था। और उसने यह अपनी जान को जोखिम में डाल कर किया था। उसमें पाकिस्तान संविधान सभा का सामना करने का साहस था। उसकी हत्या भी की जा सकती थी, परन्तु उसका उद्देश्य पाकिस्तान सरकार का पर्दाफ़ाश करना था और विशेषकर उस शैली को उजागर करना था जिससे कि वे लोग प्रशासन चला रहे थे।

मैं इसके विस्तार में नहीं जाना चाहूँगा परन्तु उसकी टिप्पणियों का वर्णन करुंगा:

"दिल्ली समझौते को कभी इसकी भावना के अनुसार कार्यान्वित नहीं किया गया, परन्तु इसका कारण पाकिस्तान में दो सम्प्रदायों के बीच द्वेष की भावना नहीं थी बल्कि अधिकारियों की चकमाबाजी, चालबाज़ी तथा कार्य साधने की युक्तियां थीं जो कि इन्हीं परिपत्रों तथा संकल्पों का परिणाम थीं।" चूंकि मैंने वक्तव्य का एक भाग, आपके द्वारा अनेक बार दिये गये निर्देशों के अनुसार पढ़ा है, यह मेरा कर्त्तव्य है कि मैं पूरे वक्तव्य को सदन के सम्मुख रख दूँ। यदि आप मुझे अनुमति दें तो मैं उसे सभा-पटल पर रख देता हूँ ताकि यदि किसी सदस्य की पूरा भाषण पढ़ने में रुचि हो तो वह पढ़ सके। (ग्रन्थालय में रखा गया। देखें संख्या पी-77/52)

मैं आपको अन्यान्य दृष्टान्त दे सकता हूँ। किन्तु मैं ऐसा करना नहीं चाहता। मैं केवल यही कहूँगा। उत्पीड़न की प्रकृति क्या रही है? उस दिन मेरे माननीय मित्र श्री जैन ने कहा "अब उत्पीड़न के अधिक मामले सुनने में नहीं आते।" वह कैसे तस्दीक कर सकते हैं। वह सच्चाई को मान भी नहीं सकते। झुठला भी नहीं सकते। उस तरह का वक्तव्य दिया था मेरे मित्र श्री जैन ने जो अपने उत्तर की हास्यास्पद प्रकृति पर मुस्कुरा रहे हैं। जहां तक उदाहरणों का संबंध है, मेरे पास ऐसे लगभग पांच सौ उदाहरण हैं। यह स्पष्ट ही है कि मैं उनका पाठ नहीं कर सकता।

मैं सदन के धैर्य की परीक्षा लेना नहीं चाहता किन्तु इन अत्याचारों का सबसे दुखदायी और अपमान जनक पक्ष हिन्दू स्त्रियों से किया गया त्रासजनक व्यवहार है। इस तरह के मसले पर सार्वजनिक रूप से बोलते हुए गला पूर्णतया रुंध जाता है। यदि आप नाम व पते पढ़ें और जिस तरीके से पिछले चन्द महीनों में मर्यादा-उल्लंघन होता रहा है उसे जान कर लड़खड़ाहट होती है। सीता के अपहरण ने रामायण को जन्म दिया था। एक नारी, द्रौपदी को निर्वसन किये जाने से महाभारत हुई थी, और आज जब बड़े पैमाने पर निर्लज्ज व कलंकपूर्ण कृत्य हो रहे हैं तो हम चुपचाप, असहाय, का पुरुष बने बैठे हैं। यदि आप सरकार का ध्यान इस ओर दिलायें, तो वे कहेंगे "हमें सबूत चाहिये।" इसे कौन सिद्ध कर सकता है? क्या यह हमेशा सम्भव है कि लोग इस तरह की घटनाओं को अदालत में

ले जाकर सिद्ध कर सकें? कहा गया है कि पाकिस्तान सरकार से जवाब मांगा गया है। पाकिस्तान सरकार का जवाब है, "कुछ नहीं हुआ है।" मैं जवाब के ब्यौरे में नहीं जाना चाहता किन्तु (उत्पीड़ितों) की तादाद बड़ी है और सूचि मुहैया की जा सकती है। निस्सन्देह वह भारत सरकर के अभिलेख विभाग में चली जाएगी जो इन अभागे लोगों को किसी भी प्रकार मदद नहीं करेगा। मैं आपको जुल्मों के चार-पाँच उदाहरण दे सकता हूँ। एक उदाहरण चिट्टेगांग पहाड़ी की जनजातियों का है। प्रधान मंत्री को इसका स्मरण है। हमने उस लघु भूमि-क्षेत्र, जो दुर्भाग्यवश भारत के हाथ से निकल गया यद्यपि वहां मुसलमान जनसंख्या मात्र 2 से 5 प्रतिशत थी, में 95 प्रतिशत जनसंख्या वाले बौद्धों और पर्वतीय जनजातियों के भाग्य के विषय में बारम्बार विचार-विमर्श किया। महोदय, क्या आपको ज्ञात है कि उन्हें निकाल बाहर किया गया है? उनमें से अनेक मारे गये हैं।

समस्त क्षेत्र खाली कर दिया गया है। पांच सौ जनजाति के लोगों को अभी हाल ही में चित्तगोंग पहाड़ी क्षेत्र से मजबूरन बाहर निकाला गया है। इस प्रकार उन्हें जानबूझकर उस क्षेत्र से बाहर निकाला गया है और वह असम में भिखारियों की तरह घूम रहे हैं। इसके पश्चात् मैं प्रधानमंत्री को उस का हवाला दूंगा जिसे वैस्ट दिनाजपुर नार्दन डिस्ट्रिक्ट कांग्रेस कमेटी के प्रेसीडेंट ने जारी किया था। मैंने मुस्लिमों और कांग्रेस नेताओं द्वारा जारी किये गये बयानों की ओर विशेष ध्यान दिया है जिससे वे अधिक विश्वसनीय लगें और प्रधानमंत्री अधिक शीघ्रता से उन पर कार्यवाही करें। यहां उस जांच के परिणाम प्रकाशित किये जा रहे हैं जिसकी जांच दिनाजपुर कांग्रेस कमेटी के प्रेसीडेंट ने की थी और इसमें कुछ मुसलमान भी शामिल थे। इसमें यह बताया गया है कि किस प्रकार पिछले कुछ सप्ताहों में जब लोग पूर्वी बंगाल से पश्चिम बंगाल आ रहे थे, उन पर अत्याचार किये गये। इसके पश्चात् मैंने प्रधानमंत्री को इस बात का उल्लेख किया कि किस प्रकार भारत सरकार के कुछ अधिकारियों का अपमान किया गया श्री बर्मन, केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क समाहर्ता, शिलांग को किस प्रकार परेशान और अपमानित किया गया था जब वह पाकिस्तान से आ रहे थे तो उन्होंने स्वयं ऐसी घटनाएं देखीं जिनमें लोगों को परेशान किया जा रहा था। मुझे यह घोषणा पढ़कर अत्यधिक सन्तोष हो रहा है कि असम सरकार ने पूर्वी बंगाल सरकार से इस बात के लिए अत्यधिक विरोध प्रकट किया है। यह केवल विरोध ही नहीं है अपितु जबर्दस्त विरोध है। शायद अब सब कुछ ठीक हो जाये। इसी प्रकार धर्म-परिवर्तन की बात आती है। बहुत अधिक मात्रा में धर्म-परिवर्तन हुए हैं तथा इस बारे में सैकड़ों धर्म-परिवर्तन के मामलों का पता चला है। यहां मैं पाकिस्तान के समाचार-पत्र 'आजाद' के विशेष मामले का उल्लेख करूँगा मेरे पास इस समाचार-पत्र की कतरनें हैं। यह मौलाना अकरम खां जो एक समय महान कांग्रेस नेता थे, उनके द्वारा निकाला जाता है। यहीं उन्होंने यह बताया है कि किस प्रकार जवान हिन्दू लड़कियाँ

इस्लाम को अपना रही हैं तथा उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि वे ऐसा विश्वास के कारण कर रही हैं। यह बताया गया है कि किस प्रकार उन्होंनें धर्म-परिवर्तन के लिये आग्रह किया था और मुस्लिम नेताओं को इसके लिये राजी होना पड़ा। उनके नाम दिये गए तथा यह भी बताया गया कि वहां बहु-संख्यक समुदाय अत्यधिक परोपकारी और दयालु है एवं किस प्रकार तुरन्त उनके विवाह के प्रबन्ध किये जाते हैं और काफी संख्या में युवक इस प्रकार लड़कियों से विवाह का प्रस्ताव करते हैं केवल इस शर्त पर कि वे इस्लाम को अपना लें। उनके नाम और पते दिये जाते हैं। यहां बाद की स्थिति भी काफी मजेदार है। वे परिवार जिन्होंने धर्म-परिवर्तन कर लिया है, उनके जो संबंधी पश्चिम बंगाल में बसने के लिये गये, वे भी अब लगभग वापस आ रहे हैं और स्वेच्छा से इस्लाम अपना रहे हैं। अब मैं दो अन्य मामलों का उल्लेख करूँगा। श्री पी॰ सी॰ राय भारत के एक बहुत बड़े वैज्ञानिक थे। वास्तव में, बंगाल के बहुत से महान पुरुष जैसे जे॰ सी॰ बोस, सी॰ आर॰ दास ये सभी पूर्वी बंगाल से थे। कुछ सप्ताह पूर्व अपने गाँव में, (श्री पी॰ सी॰ राय के) पारपत्र-व्यवस्था आरम्भ किये जाने के बाद एक भयानक घटना घटी थी। एक मशहूर डा॰ श्री बिहारी लाल से कुछ मुसलमान मिलने आये और उन्होंने उनसे कहा कि वह उन्हें रात्रिभोज पर आमंत्रित करें जिसके लिये वह राजी हो गए। उन्होंने बताया था कि वह पचास लोग होंगे, परन्तु वास्तव में अस्सी लोग उनके घर पहुँच गये। जाहिर है ये भले डा॰ इतनी अधिक संख्या में लोगों के लिये खाने का सामान उपलब्ध नहीं करा सके। इस पर इन लोगों ने कहा "आपको चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है हम खुद अपनी देखभाल कर लेंगे।" वे गौशाला में गये और वहां उन्होंने एक बछड़े को पकड़ा, उसे मारा और अपना भोजन बना लिया। डाक्टर से कहा गया कि वह भी इसमें से खायें और उन्हें ऐसा करना पड़ा। जब वे लोग खा-पीकर उनके घर से चले गये तो डॉ॰ अपने कमरे में गये और उन्होंने आत्महत्या कर ली। कुछ घन्टों बाद उनकी पत्नी वहां आई और उसने जब अपने पति का मृत शरीर देखा तो उसने भी आत्महत्या कर ली। उनका परिवार पश्चिम बंगाल आ गया और यह विवरण प्रकाशित हुआ। एक अन्य घटना रंगपुर में हुई जहां एक डा॰ को किसी मुसलमान के घर बुलाया गया जो उस डा॰ की लड़की से विवाह करना चाहता था। जब वह उनके घर गये तो उनके समक्ष यह प्रस्ताव रखा गया जिसके लिये डा॰ ने मना कर दिया। उसे वहां बन्दी बना लिया गया तथा उसके परिवार के सदस्यों को उसके घर लाया गया। जब उस लड़की ने यह देखा कि वहां एक बहुत ही खतरनाक स्थिति उत्पन्न हो चुकी है तो उसने अपने पिता की जिन्दगी बचाने के लिये स्वयं ही प्रस्ताव किया और उसके पिता को छोड़ दिया गया। अगले दिन यह तथाकथित विवाह सम्पन्न हुआ और शाम को लड़की ने आत्महत्या कर ली। इस प्रकार की घटनाओं की संख्या मालूम नहीं है। मेरे पास उनमें से

कुछ के नाम और पते हैं जिन्हें कि हमें भेजा गया। यह खबरें बाहर नहीं आ रही हैं। उस देश का प्रशासन नैतिक रूप से लड़खड़ा चुका है तथा हर रोज बहुत से लोग वहां से आ रहे हैं। मैं स्वयं यह महसूस करता हूं कि इन लोगों के लिये अवधि के लिए विरोध करना कितना कठिन है। रंगपुर के एक गांव में 28 सितम्बर को एक हिन्दू लड़की जिसे बन्द करके रखा गया था रात को उसे जबर्दस्ती बाहर लाया गया और अगले दिन खेत में उसका खून से लथपथ शव मिला। ये कुछ भयानक उदाहरण हैं। हमारे पास ऐसे बहुत से मामले हैं।

सीमावर्ती क्षेत्रों में घटनायें हो रही हैं। आज इस असुरक्षा का क्या कारण है? आज के हिन्दुस्तान टाइम्स में असम में सीमावर्ती क्षेत्रों में हुई घटनाओं का विवरण दिया गया है जिसमें बताया गया है कि पाकिस्तान द्वारा दो दिन तक गोलीबारी की गयी और मजेदार बात यह है कि उस समय शिलांग में दोनों मुख्य सचिवों के बीच इस बात पर विचार-विमर्श हो रहा था कि उस क्षेत्र में शांति कैसे स्थापित हो सकती है।

निःसंदेह पूर्व बंगाल सरकार को इसका कड़ा विरोध प्रकट किया गया। त्रिपुरा की सीमा पर प्रधानमंत्री जी इस बात से अवगत हैं और तार की एक प्रति भी उनको भेजी गयी थी— कि कुछ दिन पूर्व काफी संख्या में लोगों ने हमारी सीमा में प्रवेश करके सीमा में भारत की ओर पाकिस्तान का झंडा फहराया। इस दृष्टिकोण से भले ही यह बात तुच्छ हो लेकिन ऐसी घटनाएँ हो रही हैं और प्रधानमंत्री के इस कथन का कि "देश में सब कुछ ठीक ठाक है, केवल कहीं कुछ असुरक्षा हैं आदि", इसकी लोगों के मन पर क्या छाप पड़ी है? वह अपनी असमर्थता जाहिर कर सकते है, किन्तु भगवान के लिए गलत बातों का बयान मत कीजिए। वह तो लोगों के जख्मों पर नकम छिड़कने जैसा होगा। आप उनकी सुरक्षा करने में असमर्थ हो सकते हैं, उनकी सहायता करने में असमर्थ हो सकते हैं, किन्तु स्थिति की गम्भीरता को कम मत कीजिए। दुर्भाग्य से प्रधानमंत्री द्वारा पिछले कुछ दिनों में दिये गये भाषण पाकितान के लिये प्रचार का मुद्दा बन जायेंगे। वे लोग इन्हीं बातों को तोड़-मरोड़ कर कहेगें "प्रधानमंत्री ने स्वयं कहा है कि यहां सिवाय कुछ छुट पुट घटनाओं के कुछ नहीं हो रहा है", और लोगों का अपमान तथा दमन जारी रहेगा।

इसका उपाय क्या है? हमने कुछ उपाय सुझाये है और हमारे विरुद्ध कुछ लोकोक्तियां कही गई हैः बचकाना, विलक्षण; अनाड़ीः अन्य लोकोक्तियां में भूल गया हूं। यह बात एक के बाद एक कही गई। प्रधानमंत्री जी को इस तरह की प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करनी चाहिए। उन्होंने हमें नहीं बुलाया है मैं उनके द्वारा सभी दलों के नेताओं को बुलाने और मिल बैठकर इस प्रश्न पर विचार करने के लिए कहने की बात समझ सकता हूँ। मैं नहीं चाहता कि यह दलगत मामला बने। हम आग से खेलना नहीं चाहते। हम इस स्थिति से होने

वाले खतरों से अवगत हैं। इस मामले को सरकार अकेले नहीं सुलझा सकती। हम उन्हें सहयोग देने के लिए तैयार हैं। लेकिन हम चाहते हैं कि इसका समाधान अवश्य किया जाये। हम नहीं चाहते कि लोगों को सिसका-सिसका कर मारा जाए, अगर उन्हें मारना ही है तो उनकी हत्या एक ही बार में कर दी जाए।

लेकिन यह एक कष्टदायक स्थिति हो गई है जिसका प्रभाव केवल एक अकेले व्यक्ति पर ही नहीं पड़ता अपितु यह राष्ट्र की गरिमा का भी अपमान है। हमने कुछ सुझाव दिये हैः कुछ और सुझाव भी दिये जा सकते हैं। एक उपाय आर्थिक प्रतिबंध है। उसके एवज में भूमि की मांग किया जाना भी स्वाभाविक है। यह सुझाव सरदार पटेल ने दिया था। यदि पाकिस्तान वहां से एक तिहाई हिन्दुओं को खदेड़ देता है तो उसे अपने देश की एक तिहाई जमीन भी देनी चाहिए। हम पाकिस्तान के गलत कार्यों के लिए समूचे भारत का विनास नहीं कर सकते। पाकिस्तान की सीमा-क्षेत्र का पुनः विभाजन होना चाहिए और इन लोगों को वहां बसाया जाना चहिए। कुछ लोगों का कहना है कि हमें अपनी-अपनी जनसंख्या का अदल-बदल कर लेना चाहिए। यह इतना आसान नहीं है। तब भी उनके पुर्नवास का प्रश्न खड़ा होगा। प्रधानमंत्री जी कहेगे मैं जमीन कहां से लाऊँगा! यदि चार करोड़ मुसलमानों को पाकिस्तान भेजा जाये तो वे अधिक जमीन दिये जाने की मांग करेगें। वे कह सकते हैं कि और मुसलमान यहां आ रहे हैं। लेकिन कुछ लोग पाकिस्तान जाकर रहना नहीं चाहते जब तक कि वे एक विशेष विचारधारा के न हों। इसके उत्तर में हम यह भी कह सकते हैं कि एक तिहाई कश्मीर उनकी तरफ है। वह उनकी भूल भी हो सकती है। वह क्षेत्र आधे बंगाल जितना बड़ा है। यह तर्क का प्रश्न है। कुछ समय पहले यह सुझाव दिया गया था कि व्यक्तिगत स्तर पर नहीं सरकारों के स्तर पर जनसंख्या और सम्पत्ति की अदला बदली की जाये। स्वाभाविक रूप से उसकी भी वह यही उत्तर देंगे, यदि लोग देश से जाना ही नहीं चाहते तो मैं उन्हें कैसे खदेड़ सकता हैं; वे संविधान के तहत यहां रह रहे हैं; मैं ऐसे कैसे कर सकता हूँ? लेकिन मुख्य समस्या का समाधान नहीं हुआ है। मैं इस बात से सहमत हूं कि अन्ततः दोनों ही तरह से समस्या का समाधान नहीं हुआ। पुर्नवास की बड़ी समस्या सामने है। हमने पूर्व और पश्चिम से लाखों की तादाद में यहां आने वाले लोगों की दुःख तकलीफों को देखा है। हमें इस संत्रास का सामना फिर करना पड़ सकता है। इसीलिए हमने कहा है कि सरकार को उस क्षेत्र में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा की जिम्मेदारी लेनी चाहिए और राजनीतिक रूप से इसका समाधान करना चाहिए।

एक बार यह कहा गया था कि मैं युद्ध के लिए उत्तेजित हूं, मैं पूर्व बंगाल का कार्यभार कैसे संभाल सकता हूं? संभवतः वह सुझाव मैंने नहीं दिया था। मैं सुझावों के समर्थन में हमेशा बड़े लोगों का नाम लेता हूं। इस उपाय का सुझाव गांधीजी ने दिया

था। राजकुमारी अमृतकौर को यह बात याद होगी। वह और मैं उनकी मृत्यु से कुछ दिन पहले उन्हें मिले थे। हम इस प्रश्न पर चर्चा कर रहे थे। उनकी आंखों से अंगारे बरस रहे थे। उन्होंने कहा हम पुर्नवास की इस भयंकर समस्या के लिए भारत के विभाजन पर सहमत नहीं थे जिससे करोड़ों लोगों को परेशानी होती। ऐसा कुछ मौलिक आधारों पर हुआ था; अल्पसंख्यकों की सुरक्षा की जानी चाहिए; उनके अपने ही देश में रहने की व्यवस्था होनी चाहिए, उन्हें भिखारियों की तरह निकालने का प्रश्न नहीं उठना चाहिए। उन्होंने क्या सुझाव दिया था? उन्होंने कहा था; भारत को अपनी भूमिका निभाने दीजिए; आप अल्पसंख्यकों की रक्षा कीजिए; यहां से एक भी आदमी खदेड़ा नहीं जाना चाहिए; फिर पाकिस्तान की ओर मुड़िये और कहिए, हमने अपना दायित्व पूरा कर दिया है किन्तु आपने नहीं किया; यह विश्व की समस्या बन गई है; यह एक नैतिक समस्या बन गई है। उन्होंने जो शब्द कहे थे वे आज भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं। उन्होंने कहा था; यदि पाकिस्तान ऐसा करने में असमर्थ रहता है, यदि इसका कोई उपाय नहीं किया जाता है, तब आपको पूर्व बंगाल का कार्यभार संभाल लेना चाहिए; सरकार को इसका कार्यभार संभाल कर जनता की रक्षा करनी चाहिए।

उन्होंने आगे कहा मैं युद्ध में शामिल नहीं हो सकता; मैं इसमें विश्वास नहीं करता; परन्तु मैं आपको आशीर्वाद दूंगा कि आपमें इसके लिए नैतिक साहस है। राजकुमारी अमृतकौर इसे याद रखेंगी। उन्होंने अपने एक भाषण में भी इस सम्बन्ध में कहा था। मैं युद्ध समर्थन नहीं कर रहा हूँ परन्तु यदि पूर्वी पाकिस्तान के अल्पसंख्यकों को बचाने के लिए उस क्षेत्र पर आक्रमण करने के अतिरिक्त दूसरा कोई रास्ता नहीं है तो भारत सरकार को किसी दिन इस पर विचार करना होगा। मैं यह बात हल्के रूप से नहीं कह रहा हूँ; मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि तुरन्त युद्ध घोषित कर दिया जाना चाहिए। यह आवश्यक भी नहीं है। हैदराबाद में कोई युद्ध नहीं हुआ। वे युद्ध के लिए तैयार नहीं हैं। वे बलिदान किये बिना कुछ प्राप्त करना चाहते हैं। केवल यदि प्रधान मंत्री कहते है कि सरकार दृढ़ता से कार्य करेगी और कमजोरी और तुष्टिकरण की नीति नही अपनायेगी आप देखेंगे कि क्या होता है। उन्हें तुष्टिकरण पर गर्व है। मैं इस पर हैरान हूँ। वे कह सकते हैं कि मैं समाधान नहीं खोज सकता। मैं इस पर सहानुभूति दिखा सकता हूँ परन्तु वह तुष्टिकरण का गुणगान करते हैं और सन्तुष्ट करते जाते हैं। किसकी कीमत पर? यदि वे अपनी कीमत पर करते हैं तो मुझे कोई परवाह नहीं, यद्यपि मुझे खेद होगा। परन्तु राष्ट्र को दांव पर लगाकर तुष्ट करने का उन्हें क्या अधिकार है? यह भारत की इज्जत और आत्म-सम्मान का प्रश्न है। एक भयंकर विध्वंस को रोकने के लिए कुछ करना होगा।

उपाय सुझाना हमारा काम नहीं है और न ही सही उपायों पर खुले रूप से चर्चा की जा सकती हैं। सरकार यहाँ कार्य करती है। सभी मामलों में वे मनमानी कर रहे हैं। क्या विपक्ष सरकार को सलाह देता रहेगा और क्या सरकार उसे स्वीकार करने के लिए नैतिक

रूप से बाध्य है? हम कुछ सुझाव दे सकते हैं और उन सुझावों को अस्वीकार करने दीजिए। परन्तु उनके लिए यही कहना काफी नहीं होगा कि यह काल्पनिक है। उन्हें कुछ ऐसा समाधान खोजना चाहिए जिससे वास्तव में समस्या हल हो जाए। हम सभी उनके साथ होंगे। एक समाधान होना चाहिए। हम समस्या का समाधान शान्तिपूर्ण ढ़ंग से करना चाहते हैं। यहाँ हमारे साम्यवादी दोस्त बोलेंगे। वे हमसे सहमत नहीं हुए हैं। इस सम्बन्ध में साम्यवादियों के सिवाय सभी दल एक हैं। कांग्रेस नहीं आ सकती। परन्तु मैं जानता हूँ कि लाखों कांग्रेसी हैं जो हमारी तरह ही महसूस करते हैं। यदि कोई शान्तिपूर्वक तरीका खोजा जा सकता है तो खोजिए। युद्ध कौन चाहता है? झंझट कौन चाहता है? मैं जानता हूँ कि युद्ध की वीभत्सतताएं क्या हैं? यह बात कोई नहीं कह रहा है कि युद्ध की घोषणा कल ही कर दीजिए। कुछ ऐसा प्रभावी समाधान ढूंढिये जिसके द्वारा इन लोगों को बिना शरणार्थी अथवा भिखारी अथवा दास बनाये उन्हें मूलभूत अधिकारों का प्रयोग करने योग्य बनाया जा सके।

प्रधानमंत्री अक्सर कहते हैं कि वह मेल मिलाप की प्रक्रिया में विश्वास रखते हैं। मेल मिलाप किन तरीकों से हो? समस्या का समाधान करके मेल मिलाप हो? यदि समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया हो और आप इस पर झूठा मरहम लगायें तो क्या समस्या का समाधान हो जायेगा? आपको इसकी जड़ में जाना होगा। आपको यह पता लगाना होगा कि समस्या क्या है? अब सरकार वास्तविक समस्या से दूर भाग रही है इससे मुझे दुःख होता है। वे यह कहते हैं कि कोई समस्या नहीं है, लोग नहीं आ रहे हैं परन्तु लोग आ रहे हैं यह नहीं आ रहे हैं, समस्या है। क्या लोग जो यहाँ बैठे हैं वहाँ जाकर रह सकते हैं? मैंने 1950 में एक सुझाव दिया था। जब तक आप अपनी पत्नी और बेटियों के साथ वहाँ जाकर नहीं रहते तब तक आप लाखों लोगों की व्यथा महसूस नहीं कर सकते। दूर बैठकर अव्यवहारिक सिद्धान्तों की बात करना आसान है। परन्तु यदि आप एक बार अपने आप को उनके स्थान पर रखें तो आप यह महसूस करेंगे कि दर्द कहाँ होता है। उन्होंने यह बंटवारा कभी नहीं चाहा और वे चाहते हैं कि पहले की गयी प्रतिज्ञाएं पूरी हों। हम भी मेल मिलाप की प्रक्रिया चाहते हैं। हमें गाँधीजी की विचारधारा की बात नहीं कहनी चाहिए। गाँधीजी जो कुछ भी थे, उनकी विचारधारा में कायरता नहीं थी। उनकी विचाराधारा में निकम्मापन नहीं था। वे कभी भी चुपचाप और असहाय नहीं बैठे थे। जब मैं दिल्ली आया और नोआखली में हुई घटनाओं का ब्यौरा दिया तो उनके लिए और सभी कुछ गौण हो गया। वे कलकत्ता आये और हमने उन्हें पूरा विवरण दिया। उनका काम करने का अपना तरीका था चाहे हम उनसे सहमत हुए या नहीं हुए। ढाका में हुए दंगों के समय मैं आया और मैंने उन्हें इस बारे में बताया। उन्होंने अगले सप्ताह 'हरिजन' में सार्वजनिक रूप से कहा कि उनका प्रथम प्रतिकार यह है कि लोग

दंगाईयों के पास जाकर मरें और अपने को कुर्बान कर दें। मैंने कहा कि यह सम्भव नहीं है; यदि कोई गुण्डा आकर मुझ पर हमला करता है तो दण्ड संहिता मुझे उसे मारने का अधिकार देती है; मैं एक निर्दोष व्यक्ति की हत्या नहीं कर सकता परन्तु जो व्यक्ति मुझे जख्मी करना चाहता है उस पर हमला करना मेरा अधिकार है जो मुझे कानूनन मिला है। उन्होंने कहा, आप ऐसा कर सकते हैं। फिर उन्होंने आगे कहा कि यदि सम्भव हो अहिंसात्मक ढ़ंग से विरोध कीजिए और यदि आवश्यक हो तो हिंसात्मक ढ़ंग से विरोध कीजिए परन्तु गलत व्यक्ति के आगे कभी मत झुकिये। मैं सरकार से इसे नीति के रूप में स्वीकार करने के लिए कहता हूँ। इस राष्ट्रीय अन्याय का विरोध कीजिए।

प्रधानमंत्री ने चार दिन पूर्व अपने वस्तव्य में कहा थाः :

"मेरे मन में यह बात स्पष्ट है कि भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों में मतभेदों के लिए अन्ततः उपाय सौहार्दपूर्ण वातावरण में बैठकर बातचीत करना है ना कि एक दूसरे पर आरोप लगाना। हमें यह शांति से कर लेना चाहिए।

"लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि हम गलत तौर तरीकों के समाने झुक जायें।"

मैंने इस बात पर जोर दिया है। यही मैं आज कह रहा हूँ। उनके विरूद्ध मेरा आरोप भी यही है कि वह गलत बातों के समक्ष हार मान रहे हैं।

ऐसा नहीं है कि केवल आप ही झुक रहे हैं बल्कि आप तो, लोगों को भी गलत बातों के लिए झुका रहे हैं और इस तरह आप समस्त देश का अपमान करा रहे हैं। वह कहते हैं कि किसी को भी हमेशा बुरी बातों का विरोध करना चाहिए और किसी भी प्रकार की आपातकाल की घड़ी के लिए तैयार रहना चाहिए। मैं पूछता हूँ वह आपातकाल वाली घड़ी कब आयेगी? हजारों मर गये हैं। सैकड़ों स्त्रियों का अपहरण हो चुका है, बलात्कार किया गया है। लाखों रुपयों की सम्पत्ति लूट ली गयी है, नष्ट की जा चुकी है। लोग धैर्य खो चुके हैं। फिर अभी भी आपातकाल की घड़ी आनी बाकी है। आप इससे ज्यादा और क्या चाहते हैं? साफ साफ कह दीजिए कि "मैं इतने और लोगों की हत्या चाहता हूँ या चाहता हूँ कि इतनी गलत बातें और घट जायें फिर इस तरह जब इस सबकी रिपोर्ट आ जायेगी तो मैं आपातकाल की घोषणा कर दूंगा।" हमें भी पता चलना चाहिए कि इसके लिए क्या सीमा है। फिर हम धैर्य से इन्तजार करेंगे और देखेंगे। लेकिन प्रधान मंत्री के नेतृत्व में यहाँ आपातकाल कभी नहीं लगाया जायेगा।

अन्ततः मैं यह कहकर समाप्त करूंगा कि निःसंदेह हमें शान्ति चाहिए लेकिन इज्जत के साथ। हमें शान्ति का मार्ग अपनाना चाहिए। यदि हम ऐसी योजना बना सकें, जिससे हम इस समस्या को पूर्णतः सुलझा लें तो हमें ऐसी योजना बनानी चाहिए। लेकिन यदि इसके समक्ष घुटने टेक दें और साथ ही साथ इस समस्या को सुलझाने में सरकार जितनी देर

करेगी उतनी ही अधिक प्रतिक्रिया इस संबंध में देश में होने की संभावना होगी। इस स्थिति से किसी भी कीमत पर बचना चाहिए। अब इस वक्त ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है लेकिन पाकिस्तान ऐसा गलत प्रचार कर रहा है कि मालदा में 400 मुसलमानों की हत्या की गयी है। मुझे प्रसन्नता है कि इस संबंध में भारत सरकार ने समाचार पत्रों के माध्यम से अपना विरोध प्रकट किया है। बिल्कुल ऐसा ही सब, पाकिस्तान हमेशा करता रहा है और भारत के लिए आत्मरक्षा स्वरूप आँगे आने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इन झूठी प्रचारित कहानियों में से एक मालदा में 400 मुसलमानों की हत्या करना भी है। सरकार ने इसका कड़ा विरोध किया है तथा यह आज के समाचार पत्रों में भी छपा है। लेकिन यह झूठा प्रचार तो तब तक चलता रहेगा जब तक कि भारत की नीति में काफी कुछ परिवर्तन नहीं किया जायेगा। यहाँ इस बात को महसूस करना तथा आगे की कार्यवाही संबंधी निर्णय लेना भी काफी महत्वपूर्ण है, ताकि सरकार जैसा समर्थन और सहयोग इस राष्ट्रीय संकट की घड़ी में भारत के देशवासियों से चाहती है, प्राप्त कर सके।

14

भारत की विदेश नीति

मैं अपनी विदेश नीति की केवल विदेशों में हो रही घटनाओं की दृष्टि से ही नहीं अपितु अन्य दृष्टिकोण से भी समीक्षा करना चाहूंगा, निस्सन्देह, आज कोई भी राष्ट्र यह नहीं कहता है कि वह युद्ध की तैयारी कर रहा है, आज हम स्तालिन के उत्तराधिकारी द्वारा जारी वक्तव्य पढ़ते हैं जिसमें उसने इस बात पर बल दिया है कि आज विश्व की सबसे बड़ी आवश्यकता शांति है और ऐसी कोई समस्या नहीं है जिसे शांतिपूर्ण ढंग से हल नहीं किया जा सकता। वास्तव में, जब कभी भी सभी राष्ट्रों की ओर से वक्तव्य जारी किये जाते हैं वे प्रायः एक समान होते हैं। इनके बावजूद भी विश्व में इस समय मौजूद परिस्थितियों से चिंता बनी हुई हैं। इन परिस्थितियों में हम क्या कर सकते हैं? जाहिर है कि यदि हम मकान की छत से चिल्लाकर कहते हैं कि हमें शांति चाहिए तथा जोर-जोर से चिल्लाते हैं तो जरूरी नहीं है कि हमें शांति मिल ही जायेगी, हम अपना यह सहयोग दे सकते हैं कि हम युद्ध के पक्ष में नहीं हैं, जैसा कि हम किसी न किसी रूप में कर रहे हैं। यदि युद्ध होता है तो यह विश्व के किसी विशेष क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहेगा बल्कि सभी क्षेत्रों में फैल जायेगा। इसी दृष्टि से हमारी विदेश नीति की सराहना की गई है और प्रधान मंत्री ने यह विश्वास दिलाया है कि वह शांतिप्रिय नीति का पालन करने की कोशिश कर रहे हैं।

मैं इस पहलू पर विस्तार से नहीं कहना चाहूँगा। ऐसी शंकाएं व्यक्त की गई हैं कि यदि आर्थिक मामलों में बड़ी विदेशी शक्तियों पर अधिक निर्भर रहना पड़े तो इसके गम्भीर प्रतिकूल परिणाम हो सकते हैं और ये शंकाएं पूर्ण रूप से निराधार भी नहीं हैं। हमारे लिए यह कहना सम्भव नहीं है कि ऐसे प्रतिकूल परिणामों को वास्तव में अपनाए जाने के लिए कोई प्रयास किया गया है अथवा नहीं, परन्तु, इस बात को प्रत्येक सम्भावित स्थिति में ध्यान में रखा जाना चाहिए।

परन्तु मैं अपनी विदेश नीति के उस सफलता अथवा असफलता के सन्दर्भ में समीक्षा करना चाहूंगा जो अंतर्राष्ट्रीय सम्बंध में भारत से सम्बंधित मामलों से प्राप्त हुई हैं। यदि

हम गत पांच वर्षों के दौरान भारत के पांच अथवा छह विचाराधीन मामलों की समीक्षा करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारा इतिहास निराशाजनक और परिवर्तनशील असफलता का इतिहास है, ये कौन-कौन से मामले हैं? दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों का मामला है, क्या हम प्रताड़ित किये जा रहे उन लोगों के हितों की रक्षा के लिए कुछ कर पाने में सफल रहे हैं, श्रीलंका में भारतीयों के हितों की रक्षा के बारे में क्या किया जा रहा है? क्या हम इस क्षेत्र में कुछ कर पाने में सफल हुए हैं? भारत में विदेशी अड्डों को समाप्त करने के लिए क्या किया जा रहा है? कुछ महीने पहले प्रधान मंत्री ने इस सदन में घोषणा की थी कि वार्ता के लिए केवल एक ही आधार हो सकता है और वह आधार, भारत के साथ सभी क्षेत्रों का पुनः विलय था, ऐसी स्पष्ट घोषणा सुनकर हम अत्यधिक प्रसन्न थे। परन्तु इस सम्बंध में क्या किया गया है? जो रिपोर्ट परिचालित की गई है वह अपर्याप्त है, यह समय-सारिणी से भी बदत्तर है। हमें यहां कोई जानकारी नहीं मिलती है और हमने दूतावासों के कार्यकरण और अन्य विभिन्न विषयों के बारे में कुछ जानना चाहा था, मैं प्रधान मंत्री से सहमत हूं कि विदेश नीति के सम्बंध में अनेक ऐसे विषय हैं जिन पर खुले रूप में चर्चा नहीं की जा सकती है परन्तु फिर भी रिपोर्ट ज्ञानवर्धक तथा रोचक रही होगी। ऐसे विषयों के सम्बंध में, भारत में विदेशी अड्डों को समाप्त किये जाने के लिए सूचना भेजे जाने के अतिरिक्त हमें कोई प्रेरणा नहीं मिलती है।

भारत-पाक सम्बंधों का प्रश्न पुनः है। अन्य दूसरे किसी दिन मैं जब सदन में नहीं था—प्रधान मंत्री ने हमें देश के दुश्मनों की मदद करने वाला कहा। मैं नहीं जानता कि वह किस दुश्मन के बारे में सोच रहे थे। यदि वह पाकिस्तान है तो मुझे खुशी है हम पर आक्रमण करने के बावजूद भी उन्होंने पाकिस्तान को भारत का शुत्र कहा। वास्तव में भारत-पाक सम्बंधों का आधार क्या है? ऐसे अनेक मामले हैं जो समाधान हेतु लम्बित पड़े हुए हैं, पूर्व बंगाल के अल्पसंख्यकों का ही प्रश्न लीजिए जिसे प्रधान मंत्री ने स्वयं एक लम्बित समस्या कहा है और जिसका पाकिस्तान के साथ समाधान किया जाना है। वहां पासपोर्ट प्रणाली का मामला है जिसके परिणामस्वरूप गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गई है, नहर के जल तथा इस सम्बंध में भारत के विरुद्ध चलाये जा रहे प्रचार का प्रश्न ही लीजिए, फिर वहां से हटाये गये लोगों की सम्पत्ति तथा कश्मीर का भी मामला है।

इन सभी मामलों के सम्बंध में हमें यह पता चलता है कि व्यावहारिक रूप में हमारी नीति असफल रही है, मैं यह वकालत नहीं करता हूं कि आपको उन सभी देशों पर आक्रमण कर देना चाहिए जो भारत के प्रतिकूल रहे हैं परन्तु कूटनीति के क्षेत्र में थोड़ी बहुत कल्पनाशक्ति और समर्थता का परिचय दिया गया होता तो भारत को वह सफलता मिल जाती जिसका वास्तव में वह हकदार है, इसलिए, यदि आप भारत के आत्म-सम्मान, मर्यादा, प्रतिष्ठा और हितों से सम्बंधित प्रमुख वियषों के रूप में हमारी विदेश नीति की

समीक्षा करें तो दुर्भाग्यवश आपको मालूम होगा कि हमारी सफलता नहीं के बराबर है, ऐसी बात नहीं है कि मैं केवल यह कह रहा हूं कि भारत की विदेश नीति सही नहीं है।

विदेश नीति में, निस्सन्देह, उन घटनाओं के अनुसार परिवर्तन होता रहता है जिससे सम्पूर्ण विश्व में परिवर्तन हो रहा है, परन्तु शेष विश्व के बारे में बात करने के बजाय हमारे लिए यह बेहतर होगा कि हम स्वयं अपनी घरेलू समस्याओं, अंतर्राष्ट्रीय सम्बंधों को प्रभावित करने वाली समस्याओं को देखें और ऐसी परिस्थितियां सुनिश्चित करें कि भय और शिकायतें, जिनसे हम ईमानदारी से जूझ सकते हैं; के कारणों को समाप्त करने में सफल हो सकें। भारत-पाक सम्बंधों के सम्बंध में मुझे रिपोर्ट से यह पता चलता है कि बैगे न्यायाधिकरण गठित किया गया था, महोदय, आप जानते हैं कि रैडक्लिफ पंचाट गठित किया गया था और रैडक्लिफ पंचाट की कुछ सिफारिशों के भाषान्तरण में कठिनाई उत्पन्न हुयी थी, इसके पश्चात् "बैगे न्यायाधिकरण" गठित किया गया था। हमें पता चला है कि बैगे न्याधिकरण की सिफारिशों को लागू नहीं किया गया है क्योंकि पाकिस्तान इसे लागू करने के लिए सहमत नहीं हुआ है। इसलिए मैं नहीं जानता कि बैगे के पश्चात् कौन से 'टैगें' अथवा 'रैगें' न्यायाधिकरण गठित किया जायेगा, मैं नहीं जानता कि दूसरे अन्य सज्जन कौन होंगे जो इन तथ्यों का अध्ययन करेंगे तथा भारत और पाकिस्तान के परस्पर विरोधी दावों का कौन सज्जन फैसला करेगा। मैंने कलकत्ता के समाचार पत्रों तथा पश्चिम बंगाल विधान सभा की कार्यवाही वृत्तांत में भी पढ़ा है कि बारबार छापे मारे जा रहे हैं, लगभग प्रतिदिन नादिया जिले में छापे मारे जा रहे हैं। हत्या, सम्पति की चोरी, महिलाओं का अपहरण तथा इस प्रकार के अन्य सभी अत्याचार किये जा रहे हैं। इस सम्बंध में सरकार कहती है कि हम अपना विरोध जता रहे हैं परन्तु, दुर्भाग्यवश, हम पूर्व पाकिस्तान को ऐसा करने से रोकने में असमर्थ रहे हैं, पाकिस्तान बजट आज ही घोषित किया गया है। हमारा बजट इस वर्ष के दौरान पाकिस्तान से 18 करोड़ रुपये प्राप्त करने पर निर्भर करता है और इसलिए हम लगभग 48 लाख रुपये अधिक प्राप्त होने की आशा करते हैं परन्तु आज घोषित पाकिस्तान बजट से हमें पता चलता है कि इसमें सहमति व्यक्त की गई है कि इस वर्ष के दौरान भारत को कोई अंशदान अदा नहीं किया जायेगा, ये ऐसे महत्वपूर्ण मामले हैं जिन पर हमें विचार करना होगा और मैं प्रधान मंत्री से जानना चाहूंगा कि भारत के उचित अधिकारों और दावों की सुरक्षा के प्रयोजनार्थ वह वास्तव में किस नीति का अनुसरण करने पर विचार कर रहे हैं।

अपहृत महिलाओं को खोजने के सम्बंध में रिपोर्ट में कहा गया है कि जबकि गत वर्ष के दौरान भारत में 1289 महिलाएं खोजी गई, हम पाकिस्तान से केवल 474 महिलाएं ही प्राप्त कर पाये।

कितने हजार में से, हम नहीं जानते है, यह आंकड़े नहीं दिये गये हैं, यह संख्या लगभग दस हजार अथवा पन्द्रह हजार थी जैसा कि दो वर्ष पहले भी गोपालस्वामी अय्यंगर ने आंकड़े दिये थे, मैं नहीं जातना हूँ कि वहां से कितनी हजार महिलाएं अभी खोजी जानी हैं। इसलिए इस सम्बंध में—मैं कुछ आंकड़ों को एक-एक करके ले रहा हूं तथा परिचालित रिपोर्ट से संग्रहित कर रहा हूं—हमें पता चलता है कि यद्यपि यह महवपूर्ण मामला है परन्तु इस सम्बंध में हम पूर्ण रूप से असफल रहे हैं।

नेपाल के सम्बंध में मैं कुछ शब्द कहना चाहूंगा। मेरे माननीय मित्र ने नेपाल के बारे में कहा है। निस्सन्देह, उन्होंने एक ही परिपेक्ष्य में नेपाल के बारे में कहा है और यह है नेपाल से अनधिकृत प्रवेश के बारे में है। मैं केवल अमरीका से अनधिकृत प्रवेश के बारे में ही नहीं सोच रहा हूं। अन्य क्षेत्रों से भी अनाधिकृत प्रवेश की सम्भावनाएं हैं। अर्थात् तिब्बत, जिसके बारे में समाचार पत्रों में समाचार प्रकाशित हुए हैं। मैं सहमत हूँ कि नेपाल के साथ हमारे सम्बंध दुर्भाग्यपूर्ण रहे हैं। नेपाल कांग्रेस द्वारा पारित तथा आज प्रकाशित संकल्प ने नेपाल के मामलों को सुलझाने में हमारी भूमिका के ढंग पर कड़ी छींटाकशी की गई है। फिर भी, उत्तरी छोर, अर्थात् अजेय हिमालय, पर हमारी सीमाएं आज कमजोर हो गई हैं और रिपोर्ट में कहीं भी इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि सरकार सामरिक महत्व के इस विशिष्ट क्षेत्र की सुरक्षा हेतु क्या कदम उठा रही है, ये ऐसे मामले हैं जिनके बारे में हम चिंतित हैं। निस्सन्देह, हमें अंतर्राष्ट्रीयता के बारे में सोचना चाहिए, हमें शेष विश्व के बारे में सोचना चाहिए, परन्तु जब तक हम अपने पैरों पर खड़े होने तथा ऐसी परिस्थितियां पैदा करने, जिसमें इस देश अथवा विदेशों में रहने वाले लोगों के उचित आधिकारों और विशेषाधिकारों को सुरक्षित रखा जा सके, के लिए तैयार न हों, तो हम ऐसा उत्साह पैदा करने में असफल रहेंगे जिसकी शेष विश्व के साथ हमारे सम्बंधों संचालित करने वाली सुदृढ़ विदेश नीति को चलाने में हमें आवश्यकता है।

मैंने इस रिपोर्ट में देखा कि जहां कश्मीर का सन्दर्भ दिया गया है, सुस्पष्ट भाषा में डा० ग्राहा की रिपोर्ट का सन्दर्भ दिया गया है और इसकी भाषा मनोभाव से अति विशिष्ट है जो हमारी पीठ पर घाव करने वाले तथा उचित ढंग से व्यवहार न करने वाले देशों के साथ हमारे सम्बंधों को संचालित करती है। इसमें यह लिखा गया है कि:

"भारत ने इस संकल्प को स्वीकार नहीं किया है....."

बहुत अच्छा—

"यद्यपि वह मूल मसलों पर अपनी आधारिक स्थिति का पूर्ण रूप से विरोध करती थी परन्तु शांतिपूर्ण हल के लिए सभी सम्भावनाओं का पता लगाने के उद्देश्य से वार्ता जारी रखने की इच्छा प्रकट की है"। इसलिए बार-बार हमने कहा कि इस मध्यस्थ द्वारा

पारित संकल्प मूल सिद्धांतों और उन सिद्धान्तों, जिन्हें हम मूल समझते हैं, के विरूद्ध हैं तथा फिर भी हम शांतिपूर्ण हल के लिए वार्ता जारी रखते हैं।

यदि प्रधान मंत्री की नीति यह है कि उन्हें ऐसे लोगों से व्यवहार करना होता है, जो उनकी मूल स्थिति और आधारभूत मुद्दों के विरोधी हैं, फिर भी उनसे कोई झगड़ा नहीं होना चाहिए बल्कि शांतिपूर्ण समझौते के लिए बातचीत की जानी चाहिए—अगर उनकी यही नीति है, तब मैं चाहूंगा कि घरेलू मामलों में, सभी मामलों में, विशेषकर भी यही नीति अपनाई जानी चाहिए। कश्मीर मामले का अन्ततः हल क्या है? मैंने यह बात बार-बार कही है कि सुरक्षा परिषद से हमें कोई आशा नहीं करनी चाहिए। हम सुरक्षा परिषद् में हमले, आक्रमण का प्रश्न लेकर गए थे, न कि विलय के प्रश्न को लेकर गए थे। जहां तक आक्रमणा का प्रश्न है, आक्रमणा सिद्ध होने पर भी सुरक्षा परिषद् ने हमारा समर्थन नहीं किया है। जहां तक अधिमिलन का संबंध है, हमने आरम्भ से ही यह स्पष्ट कर दिया था, यह भारत और कश्मीर के बीच की बात है। इसमें कोई शक नहीं है कि प्रधान मंत्री ने जनमत संग्रह की बात की थी, लेकिन अब जनमत सग्रंह का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यदि आप जम्मू और कश्मीर के लोगों की राय जानना चाहते हैं, ऐसा केवल वहां राज्य में, कार्यरत संविधान सभा के माध्यम से ही किया जा सकता है और इस नाटक को, समाप्त किया जाना चाहिए। हम डा० ग्राहम की रिपोर्ट पर या इस रिपोर्ट में उठाए गए मुद्दों पर जितनी भी कार्यवाही करेंगे ये मामले उतने ही जटिल होते जाएगें। तब भारत के लिए इस स्थिति से उभर पाना मुश्किल हो जाएगा। मैं यह सुझाव नहीं दे रहा हूं कि प्रधान मंत्री को अपना आश्वासन वापस ले लेना चाहिए। उन्होंने यह कहा था कि वे लोगों की इच्छा के अनुसार कार्यवाही करेंगें। इस इच्छा का अनेक तरीकों से पता लगाया जा सकता है, लोगों की इच्छा, राय जानने का एक तरीका जनमत संग्रह है। जब भारत का विभाजन हुआ था तो भारत के लोगों की राय किसने जानी थी? तब कोई जनमत संग्रह नहीं कराया गया था। बंगाल, पंजाब, सिंध और अन्य स्थानों से, सीमित मतदान से निवार्चित विधान सभाओं के सदस्यों की राय से ही लोगों की राय का पता लगाया गया था। यदि भारत के विभाजन का फैसला, सीमित मतदान से विधान सभा के लिए निर्वाचित लोगों की राय से किया जा सकता है, तो वयस्क मतदान के आधार पर गठित विधान सभा के निर्णय से जम्मू और कश्मीर के विलय का अंतिम निर्णय क्यों नहीं ले लिया जाता? सरकार को इस मामले पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए। हमें इस दुविधा से निकलना होगा। मैं किसी को दोष नहीं दे रहा हूं। हो सकता है हम अच्छे उद्देश्य से सुरक्षा परिषद् में गए हों, लेकिन जब हमने पाया कि द्वार बिल्कुल ही बंद कर दिए गए हैं तो हमारे पास और कोई रास्ता नहीं था। तब इस मामले को समाप्त कर पक्का निर्णय, करना चाहिए—ताकि हम सब के बीच इस बारे में सभी विवाद समाप्त हो जाएं।

जहां तक संयुक्त राष्ट्र संघ का संबंध है, और जहां तक पाकिस्तान का संबंध है, अन्य किसी रूप में दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति पैदा हो सकती है। यदि ऐसी स्थिति पैदा होती है, तो हमें इन स्थितियां की पूरी जानकारी होगी।

जो आन्दोलन चल रहा है, उस पर ध्यान दें, सि अवसर पर मैं विस्तार में नहीं जाना चाहता। वास्तव में, जब हम इस सदन से अनुपस्थित थे, तो माननीय प्रधान मंत्री ने इस प्रश्न पर चर्चा कराये जाने पर सहमति प्रकट की थी। मैं उस विशेष चर्चा की प्रतीक्षा कर रहा था। यह बेहतर होता, यदि हमारी उपस्थिति में यह चर्चा कराई जाती तो बेहतर होता, ताकि हम भी इसमे भाग ले सकते और बाहर की बजाय, सदन में ही हम एक-दूसरे के विचारों को जान जाते। लेकिन इस समस्या का मूल प्रश्न, जिसके आधार पर आन्दोलन चल रहा है। वह है जम्मू और कश्मीर का अंतिम रूप से भारत में विलय। और इस प्रश्न को इस ढंग से हल किया जाये कि महज केवल जम्मू और कश्मीर के लोगों के लिए बल्कि भारत के लोगों के लिए उचित और न्यायोचित हो।

मामले का एक अन्य पहलू, जिस पर मैं जोर देना चाहता हूं यह है कि कुछ लोग यहां नहीं रहना चाहते थे, इसलिए पांच वर्ष पूर्व ही देश का विभाजन हुआ था। लेकिन अब ऐसा समय आ गया है, जब यह घोषित कर दिया जाना चाहिए—विशेषकर जब अंग्रेज भी भारत छोड़ गए हैं—कि अगर देश के लोगों का कोई भी समूह भारत में नहीं रहना चाहता, तो वे किसी भी देश में जाकर बस सकते हैं परन्तु उन्हें भारत की भूमि का कोई भाग नहीं मिलेगा, यह भूमि किसी एक विशेष राज्य की नहीं है। यह दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बंगाल और जम्मू और कश्मीर की नहीं है। मैं मानता हूं कि यह भूमि भारत के लोगों की है, अतः इस बात का प्रश्न ही नहीं उठता कि किसी भाग के कुछ लोग इस संयुक्त भारत में नहीं रहना चाहते, अतः भारत से उस भाग को अलग कर दिया जाए। हमें अब यही कहना चाहिए, क्योंकि अब यहां ब्रिटिश सत्ता भी नहीं है, आखिरकार, लोगों की इस पृथ्कतावादी विचार को हम कैसे मान सकते हैं? यह परम सत्ता की कमियों से पैदा हुए कानूनी मुद्दों से पैदा हुई हैं। भारत एक राष्ट्र था,. लेकिन जैसा कि प्रधान मंत्री जानते हैं, और हमें भी इसकी अच्छी प्रकार से जानकारी है कि सत्ता परिवर्तन की एक शर्त यह भी थी कि, न केवल भारत का विभाजन होगा, बल्कि अचानक ही लगभग 560 राज्यों को अपनी स्वतन्त्रता और प्रभुसत्ता प्राप्त हो जाएगी। ऐसा भारत को सहायता प्रदान करने के लिए नहीं किया गया था। ऐसा भारत की स्थिति मजबूत करने में अड़चने पैदा करने के लिए किया गया था। लेकिन फिर भी हम इस आधार पर आगे बढ़े, क्योंकि सत्ता परिवर्तन के लिए यह भी एक शर्त थी। जहां तक इस प्रश्न का संबंध है, स्थिति के बारे में गलत दृष्टिकोण अपनाने का कोई लाभ नहीं होगा। सरकार द्वारा जिस दमनकारी नीति से इस आंदोलन को दबाने की कोशिश की गई या की जा रही है, वह

सफल नहीं होगी। मैं यहां और कुछ नहीं करना चाहता, क्योंकि मैं किसी से लड़ना नहीं चाहता। लेकिन गम्भीर प्रश्न उठाए गए हैं और एक-दूसरे को गाली देने का कोई लाभ नहीं होगा। मैं किसी को गाली दे सकता हूं और बदले में वह मुझे भी गाली दे सकता है। हम एक दूसरे को गाली दे सकते हैं। कुछ लोग मुझे साम्प्रदायिक या प्रतिक्रियावादी कह सकते हैं। मैं भी उन्हें कुछ भी कह सकता हूं। लेकिन प्रश्न यह नहीं है। आइये जम्मू और कश्मीर के संबंध में उठाए गए मुद्दों पर विचार करें,—ये मुद्दे राजनैतिक हैं; ये मुद्दे आर्थिक हैं, ये मुद्दे प्रशासनिक हैं। आइये इन मुद्दों पर ठंडे दिमाग से और तटस्थता से विचार करें और देखें कि हम किस समझौते पर पहुंचने पर सहमत हो सकते हैं, ताकि हम किसी भी गम्भीर अन्तर्राष्ट्रीय कठिनाई को टाल सकें और सारे देश के लिए कठिनाईयोंऔर आंदोलन से बचा सकें।

यहां, प्रधान मंत्री ने कहा है कि हालांकि वह ग्राहम रिपोर्ट के मूल मुद्दों से असहमत हैं—मैं समझता हूं कि उन्होंने कहा है कि वे इससे पूरी तरह असहमत हैं—फिर भी वह शांतिपूर्ण समझौते के लिए वार्ता जारी रखने के इच्छुक हैं। जम्मू और कश्मीर आन्दोलन के हल के लिए भी वह इसी प्रकार का रवैया क्यों नहीं अपनाते? हालांकि, वह इसे पूरी तरह सहमत हैं, इस मामले के हल के लिए वे वार्ता जारी रखने और शांतिपूर्ण हल निकालने के लिए प्रायस क्यों नहीं करते? मेरा उनसे केवल यही अनुरोध है कि वे गांधीवादी तरीके अपनाएं। उनका कहना है कि वे घरेलू और विदेशी मामलों में इन्हें अपना रहे हैं।

जहां तक पाकिस्तान का संबंध है, मैं पिछली रात एक पुस्तक पढ़ रहा था और उसमें मैंने पढ़ा कि 1938 में हिटलर से निपटने के लिए ठीक इसी प्रकार के शब्द ब्रिटेन के प्रधान मंत्री श्री चैम्बरलेन और फ्रांस के प्रधान मंत्री ने प्रयोग किए हैं। श्री चैम्बरलेन की नीति को 'अम्ब्रेला' नीति कहा गया था। उनकी नीति का यही उल्लेख किया गया है और उन्होंने विश्व की कि उसमें कहा सूचना के लिए जो टिप्पण जारी किया उसमें बताया गया कि "मुक्त और शांतिपूर्ण तरीके से बातचीत करके अन्तर्राष्ट्रीय तुष्टि को बढ़ावा देने के महान् समान कार्य में लगे हुए हैं। उस तुष्टि की नीति का क्या परिणाम निकला, आज इसकी हमें और विश्व को कितनी भारी कीतम अदा करने पड़ रही है, मैं यह सुझाव नहीं दे रहा हूं कि हमें बहादुरी का प्रदर्शन करने की भावना होनी चाहिए। न ही मैं यह सुझाव दे रहा हूं कि हमें नगीं तलवारें लेकर चलना चाहिए और शेष विश्व को हम जैसा चाहें वैसा नचाएं। हमें दृढ़ता की आवश्यकता है, हमें निर्णायक नीति की आवश्यकता है, हमें अपनी मातृभूमि के हितों की रक्षा की आवश्यकता है। अगर हम इन सभी बातों को ध्यान में रखेंगे, और इन पर कायरवाही करेंगें, तो मुझे पूरी आशा है कि अब तक हमने जो प्राप्त किया है, उससे कहीं अधिक प्राप्त करना हमारे लिए सम्भव होगा।

खर्च के बारे में, में अन्तिम शब्द कहना चाहूंगा। अन्त में मेरे जिस माननीय मित्र ने भाषण दिया था, उन्होंने कहा था कि विदेश मंत्रालय के खर्च में वृद्धि की जानी चाहिए। मैं दूतावासों के कार्यसंचालन के बारे में और जानकारी प्राप्त करना चाहूंगा। यह हो सकता है उनके कार्यसंचालन के बारे में हमें बढ़ा-चढ़ा कर या गलत रिपोर्टें प्राप्त हो रही हों। हम तथ्यों को जानने के इच्छुक हैं। प्रधान मंत्री ने पिछली बार आश्वासन दिया था कि विदेश नीति के बारे में समय-समय पर विपक्षी दलों से विचार-विमर्श किया जायेगा। लेकिन दुर्भाग्य से एक अवसर को छोड़कर उन्हें ऐसा करने के लिए समय ही नहीं प्राप्त हुआ।

जहां तक इस खर्च का संबंध है, मैंने देखा है कि जहां तक भारत का संबंध है, हम अपने 438 करोड़ रुपए के वार्षिक बजट में से आठ करोड़ रुपए इस मद पर व्यय कर रहे हैं। हालांकि, इस आठ करोड़ रुपए में पूर्वोत्तर क्षेत्र की सुरक्षा के लिए खर्च किए गए तीन करोड़ रुपए की राशि भी सम्मिलित है। आज सुबह ही 'रायटर न्यूज' में समाचार प्रकाशित हुआ है कि ग्रेट ब्रिटेन में 'हाऊस ऑफ कामन्स' में प्रस्तुत बजट में विदेश मंत्रालय पर खर्च में 24 पौंड मिलियन, यानि 33 करोड़ रुपए की कमी की जा रही है। यह कमी किस प्रकार की जा रही है यह बता पाना मुश्किल है, लेकिन, आज, ऐसी घोषणा की गई है।

मैं तब तक व्यय बढ़ाने के पक्ष में नहीं हूँ जब तक ऐसा करने के लिए कोई आधार न हो। जिस प्रकार से दूतावासों को चलाया जा रहा है, मेरे विचार से वहाँ बचत की गुंजाइश है। उदाहरण के तौर पर प्रचार का मामला है, जो बहुत ही त्रुटिपूर्ण है। कुछ माह पहले मैंने दक्षिण-पूर्व एशिया के कुछ स्थानों का दौरा किया था तथा, थाईलैंड, कम्बोडिया और वियतनाम के कुछ भाग देखे थे। मैंने अनुभव किया कि वहाँ भारत का सांस्कृतिक प्रभाव बढ़ाने की काफी गुंजाइश है, जिसका उन देशों के लोग इसका उत्सुकता के साथ इंतजार कर रहे हैं। लेकिन बड़े दुःख की बात है कि इस दिशा में बहुत कम काम हो रहा है। मुझे यह जानकार प्रसन्नता हुई है कि इस वर्ष एक विख्यात इतिहासकार को कुछ व्याख्यान देने हेतु थाईलैंड भेजा जा रहा है। ये देश ऐसे हैं जिनके साथ भारत के संबंध हजारों वर्षों से हैं। भग्नावशेष मन्दिरों का नगर अंगारे वट लगभग 1500 वर्ष पूर्व उन देशों के भारत के साथ रहे संबंधों की याद दिलाता है। उन देशों को अब पुनः आजादी मिल रही है और वे—जो शब्द उन्होंने मुझसे कहे—अपनी आध्यात्मिक माँ के पास लौटने के इच्छुक हैं। यह कोई आर्थिक अथवा राजनीतिक घुसपैठ की बात नहीं है। यदि हमारी सरकार नियमित रूप से सांस्कृतिक और अन्य दूसरे सम्पर्क बनाने के संबंध में एक नीति बनाती है, तो भारत इन सभी देशों के साथ अपने पुराने संबंध बहाल कर सकता है। मैं यह चाहता हूँ कि इन देशों के लोगों के दिलों में भारत के स्थान को पनः प्रतिष्ठित

करने के लिए हमारी सरकार इन संबंधों को कुछ सीमा तक पुनः स्थापित करने की आवश्यकता पर विचार करे।

जहाँ तक वर्तमान स्थिति का संबंध है, हम निश्चित रूप से एक विस्फोटक स्थिति में रह रहे हैं। जैसा कि मैंने बार-बार कहा है, आंतरिक मामलों में सरकार के साथ हमारे कितने ही मतभेद क्यों न हों, फिर भी यह आश्वासन बिना किसी शर्त और झिझक के दे सकता हूँ कि यदि इस देश के हालात बिगड़ते हैं, जिससे हमारी मातृभूमि की सुरक्षा खतरे में पड़ती है, तो किसी भी मामले पर, चाहे वह कितना भी विवादास्पद क्यों न हो, कोई राजनीतिक मतभेद नहीं हो सकता और इस देश के सभी दल भारत की सुरक्षा और एकता को कायम रखने के लिए कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करेंगे। लेकिन कोई भी विदेश नीति तब तक प्रभावी नहीं हो सकती, जब तक कि इस देश में ऐसी स्थिति न बन जाये, जिसमें सभी वर्गों के लोग यह महसूस करे कि उन्हें उनका हक मिल रहा है तथा देश में प्रशासनिक, राजनीतिक और आर्थिक जैसे मामलों के विभिन्न पहलुओं पर, जिनका हल करने में इस देश की सुरक्षा और समृद्धि निर्भर करती है, आधारित लोकतन्त्र वास्तव में काम कर रहा है।

15

चुनाव सुधार*

मैं चुनावों संबंधी कानूनों के कुछ पहलुओं और उनसे संबंधित कुछ अन्य मामलों के बारे में संक्षेप में कुछ कहना चाहूंगा।

जैसा कि माननीय सदस्यों को ज्ञात है, सभा में लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1953 पुरःस्थापित किया गया है और जैसा कि इसके उद्देश्यों और कारणों के कथन में कहा गया है, इस विधेयक में, पिछले आम चुनावों के दौरान और उसके पश्चात् निर्वाचन आयोग तथा सरकार को हुए अनुभवों के आधार पर कुछ बिन्दुओं को लिया गया है। परन्तु, इसमें कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे छूट गए हैं और मैं सरकार से जानना चाहता हूं कि वह उन्हें किस प्रकार से लाना चाहती है।

जब सभा में इस विधेयक पर विचार किया जायेगा तो हम उन धाराओं, जिनमें संशोधन किया जाना है, के क्षेत्र से बाहर किन्हीं संशोधनों का सुझाव नहीं दे सकते हैं। इस स्तर पर तकनीकी आपत्तियों को वैध रूप से ग्रहण किया जा सकता है। दूसरी ओर, यदि सरकार विधेयक पर विचार शुरू होने से पूर्व उन प्रश्नों पर विचार करती है जिन्हें मैं उठाने जा रहा हूं तो उन पर सहमति से विचार करना संभव है और सभा उन्हें किसी भी प्रकार से निपटाने के लिये निर्णय कर सकती है।

आम चुनावों के पश्चात् संसद के पहले अधिवेशन में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर वाद-विवाद के दौरान मैंने इन मामलों का जिक्र किया था तथा वाद-विवाद का उत्तर देते समय प्रधान मंत्री ने घोषणा की थी कि सरकार उन सुझावों पर यथाशीघ्र विचार करेगी।

एक प्रश्न मतों की गणना के बारे में उठाया गया था। जैसाकि आप को ज्ञात है, मतों की गणना में विलम्ब के कारण अनियमितताओं और कदाचारों के बारे में अनेक शिकायतें की गई हैं और सुझाव दिए गए हैं। यह ठीक है कि निर्वाचन क्षेत्रों का आकार बड़ा होने और मतदान केन्द्रों की संख्या अधिक होने के कारण यह अपरिहार्य था। हमारा एक सुझाव यह था कि चुनाव पूरा होते ही उसी दिन मतगणना की जानी चाहिए। निर्वाचन

*लोक सभा वाद-विवाद, 8 अप्रैल, 1953

आयुक्त और सरकार के प्रवक्ता ने भी इस आशय की कुछ कठिनाइयां बताई कि हो सकता है कि मतगणना के कार्य की देख-रेख के लिए उचित अर्हता प्राप्त व्यक्ति वहां तत्काल उपलब्ध न हों। मैं इस तर्क को मानता हूं, परन्तु फिर भी मैं यह नहीं मानता कि यह कोई ऐसी कठिनाई है जिसे बिल्कुल दूर न किया जा सके। इसके बारे में संशोधनकारी विधेयक में कोई उल्लेख नहीं किया गया है और मैं चाहता हूं कि सरकार उस पर विचार करे। ब्रिटेन तथा अन्य देशों में भी, जहां संसदीय चुनाव होते हैं, यही प्रथा प्रचलित है। हम कुछ सदस्यों का सुझाव था कि प्रत्येक मतदान केन्द्र में गणना होनी चाहिए तथा इस गणना में तीन, चार या पांच घंटे लग सकते हैं, और उसके पश्चात् प्रत्येक मतदान केन्द्र का निर्वाचन अधिकारी एक घोषणा करे जिस पर संबंधित उम्मीदवारों के प्रतिनिधि प्रतिहस्ताक्षर करें। यदि सभी मतदान केन्द्रों पर ऐसा एक साथ किया जाए तो उसके पश्चात् तीन या चार या पांच या सप्ताह भर बाद भी परिणामों का जोड़ किया जा सकता है और यथोचित समय पर उनकी घोषणा की जा सकती है।

दूसरा सुझाव चिन्हों के लेबल लगाने के बारे में है। पिछली बार स्वयं प्रधान मंत्री ने यह माना था कि एक पेटी के चिन्ह का लेबल बदल कर दूसरी पेटी पर लगाने की संभावना के बारे में बहुत गंभीर आरोप लगाए गए थे। लेबलों को मत पेटियों पर चिपकाने के स्थान पर उन्हें उन पर पेंट किया जाना चाहिए क्योंकि पेटियों पर लेबल प्रायः भली-भांति नहीं चिपकते और अनेक कदाचार किये जाने का आरोप लगाया गया है। विभिन्न व्यक्तियों, जो न केवल विपक्ष के थे, बल्कि कांग्रेस पार्टी के थी थे, द्वारा ये दो विशिष्ट सुझाव दिए गए थे और मैं चाहता हूं कि सरकार इन सुझावों पर विचार करे।

अगला प्रश्न चुनाव के समय मंत्रियों और सरकार के अन्य व्यक्तियों को उपलब्ध की जाने वाली सुविधाओं के बारे में था। हमने इस प्रश्न पर भी चर्चा की थी। सरकार की ओर से कुछ उत्तर दिए गए थे और मैंने मंत्रियों तथा अन्य व्यक्तियों, जो आम चुनावों में उम्मीदवार हों, को उपलब्ध सुविधाओं के बारे में ब्रिटेन में प्रचलित प्रथा का हवाला दिया था। मैं उनके विस्तार में जाना नहीं चाहता, परन्तु वे बहुत हितकारी उपबंध हैं तथा इसका कोई कारण नहीं कि हमारे देश में भी इसी प्रकार के अभिसमय या नियम क्यों नहीं लागू किए जाएं। जैसाकि समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ है, वास्तव में ब्रिटेन में गत चुनावों के दौरान ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री एटली ने, अपनी स्वयं की मोटरकार में पूरे ब्रिटेन का दौरा किया था और वह कार का चालक रखने की भी स्थिति में नहीं थे और अधिकांश मौकों पर उनकी पत्नी ही कार चला रही होती थी तथा उन्होंने कभी भी सरकार

की किसी कार या किसी अन्य वाहन का प्रयोग नहीं किया। चुनाव प्रचार के लिए विशेष केन्द्रों का दौरा करते समय मंत्रियों तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा कुछ निश्चित नियमों का पालन किया जाना जरूरी होता है। स्थानीय अधिकारियों के लिए भी इस आशय के निश्चित निर्देश होते हैं कि उन्हें ऐसे अवसरों पर किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए। हम चाहते हैं कि हमारे देश में भी ऐसी ही परम्परायें स्थापित हों। जब पिछली बार इस प्रश्न पर हमने चर्चा की थी, तो माननीय प्रधान मंत्री इससे सहमत थे कि अगले आम चुनावों के प्रयोजनार्थ नियमों में संशोधन करते समय इन मामलों पर निष्पक्ष रूप से चर्चा की जानी चाहिए। परन्तु मुझे खेद है कि अब सभा के समक्ष प्रस्तुत इस संशोधनकारी विधेयक में इनमें से किसी भी बात को शामिल नहीं किया गया है।

एक अन्य प्रश्न आकाशवाणी तथा प्रसारण तंत्र आदि के प्रयोग के बारे में उठाया गया था। जैसाकि विदित है, विपक्षी दलों के उम्मीदवारों के लिए ये सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। ब्रिटन में एक समय सारिणी के अनुसार प्रत्येक दल के मतदाताओं को अपील करने के प्रयोजनार्थ रेडियो और प्रसारण तंत्र का प्रयोग करने की अनुमति दी जाती है। इसका कोई कारण नहीं है कि हमारे देश में भी ऐसा ही उपबंध लागू क्यों न किए जाएं।

इससे संबंधित एक अन्य प्रश्न पाकिस्तान से आए लोगों को मताधिकार प्रदान करने के बारे में है। हमारे संविधान में ऐसी व्यवस्था है कि 24 जुलाई, 1949 के पश्चात् पाकिस्तान से भारत आए व्यक्ति तब तक भारतीय नागरिक बनने के हकदार नहीं हैं, जब तक कि संसद उन्हें नागरिकता का अधिकार देने संबंधी कानून पारित नहीं कर देती। दुर्भाग्यवश, यह मामला गत चुनावों से पूर्व नहीं निपटाया जा सका। सभा को याद होगा कि पिछली संसद में सभी वर्गों के लगभग एक सौ सदस्यों ने प्रधान मंत्री को सम्बोधित एक अभ्यावेदन पर हस्ताक्षर किए थे जिसमें उनसे यह अनुरोध किया गया था कि एक विशेष विधान लाने के लिए कदम उठाए जाएं तथा उन लाखों लोगों को मताधिकार प्रदान किया जाए जो पाकिस्तान से 24 जुलाई, 1949 के बाद भारत आएं हैं और जिनकी निश्चित रूप से पाकिस्तान वापस जाने की कोई इच्छा नहीं है। परन्तु जैसा कि प्रधान मंत्री ने कहा है, दुर्भाग्यवश समय की कमी के कारण ऐसा नहीं किया जा सका। अब हमें समाचार पत्रों से पता चल रहा है कि एक विधेयक तैयार किया जा रहा है। निर्वाचन नियमों में संशोधन करने के लिए पहले ही कदम उठाए जा रहे हैं। मैं नहीं जानता कि सरकार का क्या इरादा है, विधेयक कब तैयार किया जाएगा, कब इसे सभा के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा और कब हमें इस पर चर्चा करने का अवसर मिलेगा। परन्तु अब इसकी अत्यावश्यकता है क्योंकि इसमें उन लाखों

लोगों को नागरिकता का अधिकार देने की बात निहित है जो पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान से 24 जुलाई, 1949 के बाद आए हैं। इनमें पूर्वी पाकिस्तान से आने वालों की संख्या अधिक है। मैं इस मुद्दे के बारे में भी जानना चाहूंगा कि वर्तमान स्थिति क्या है।

अंत में मैं भाग "ग" राज्यों के भविष्य के प्रश्न पर आता हूं। यह प्रश्न भी उठाया गया था कि क्या उन्हें पृथक इकाइयों के रूप में रहना चाहिए या आप चुनावों से पूर्व सरकार कम से कम भाग "ग" के कुछ राज्यों के भावी अस्तित्व के बारे में अपनी नीति में संशोधन करेगी। उदाहरण के लिए अजमेर को भाग "ग" राज्य माना जाता है जहां की जनसंख्या केवल साढ़े सात लाख है और केन्द्र से उसे प्रति वर्ष एक करोड़ रुपए से अधिक का अंशदान दिया जाता है और सभी साज-सामान के साथ वहां एक मुख्य मंत्री, एक मंत्री, एक मुख्य आयुक्त, एक मुख्य उपायुक्त, एक सहायक मुख्य आयुक्त, एक उपायुक्त और एक उपायुक्त और अनेक अन्य प्रकार के अधिकार विद्यमान हैं जिनका ऐसे छोटे राज्य में औचित्य सिद्ध करना कठिन है। ये स्पष्टतः विचारणीय विषय हैं। ये नीति संबंधी प्रश्न हैं, ऐसा नहीं कि ये माननीय विधि मंत्री के मंत्रालय के अंतर्गत आते हैं। परन्तु फिर भी जब तक इन राज्य क्षेत्रों के भविष्य के बारे में कोई नीति संबंधी निर्णय नहीं लिया जाता, हमारे पास समय नहीं रहेगा और हम परिवर्तनों को लागू नहीं कर पाएंगे। हम व्यय को कम करना चाहते हैं और इन क्षेत्रों विशेष में व्यय कम करने की काफी गुंजाइश है। निस्संदेह हम यह भी महसूस करते हैं कि और अधिक विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए, परन्तु उस विकेन्द्रीकरण का यह अर्थ नहीं है कि हम भारत के विभिन्न भागों में छोटे-छोटे क्षेत्रों में राज्य, मंत्रालय, सरकारें और विधानमंडल बनाएंगे। भोपाल या आजमेर या कुर्ग या पूर्वी भारत के किसी अन्य भाग को पृथक इकाइयों के रूप में रखने के लिए ऐतिहासिक दृष्टि से चाहे जो भी कारण रहे हों, गत दो या तीन वर्षों में इस प्रकार के ऐतिहासिक आवश्यकता समाप्त हो गई है और अब सरकार को अपना मत बना लेना चाहिए और इन क्षेत्रों का साथ लगने वाले अन्य क्षेत्रों के साथ विलय कर दिया जाना चाहिए अथवा इनका उचित समायोजन किया जाना चाहिए।

16

सिविल सेवक तथा कतिपय संगठनों के साथ उनकी सहबद्धता

मैं सभा से अपील करता हूं कि इस मामले को किसी दल विशेष की दृष्टि से देखकर इस पर निष्पक्ष रूप से विचार किया जाये। मुझे विश्वास है कि सभा के सभी वर्ग कतिपय मूल सिद्धांतों से सहमत हो सकते हैं—इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि इस समय कौन से दल सत्ता में है। हम देश में सामान्य राजनीतिक स्थिति पर चर्चा नहीं कर रहे हैं, न ही उन विभिन्न दृष्टिकोणों पर चर्चा कर रहे हैं जो राजनीतिक क्षेत्र में व्यक्त किए जा सकते हैं। हम इस बात पर चर्चा कर रहे हैं कि कथित ध्वंसात्मक क्रियाकलापों के लिए सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध कार्यवाही—सख्त-कार्यवाही करना कहां तक न्यायोचित होगा और यदि ऐसी कार्यवाही की भी जाए तो इसकी प्रक्रिया क्या हो जो ऐसी परिस्थितियों में उचित तथा न्यायसंगत हो।

यह साधारण सी बात है कि ऊपर से नीचे तक के हमारे सिविल सेवकों को राज्य के प्रति पूर्ण तथा अविभाजित निष्ठा रखनी चाहिए। राज्य से मेरा अभिप्राय उस विशेष राजनीतिक दल से नहीं है जो थोड़े समय के लिए देश में सत्तारूढ़ है। दुर्भाग्यवश आज सत्तारूढ़ दल के बराबर है और वह कांग्रेस है। दूसरी बात यह है कि हमारे सिविल सेवकों को चाहिए कि सरकारी हैसियत से जो जानकारी उनके पास है उसे वे अपने तक ही सीमित रखें और ऐसी जानकारी को जनता में प्रकट न करें। यह भी एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। तीसरे, उन्हें दलगत राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए। अब यदि हम इन तीन मूल सिद्धान्तों से सहमत हैं जो, मुझे विश्वास है कि प्रत्येक लोकतंत्रात्मक देश में विद्यमान है, तो यह प्रश्न उठता है कि हमें अपने सिविल सेवकों को उनके कार्यालय से बाहर राजनीतिक मामलों में कितनी रुचि रखने की अनुमति देनी चाहिए। फिर वे सभी मतदाता हैं, और यह निश्चित है कि वे किसी न किसी दल के पक्ष में या उसके विरुद्ध होंगे। इससे सत्ताधारी दल कांग्रेस को परेशानी नहीं होनी चाहिए कि आज अधिकतर सरकारी कर्मचारी किसी न किसी कारण से कांग्रेस के समर्थक नहीं हैं। वे सरकार का समर्थन कर सकते हैं। जब नीतियों का निर्धारण सरकार द्वारा किया जाता है तब यह

निश्चित रूप से आशा की जाती है कि प्रत्येक सिविल सेवक ऐसी नीतियों को प्रभावी बनायेगा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि राज्य की नीतियों के कार्यान्वयन में उनके वफादार न होने का कोई प्रश्न ही नहीं है। लेकिन जिन नियमों की हम चर्चा कर रहे हैं, उनका स्वरूप क्या है? हम किसी साधारण सिविल सेवक के नियमों की चर्चा नहीं कर रहे हैं। आपके यहां अनुशासन भंग होने से मामले में कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त प्रावधान हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि हमारी सरकार द्वारा तथा अन्य सरकारों द्वारा अनुशासन भंग के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त नियम बने हुए हैं। परन्तु ये नियम एक विशेष समय पर बनाए गए थे। इसलिए यदि आप मेरी अपील का कुछ मूल्य समझें तो मैं यह अपील करता हूं कि इस सारे प्रश्न पर अब नये सिरे से विचार किया जाए। ये नियम संतोषजनक नहीं रहे हैं। इन नियमों का आधार क्या है? आप कार्यवाही आरंभ कैसे करेंगे? आप कुछ संगठनों का नाम लेकर कहें कि यदि कोई ऐसे किसी संगठन का सदस्य है या ऐसे किसी पर ऐसे किसी संगठन से सहबद्ध होने या उनके साथ सहानुभूति रखने का संदेह है तो यह माना जाएगा कि वह ध्वंसात्मक क्रियाकलापों का समर्थन करता है। नियम में यह कहा गया है कि ऐसी परिस्थितियों में उन्मोचन नोटिस जारी किया जाना पर्याप्त है। संबद्ध मंत्रालय विभिन्न मंत्रालयों को समय-समय पर ऐसे संगठनों की सूची संसूचित करेगा जो सरकार की राय में ध्वंसात्मक कार्यों में लगे हुए हैं और उनकी सदस्यता या उनके साथ सहबद्धता के किसी सरकारी सेवक के विरुद्ध; अनुदेशों में उल्लिखित नोटिस जारी करने के लिए पर्याप्त आधार माना जाएगा और आगे कहा गया है कि जब किसी सरकारी सेवक को आरोप-पत्र दिया जाए तो उसमें जानकारी का स्रोत नहीं बताया जाएगा, यह बहुत स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यह ध्यान रखा जाए कि जो विवरण दिया जाए उससे जानकारी के स्रोत का पता नहीं लगना चाहिए। न केवल जानकारी के स्रोतों की जानकारी का होना बल्कि ऐसे विवरण भी न देना यदि उनसे जानकारी के स्रोतों का पता चलता हो तो विवरण भी न दिये जाएं। महोदय, जैसाकि आप जानते हैं मुझे कम्युनिस्ट पार्टी से लगाव नहीं है। यह दूसरा मामला है। उन्हें भी मुझ से कोई लगाव नहीं है। किन्तु इस देश में गोपनीय रूप से जिस प्रकार प्रशासन चलाया जाना होता है उसका उन नियमों में पर्याप्त रूप से संकेत मिलता है जो हमारी लोकतांत्रिक सरकार ने बनाए हैं। आप किस के विरुद्ध कार्यवाही कर रहे हैं? बाहर के लोगों के विरुद्ध नहीं बल्कि अपने ही कर्मचारियों के विरुद्ध, और आप कह रहे हैं कि यदि कोई कर्मचारी आपके. द्वारा उल्लिखित नियमों में निर्दिष्ट संगठनों के साथ सहानुभूति रखता है तो उनको उन्मुक्ति का नोटिस दिये जाने के लिए यह पर्याप्त आधार है। कम्युनिस्ट पार्टी

भी ऐसे संगठनों में से एक है: और इसके पश्चात आर० सी० पी० आई०, आर० एस० पी० आई०, आर० एस० एस० , मुस्लिम नेशनल गार्ड्स, खाकसार हैं और हाल में मार्क्सिस्ट्स फारवर्ड ब्लाक को इसमें सम्मिलित करने के लिए एक संशोधन किया गया था। इन संगठनों के बारे में आज क्या स्थिति है? क्या इनमें से कोई संगठन हमारे देश में प्रतिबंधित है? इसमें से कोई संगठन विधानमंडलों तथा संसद के चुनावों में खुलेआम अपने उम्मीदवार खड़े करते हैं और वे जीतते भी हैं। सरकार ऐसा कोई प्रयास नहीं करती कि इन संगठनों को देश में वैध ढंग से कार्य करने से रोके। आज वे खुलेआम कार्यरत हैं। चाहे उनके विचार कुछ भी हों। और आप ऐसे नियम पारित करना चाहते हैं जिनमें यह निर्दिष्ट हो कि यदि किसी सरकारी सेवक पर संदेह हो कि वह ऐसे किसी संगठन से सहानुभूति रखता है तो यह उसे सरकारी सेवा से बाहर करने के लिए पर्याप्त कारण हैं और उसे उसके विरुद्ध लगाये गये आरोपों के स्रोतों की जानकारी देना या विवरण देना आवश्यक नहीं है।

कुछ समय पहले मैंने एक उदाहरण दिया था जिसमें मैं व्यक्तिगत रूप से जानता था कि एक सरकारी सेवक के प्रति पूर्णतः अन्याय किया गया था और जब मैंने सरदार पटेल से अपील की तो उसकी जांच की गई और उस व्यक्ति को सेवा में बहाल किया गया। यह मामला पूर्णतः पूर्वनिर्मित लगता था और यह पता लगने पर कि पुलिस की सूचना गलत थी उसे बहाल किया गया। वह आज भी दिल्ली में भारत सरकार में एक महत्वपूर्ण अधिकारी है। ऐसे बहुत से मामले होंगे लेकिन इस समस्या के प्रति सारा दृष्टिकोण गलत है। आपके सरकारी सेवक वयस्क हैं। वे स्वतंत्र भारत के नागरिक हैं। वे देश में अप्रतिबंधित संगठनों के प्रति सहानुभूति रखने के निश्चित रूप से हकदार हैं। आप इस पर आपत्ति नहीं कर सकते। और यदि आप अपने कर्मचारियों की पीठ में छुरा भोंकने के लिए ऐसे गलत और गोपनीय तरीके अपनाते हैं तो आप देश में अच्छे प्रशासन के आधार को ही नष्ट करते हैं। यदि आप चाहते हैं कि देश में कुछ संगठनों को प्रतिबंधित किया जाए तो आप उचित ढंग से खुलकर ऐसा कीजिए और उसके परिणामों का सामना कीजिए। किन्तु यदि आप उन संगठनों को वैद्य निकायों के रूप में कार्य करने की अनुमति देते हैं और फिर कहते हैं कि यदि कोई कर्मचारी इन संगठनों के प्रति सहानुभूति रखता है तो उसे सरकारी पद पर नहीं रहने दिया जाएगा और उसे इस संबंध में कोई सफाई देने का मौका भी नहीं दिया जाएगा तो स्पष्ट है कि आप दलगत नीति अपना रहे हैं। फिर राष्ट्रीय सुरक्षा का आपका मामला केवल एक बहाना है। सारे मामले की पुनः जांच करनी होगी और हमारे नियम ऐसे बनाये जाएं जो सभी सम्बद्ध व्यक्तियों के लिए उचित और न्यायसंगत हों।

अब हमने दिल्ली में चुनावों के दौरान देखा है—अनेक क्षेत्रों में मेरा अनुभव रहा है

कि जिन क्षेत्रों में भारी संख्या में सरकारी कर्मचारी तथा निम्न वर्ग, मध्यम वर्ग आदि के लोग रहते हैं, उन पर कांग्रेस दल के प्रवक्ताओं ने किस प्रकार दवाब डाला। यदि कांग्रेस दल के विरोध में मतदान करोगे, यदि अमुक दल के पक्ष में मतदान करोगे तो तुम्हें उसके परिणाम भुगतने होंगे। श्रीमती कृपलानी दिल्ली में प्रत्याशी थीं और वह यहीं से विजयी हुई हैं। इस चुनाव में लगभग 1500 मत डाक द्वारा प्राप्त हुए थे। वे अभी मुझे बता रही थीं कि इन 1500 मतों में से 1050 मत उनके पक्ष में थे। ये अधिकारी देश के विभिन्न भागों में ऊंचे स्तरों पर कार्यरत हैं। उन्होंने कांग्रेस के विरोध में मतदान किया। यदि सरकार सभी कर्मचारियों को डाक द्वारा मतदान करने की अनुमति दे दे तो कहा नहीं जा सकता कि इस सरकार की क्या स्थिति होगी? इस पद्धति को अजमाया जाना चाहिए। देश भर के सरकारी कर्मचारियों की वर्तमान सरकार के बारे में राय जानने का यह एक बड़ा सरल तरीका है।

मैं यह पूरी तरह जानता हूं कि मैं संविधान को नहीं बदल सकता। सरकारी कर्मचारी अपने मतों से संविधान में परिवर्तन नहीं कर सकते। कम से कम इतना तो मैं जानता ही हूं। यदि यह सरकार केवल सरकारी कर्मचारियों के बैलट द्वारा रिकार्ड किये जाने वाले मतों पर निर्भर करने लगे तो कहा नहीं जा सकता कि इस सरकार की स्थिति क्या होगी, यह एक अलग बात है।

उन्हें अपने विचार रखने और अभिव्यक्त करने का अधिकार है। वे बच्चे नहीं हैं अपितु वयस्क हैं। वे आपके देश के नागरिक हैं। यदि आप उनकी निष्ठा पर इस तरह से सन्देह करेंगे तो इससे उनकी सहायंता नहीं होगी। यदि आप लोगों को इस सन्देह पर दण्ड देते रहेंगे कि उन्होंने अमुक कार्य किया है जो उन्होंने नहीं किया है और यदि उन्हें यह सिद्ध करने का अवसर तक नहीं दिया जायेगा कि उनके विरुद्ध लगाये गये आरोप सच नहीं हैं, तो यह एक बड़ी गम्भीर बात होगी। केवल दो दिन पहले मुझे एक युवक से अभ्यावेदन प्राप्त हुआ है, उसे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सत्याग्रह में भाग लेने के लिए चार वर्ष पहले दोषी सिद्ध किया गया था। उस समय उसकी आयु केवल 16 वर्ष की थी। दो महीने के बाद उसे रिहा कर दिया गया और तब उसे गुड़गांव में एक सरकारी कम्पनी में नौकरी दी गई। उसने साढ़े चार वर्ष तक वहां कार्य किया। पुलिस ने पूछताछ की और उसके वरिष्ठ अधिकारियों से उन्हें उसके विरुद्ध कोई शिकायत नहीं मिली। कुछ दिन पहले उसे सेवामुक्ति की एक सूचना मिली जिसमें कहा गया कि अगले दिन से उसे सेवा से मुक्त किया जाता है क्योंकि चार वर्ष पहले उसे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सत्याग्रह के सम्बन्ध में दोषी सिद्ध किया गया था। उसने जिला कांग्रेस समिति के अध्यक्ष से एक प्रमाण पत्र दिया कि उसका किसी संगठन से कोई सम्बन्ध नहीं है और उसकी परिस्थितियां ऐसी हैं कि वह सम्भवतः किसी राजनीतिक कार्य में हिस्सा नहीं ले सकता।

फिर भी वह परिवार पूरी तरह असहाय है। आप इस प्रकार लोगों के पीछे पड़े हुए हैं क्योंकि उनकी विचारधारा ऐसी है जो वर्तमान सरकार को स्वीकार्य नहीं अथवा उसे भाती नहीं है। यह नहीं चलेगा। इससे आपके दिमाग में जो उद्देश्य हैं, वह पूरा नहीं होगा। यदि आप कोई पूछताछ करना चाहते हैं। आप अधिकरण बनाइये जिसके समक्ष समस्त साक्ष्य प्रस्तुत किया जाये और व्यक्ति को अपनी बात कहने का अवसर दिया जाये। प्रत्येक नागरिक का यह सामान्य मौलिक अधिकार है। यदि आप उससे उसकी नौकरी छीनना चाहते हैं तो उसे आरोप पत्र जारी करें। चाहे जांच गोपनीय हो फिर भी उसे बताया जाना चाहिए कि किन लोगों ने उस पर आरोप लगाए हैं और उसे उनकी परीक्षा करने का अवसर दिया जाना चाहिए। यदि वह दोषी सिद्ध हो जाता है, तो आप जैसा भी चाहें उसके साथ व्यवहार कर सकते हैं।

मेरा कहना यह है कि सरकार को चाहिये कि वह हर प्रकार की विध्वंसकारी गतिविधियों जो वास्तव में विध्वंसकारी हों, से निपटने के लिए स्पष्ट और निश्चित नियम बनाये और इस प्रकार की छद्म विध्वंसकारी गतिविधियां न हों, अपितु ऐसी हों जिन्हें सिद्ध किया जा सके और जिसमें किसी सरकारी कर्मचारी को लिप्त किया जा सके। यदि वे सरकारी कर्मचारी होने के नाते अपनी स्थिति का दुरूपयोग करते हैं तो निसन्देह उनके विरूद्ध कार्यवाही की जानी चाहिए। यदि वे सरकार की नीतियों को निष्ठापूर्वक क्रियान्वित नहीं कर रहे हैं तो उनके विरूद्ध कार्यवाही अवश्य की जानी चाहिए किन्तु उसकी एक प्रक्रिया होनी चाहिये, एक अधिकरण होना चाहिए जिसके समक्ष मामले रखे जा सकें और लोगों को अपनी बात कहने का मौका मिल सके। इस दृष्टिकोण से मैं गृह मंत्री और रेल मंत्री से अनुरोध करता हूं कि इन सभी 400 मामलों की पुनः जांच की जाये। इसके लिए उच्च न्यायालय का एक न्यायधीश नियुक्त किया जाना चाहिये जो इन सभी मामलों की जांच करे। उसके समक्ष समस्त साक्ष्य प्रस्तुत किया जाना चाहिए और यह पता लगाया जाना चाहिये कि क्या वे वस्तुतः विध्वंसकारी गतिविधियों के दोषी हैं। उन्हें केवल इसलिये दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए कि वे किसी संगठन विशेष से सम्बद्ध हैं। यह एसोप की कथाओं में एक कहानी की भांति है। जब भेड़िये ने मेमने को खाना चाहा तो उसने कहा यदि पानी तुमने गंदा नहीं किया तो जरूर तुम्हारे दादा ने किया होगा। यह बात तुम्हें मार कर खा जाने के लिये काफी है।" अधिकारी देश के प्रशासन का केन्द्र हैं और आपको देश भर में कार्यरत ऐसे हजारों कर्मचारियों की निष्ठा पर भरोसा करना चाहिये। उन्हें कार्यालयों से केवल इसलिये नहीं निकाल देना चाहिये कि उनकी कोई अलग राजनीतिक विचारधारा है अथवा वे कार्मिक संघ का ऐसा कार्य कर रहे हैं जो उचित है परन्तु

सत्तारूढ़ दल को पसन्द नहीं है। जरा सोचिये, वर्तमान स्थिति में परिवर्तन हो सकता है। आपको विपक्ष में बैठना पड़ सकता है। आप ऐसी परम्पराएं स्थापित कर रहे हैं जो यदि हमें मौका मिला तो आप सबको हटाने के लिए पर्याप्त होंगी। किन्तु हम आपके पदचिन्हों पर नहीं चलेंगे, हम सच्चे लोकतांत्रिकों की तरह व्यवहार करेंगे। किन्तु आप ऐसा रास्ता अपना रहे हैं जो उचित नहीं है....

मैं सरकार से यह अपील करता हूं कि इन सभी मामलों के संबंध में सभी राजनीतिक दलों के बीच कोई आधारभूत सहमति होनी चाहिये जिसके आधार पर देश में एक कुशल एवं भ्रष्टाचार विहीन प्रशासन चलाया जा सके। हमें असैनिक सेवाओं को दलगत राजनीति से परे रखने के लिए प्रयास करना चाहिये। हमें इकट्ठे बैठ कर ऐसे उपाय ढूंढने चाहिये जिनका हमें इस सदन में और इसके बाहर समर्थन करना चाहिये। तभी हम सच्चा लोकतंत्र स्थापित कर सकेंगे।

17

उद्योग तथा आपूर्ति मंत्री के रूप में डा॰ श्यामा प्रसाद मुखर्जी द्वारा अपना त्यागपत्र देने पर उनके द्वारा दिया गया वक्तव्य

संसदीय परम्परा के अनुरूप मंत्रि-मंडल से जिन कारणों की वजह से मैंने त्यागपत्र दिया है उनका स्पष्टीकरण करने के लिए मैं वक्तव्य देता हूं। सदन को मैं आवश्वासन देना चाहता हूं कि मैंने यह कदम अचानक नहीं उठाया है, बल्कि जानबूझकर और गम्भीर विचार के बाद उठाया है। मेरे लिए यह काफी खेद का विषय है कि मैं अपने निर्णय पर पुनर्विचार नहीं कर पा रहा हूं, यद्यपि अनेक व्यक्तियों ने, जिनके लिए मेरे मन में अत्यधिक व्यक्तिगत सम्मान की भावना है, मुझसे पुनर्विचार करने के लिए दबाव डाला है। ढ़ाई वर्ष से अधिक समय तक स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रीय मंत्रिमंडल में एक मंत्री के रूप में कार्य करना मेरे लिए गौरव की बात है और जो जिम्मेदारियां मुझे सौंपी गई हैं, उन्हें निभाने में मैंने कोई कोर कसर नहीं छोड़ी है। मेरे लिए यह अनुभव अत्यधिक महत्वपूर्ण है और अपने देश के इतिहास के सबसे अधिक संकटपूर्ण समय के दौरान सहयोग और मित्रता के वातावरण में कार्य करने का मुझे अवसर मिला है। सदन के सभी वर्गों के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करना चाहता हूं कि उन्होंने मुझमें विश्वास व्यक्त किया और पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा सरदार बल्लभ भाई पटेल की प्रति मैं विशेष रूप से आभार व्यक्त करना चाहता हूं कि उन्होंने अपने नेतृत्व में मुझे देश की सेवा करने का अवसर प्रदान किया। किन्हीं व्यक्तिगत कारणों से मैं त्यागपत्र नहीं दे रहा हूं और मुझे पूरा विश्वास है कि जिन व्यक्तियों के साथ मैंने असहमति व्यक्त की है वे मेरे विचारों की गम्भीरता को उसी प्रकार से समझेंगे जिस प्रकार से बिना किसी हिचक के मैंने उनके विचारों को समझा है। मेरे मतभेद मूलभूत हैं और मेरे लिए यह उचित अथवा सम्मानजनक नहीं होगा कि मैं एक ऐसी सरकार का सदस्य बना रहूं जिसकी नीति के साथ में सहमत नहीं हूं। प्रधानमंत्री के प्रति यह उचित होगा कि मैं यह बताऊं कि जब मैंने

पहली अप्रैल को अपने निर्णय की सूचना उन्हें दी जबकि पाकिस्तान के प्रधानमंत्री भारत नहीं आये थे, तो उन्होंने तत्काल मेरे दृष्टिकोण को समझा, मतभेद स्वीकार किये और मुझे अपने पद से मुक्त करने के लिए सहमत हो गये। बाद में त्यागपत्र वापस लेना न तो मेरे लिए ही ठीक होगा और न ही प्रधानमंत्री के प्रति यह न्यायसंगत होगा।

पाकिस्तान के प्रति हमारा जो दृष्टिकोण रहा है, उसके बारे में मैं कभी भी खुश नहीं रहा हूं। हमारा दृष्टिकोण कमजोर, द्विविधापूर्ण और असंगत रहा है। हमारी सज्जनता अथवा निष्क्रियता को पाकिस्तान में कमजोरी समझा जाता है। इससे पाकिस्तान अधिक से अधिक दुराग्रही होता जा रहा है और इस दृष्टिकोण से हमारे देश को और अधिक नुकसान उठाना पड़ रहा है तथा हमारे देश की जनता के बीच देश की प्रतिष्ठा कम हुई है। प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसर पर हमने प्रतिरक्षात्मक रुख अपनाया है और हम पाकिस्तान की चालों का भंडाफोड़ करने अथवा उनका मुकाबला करने में असफल रहे हैं। परन्तु मैं आज भारत-पाकिस्तान के सामान्य संबन्धों के बारे में चर्चा नहीं कर रहा हूं, क्योंकि जिन कारणों की वजह से मुझे त्यागपत्र देने के लिए बाध्य होना पड़ा है, वे मूल रूप से पाकिस्तान में, और विशेष रूप से पूर्वी बंगाल में अल्पसंख्यकों के साथ व्यवहार से संबंधित हैं। मैं तत्काल ही इस बात को कहना चाहता हूं कि बंगाल की समस्या एक प्रान्तीय समस्या नहीं है। यह अखिल भारतीय मुद्दों से सम्बन्धित है और इसका सही रूप में समाधान करने से ही सारे देश में शांति और आर्थिक तथा राजनैतिक सम्वृद्धि निर्भर करेगी। भारत और पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों की समस्या के प्रति दृष्टिकोण में एक महत्वपूर्ण अन्तर है। भारत के अधिकांश मुस्लिम साम्प्रदायिक आधार पर देश का विभाजन चाहते थे, यद्यपि मुझे यह स्वीकार करने में प्रसन्नता है कि देशभक्त मुस्लिमों का एक छोटा सा वर्ग ऐसा भी है जिसने निरन्तर राष्ट्रीय हितों का समर्थन किया है और उसके लिए कष्ट भोगा है। दूसरी ओर प्रत्येक हिन्दु ने निश्चित रूप से देश के विभाजन का विरोध किया है। जब भारत का विभाजन अपरिहार्य हो गया, तो मैंने बंगाल का विभाजन करने के समर्थन में जनमत बनाने के लिए एक बहुत बड़ी भूमिका निभाई, क्योंकि मैं यह महसूस करता था कि यदि ऐसा नहीं किया गया, तो सम्पूर्ण बंगाल और संभवतः असम भी पाकिस्तान में चला जाएगा। उस समय मुझे यह नहीं मालूम था कि मैं पहले केन्द्रीय मंत्रिमंडल में शामिल होऊंगा, मैंने अन्य व्यक्तियों के साथ-साथ पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं को यह कहकर आश्वासन दिये थे कि यदि उन्हें भविष्य की पाकिस्तान की सरकार द्वारा कष्ट पहुंचाये गये, यदि उन्हें नागरिकता के मूलभूत अधिकारों से वंचित किया गया और यदि उनके जीवन और सम्मान पर हमला किया गया, तो स्वतंत्र भारत एक मूक दर्शक नहीं बना रहेगा और भारत की सरकार तथा जनता साहसपूर्वक उनकी उचित मांगों के लिए कार्यवाही करेगी। पिछले ढाई वर्ष के दौरान वहां के हिन्दुओं को काफी अधिक कष्ट

उठाने पड़े हैं। आज मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि मेरे द्वारा सभी प्रकार के प्रयास किये जाने के बावजुद मैं अपने वचन को निभाने में सफल नहीं रहा हूं और अन्य कोई कारण न भी हो तो केवल इसी आधार पर मुझे आगे सरकार में रहने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है। पूर्व बंगाल में अभी पिछले दिनों जो घटनायें हुई हैं, उनसे पिछले कष्टों और अपमान की याद धूमिल पड़ जाती है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पूर्वी बंगाल के हिन्दु भारत की सुरक्षा पाने के न केवल मानवीय कारणों से ही हकदार हैं, बल्कि अनेक पीढ़ियों से उन्होंने भारत की राजनैतिक स्वाधीनता और बौद्धिक सम्वृद्धि की आधारशिला रखने के लिए क्षेत्रीय हितों की परवाह किये बिना जो कष्ट उठाये हैं और त्याग किये हैं, उसे ध्यान में रखते हुए भी सुरक्षा पाने के हकदार हैं। नेताओं ने जो संगठित होकर एक आवाज दी थी और वह नव युवक जिसने भारत के लिए हंसते-हंसते फांसी के फन्दे को चूमा था, उसे ध्यान में रखते हुए आज के स्वतंत्र भारत को न्याय सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।

अभी हाल में जो समझौता किया गया है, मेरे विचार से उससे मूलभूत समस्या का कोई समाधान नहीं होता। जो बुराई है वह काफी गम्भीर है और किस्तों में समाधान करने से शान्ति सुनिश्चित नहीं की जा सकती है। एक समजातीय इस्लाम राज्य की स्थापना पाकिस्तान का सिद्धान्त है और सुनियोजित तरीके से हिन्दुओं तथा सिखों का देश से निष्कासन और इनकी सम्पतियों को जब्त करना पाकिस्तान की एक सुनिश्चित नीति है। इस नीति के परिणामस्वरूप पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों का जीवन "पाशवि, घृणित और अल्पकालिक" हो गया है। हमें इतिहास की सीख को नहीं भूलना चाहिए। यदि हम ऐसा करते हैं, तो हमें संकट का सामना करना पड़ेगा। मैं बीते हुए समय की बात नहीं कर रहा हूं, परन्तु यदि कोई व्यक्ति पाकिस्तान बनने के बाद से वहां के घटना क्रम का विश्लेषण करे, तो यह पता चलेगा कि पाकिस्तान के अन्दर हिन्दुओं के लिए कोई सम्मानजनक स्थान नहीं है। यह समस्या साम्प्रदायिक नहीं है, बल्कि यह राजनीतिक समस्या है। यह अफसोस की बात है कि समझौते में इस्लामिक राज्य के परिणामों की उपेक्षा करने का प्रयास किया गया है। परन्तु यदि कोई व्यक्ति पाकिस्तान की संविधान सभा द्वारा पारित उद्देश्य संकल्प और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री के भाषण का सावधानीपूर्वक अध्ययन करे, तो उसे यह पता चलेगा कि जहां एक ओर अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा की बात की गई है, वहीं संकल्प में एक अन्य स्थान पर स्पष्ट रूप से यह घोषणा की गई है कि "लोकतंत्र, स्वाधीनता, समानता, सहनशीलता, और विशेष न्याय के सिद्धान्तों का इस्लाम के अनुसार पूरी तरह से पालन किया जायेगा।" पाकिस्तान के प्रधानमंत्री ने संकल्प को पेश करते हुए यह कहा हैः—

"आप यह भी देखेंगे कि राज्य को एक मौन दर्शक की भूमिका नहीं निभानी है,

जिसके अन्तर्गत मुस्लिमों को अपने धर्म का प्रचार और पालन क़रने के लिए स्वतंत्रता हो, क्योंकि ऐसा दृष्टिकोण अपनाने से राज्य उन आदर्शों की अवहेलना करेगा जिनके अनुसार पाकिस्तान की मांग की गई थी और यही वे आदर्श हैं जो सरकार के लिए मार्गदर्शक होंगे। राज्य ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करेगा जो सच्चे अर्थों में इस्लामिक समाज का निर्माण करने के लिए सहायक होंगी जिसका अर्थ यह है कि राज्य इस प्रयास में एक सार्थक भूमिका निभायेगा। आपको यह स्मरण होगा कि कायदे आजम और मुस्लिम लीग के अन्य नेताओं ने सदैव स्पष्ट शब्दों में इस आशय की घोषणाएं कीं कि पाकिस्तान के लिए मुस्लिमों की मांग इस तथ्य पर आधारित थी कि मुस्लिमों की एक अपनी पृथक जीवन शैली और आचार संहिता है। वस्तुतः, इस्लाम ने सामाजिक व्यवहार के लिए कुछ निश्चित निर्देश निर्धारित किये हैं और इस्लाम दिन-प्रतिदिन की समस्याओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण के बारे में मार्गदर्शन देने का प्रयास करता है। इस्लाम निजी विश्वासों और आचरण का विषय नहीं है।''

मैं गम्भीरता पूर्वक यह प्रश्न पूछना चाहता हूं कि क्या ऐसे समाज में कोई भी हिन्दु अपने सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक अधिकारों के साथ सुरक्षा की भावना के साथ रह सकता है?

कुछ सप्ताह पहले हमारे प्रधान मंत्री ने इस सदन में भारत और पाकिस्तान के बीच बुनियादी अन्तरों को स्पष्ट किया था और मैं यहां उन्हें फिर उद्धृत करना चाहता हूं:

''पाकिस्तान के लोग भी पूर्णतः उसी प्रकार के हैं जिस प्रकार के हम लोग हैं तथा उनकी खूबियां और कमियां भी वहीं हैं जो हमारी हैं। परन्तु मूल कठिनाई इस कारण है कि पाकिस्तान की सरकार धार्मिक और साम्प्रदायिक नीति का पालन करती है और ऐसा करके वह अल्पसंख्यकों में पूर्ण नागरिकता के न होने तथा लगातार असुरक्षा की भावना बनाये रखती है।''

पाकिस्तान जिस विचारधारा की प्रचार कर रहा है केवल वही एक ऐसी बात नहीं है जिससे परेशानी पैदा हो रही है। पाकिस्तान अपनी उसी विचारधारा के अनुसार कार्य कर रहा है तथा अल्पसंख्यकों को इस्लामिक राज्य के वास्तविक स्वरूप और कार्य-कलापों से भिन्न परिस्थितियों का अनेक बार कटु अनुभव हुआ है। यह समझौता इस मूल समस्या को हल करने में सर्वथा विफल रहा है।

जनता की याददाश्त बहुत कमजोर होती है। बहुत से क्षेत्रों में ऐसी भावना है कि यह समझौता अल्पसंख्यकों की समस्या को हल करने के लिए एक पहला बड़ा प्रयत्न है। मैं फिलहाल पंजाब में जो विनाश लीला हुई है उसका जिक्र नहीं करता हूं। सभी प्रकार के आश्वासनों और वायदों के बावजूद वहां प्रशासन पूर्णतः समाप्त हो गया तथा समस्या को

बड़े बर्बर तरीके से हल किया गया। उसके बाद उत्तर पश्चिम सीमावर्ती प्रान्त तथा बलूचिस्तान से धीरे धीरे हिन्दुओं का भागना शुरू हुआ तथा बाद में सिन्ध से भी हिन्दुओं का बाहर जाना शुरू हो गया। पूर्वी बंगाल में एक करोड़ 30 लाख हिन्दू अभी भी रह रहे हैं और उनके भविष्य का मामला भारत में हम सब के लिए बड़ी चिंता का विषय है। अगस्त, 1947 और मार्च, 1948 के बीच 5 लाख हिन्दू पूर्वी बंगाल से खदेड़ दिये गये। वहां कहने को कोई बड़ी घटना नहीं हुई, परन्तु परिस्थितियां इस तरह की बना दी गयी कि उन लोगों को पाकिस्तान सरकार से कोई संरक्षण प्राप्त नहीं हुआ तथा उन्हें सिर छुपाने के लिए मजबूरन पश्चिम बंगाल आना पड़ा। इस समय में भारत की ओर से किसी प्रकार की कोई उकसाने वाली कार्यवाही नहीं की गयी। ऐसी भी कोई बात नहीं हुई कि मुसलमानों को भारत से पाकिस्तान जाने के लिए जोर डाला गया हो। अप्रैल, 1948 में कलकत्ता में भारत और पाकिस्तान की सरकारों के बीच पहला समझौता हुआ। इसमें विशेष रूप से बंगाल की समस्या को महत्व दिया गया। यदि कोई उस समझौते से हाल ही में हुए इस समझौते के प्रावधानों की तुलना करे तो उसे लगेगा कि दोनों के आवश्यक मुद्दे एक जैसे ही थे। इस समझौते से कोई कारगर परिणाम नहीं निकले। भारत ने सामान्यतया समझौते की सभी बातों का पालन किया, परन्तु पूर्वी बंगाल से लोगों का आना लगातार होता रहा। लोगों का यह आना एक ओर से ही हुआ और पाकिस्तान ऐसा ही चाहता था। इस बात को लेकर पत्राचार हुआ, अधिकारियों और मुख्य मंत्रियों की बैठकें हुईं, दोनों देशों के मंत्रियों के बीच विचार विमर्श हुआ, परन्तु वास्तविक परिणाम को देखने से लगता है कि पाकिस्तान के रवैये में कोई परिवर्तन नहीं आया। भारत और पाकिस्तान के बीच दूसरा सम्मेलन नई दिल्ली में दिसम्बर, 1948 में हुआ और एक नये समझौते पर हस्ताक्षर किये गये। इस समझौते में भी उसी समस्या, विशेष रूप से बंगाल के अल्पसंख्यकों के अधिकार, को प्रधानता दी गयी। एक तरह से यह पहले समझौते की पुनरावृत्ति ही थी। 1949 में हमने देखा कि पूर्वी बंगाल में स्थिति और खराब हो गयी तथा बड़ी संख्या में असहाय लोग वहां से भागने लगे। उन्हें अपने घरों से उखाड़ दिया गया और एक बहुत ही दयनीय अवस्था में भारत में फेंक दिया गया। तथ्य तो यह है कि दो समझौतों के बावजूद सोलह से बीस लाख हिन्दू पूर्वी बंगाल से भारत भेज दिये गये। सिन्ध से उखाड़े गये लगभग 10 लाख हिन्दू भी भारत आये। इस अवधि में आर्थिक कारणों से बड़ी संख्या में मुसलमान भी पाकिस्तान से भारत आये। पश्चिम बंगाल की आर्थिक स्थिति को बहुत पड़ा धक्का लगा और हम इस सब के मूकदर्शक बने रहे।

आज एक आम धारणा है कि भारत और पाकिस्तान दोनों ही अपने अल्पसंख्यकों की रक्षा करने में असफल रहे। जब कि तथ्य इससे सर्वथा विपरीत है। इस प्रकार का भ्रामक प्रचार कुछ विदेशी समाचारों पत्रों ने भी किया है। यह भारत के साथ धोखा है तथा उन

सब लोगों को सत्य का दर्शन कराया जाना चाहिये जो इसे जानना चाहते हैं। केन्द्र में और प्रान्तों या राज्यों दोनों में भारत सरकार ने सामान्यतः शान्ति और सुरक्षा की भावना बनाये रखी है। ऐसा उसने पंजाब और दिल्ली में हुई गड़बड़ियों के समाप्त होने तक पाकिस्तान द्वारा लगातार उकसाये जाने के बावजूद किया। पाकिस्तान यह उकसाने वाली कार्यवाही सिन्ध और पूर्वी बंगाल में जहां अल्पसंख्यक शान्ति और सम्मान के साथ रह सकते थे, अनुकूल परिस्थितियां बनाने में असफल रहने के कारण की। इस बात को नहीं भूलना चाहिये कि पूर्वी बंगाल अथवा सिन्ध से जो लोग आए उन्होंने किसी काल्पनिक भय के कारण भारत आने का निर्णय लिया। ये वो लोग थे जो पाकिस्तान में रहने को इच्छुक थे यदि उन्हें सम्मान के साथ शान्तिपूर्वक रहने का मौका दिया जाता।

1949 के अन्त में पूर्वी बंगाल में नयी हिंसक घटनायें होनी शुरू हो गयीं। वहां खबरों के बाहर आने पर लगे कड़े प्रतिबन्ध के कारण भारत में पहले ये खबरें नहीं आ पाई। जब 15 हजार शरणार्थी जनवरी, 1950 में पश्चिम बंगाल आये तब बर्बर अत्याचारों की कहानियां सामने आयीं। इस बार आक्रमण का शिकार शहर के मध्यम वर्ग के लोग तथा ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ विशेष लोग रहे, ताकि उनके मन में भय का वातावरण पैदा किया जा सके। यही पाकिस्तान की नीति थी। इन हृदयविदारक समाचारों के परिणामस्वरूप पश्चिम बंगाल के कुछ भागों में कुछ मामूली सी घटनायें हुईं। यद्यपि इन पर शीघ्र ही कारगर ढंग से काबू पा लिया गया परन्तु इनके समाचार बढ़ा चढ़ाकर पूर्वी बंगाल के बहुत से भागों में फैलाये गये। यह सब सरकार की शह पर हुआ और उसके पीछे एक बुरी नीयत के काम लिया गया। अगले दो तीन सप्ताह के दौरान इस प्रकार की घटनायें हुईं जिन्हें कोई भी सभ्य सरकार सहन नहीं करेगी। पश्चिम बंगाल के अनेक भागों में एक साथ ऐसी वारदातें हुईं जिनमें न केवल जन धन की हानि हुई वरन असहाय लोगों का बल पूर्वक धर्मपरिवर्तन किया गया, महिलाओं का अपहरण किया गया और उनके साथ बर्बर तरीके से बलात्कार किया गया। इस समय हमें जो समाचार प्राप्त हुए हैं उनसे यह पता चलता है कि यह सब इक्का दुक्का घटनायें नहीं हैं। यह पूर्वी बंगाल से अल्पसंख्यकों को बाहर भगाने के लिए जान बूझकर तैयार की गयी एक योजना का अंग है। इस दौरान भारत में और विदेशों में हमारा प्रचार बहुत ही निष्प्रभावी रहा। ऐसा एक प्रकार से इस कारण किया गया कि भारत में भी इसकी प्रतिक्रिया को रोका जा सके। परन्तु पाकिस्तान ने इसके सर्वथा विपरीत तरीका अपनाया। इसका परिणाम यह हुआ कि हमें आक्रामक बना दिया गया जब कि सत्य इसके सर्वथा विपरीत था। इन नाजुक सप्ताहों में यद्यपि कुछ लोग भावना और द्वेष के कारण बड़े उत्तेजित थे। भारत की जनसंख्या का एक बड़ा भाग इन सब मामलों को सरकार के हाथ में छोड़ने को तैयार था और उससे यह आशा करता था कि वह पाकिस्तान में हो रही इन बर्बरताओं पर रोक लगाये। संकट की उस

घड़ी में हम समय के अनुकूल कार्यवाही करने में असफल रहे। ऐसे अवसर पर जहां दिन नहीं बल्कि कुछ घंटों का भी बड़ा महत्व होता है, हमने सही कार्यवाही करने का चुनाव करने में हफ्तों लगा दिये। सारा देश दुख के महासागर से गुजर रहा था तथा चाहता था कि इस संबध में तुरंत कोई दृढ़ कार्यवाही की जाये परन्तु हमने अनिर्णय की नीति का पालन किया। इसका परिणाम यह हुआ कि पश्चिम बंगाल और भारत के कुछ अन्य भागों में लोग बैचेन हो उठे और उन्होंने कानून को अपने हाथ में ले लिया। मैं बिना किसी हिचक के यह कहता हूं कि पाकिस्तान में किये गये अत्याचार के लिए भारत में निर्दोष लोगों पर अत्याचार करने से समस्या का कोई हल निकलने वाला नहीं है। इससे एक दुष्चक्र बनता है और बर्बरता का एक ऐसा साम्राज्य स्थापित होता है जिसको बाद में रोकना कठिन होगा। हमें एक सभ्य राष्ट्र के रूप में कार्य करना चाहिये तथा उन सभी नागरिकों को जो राज्य के प्रति वफादार हैं, समान अधिकार और सुरक्षा मिलनी चाहिये। भले ही वह किसी भी धर्म में विश्वास रखते हों। ऐसे राष्ट्रीय संकट के अवसर पर एकमात्र समाधान, जिसे देश की सरकार को करना चाहिये वह यह है कि सरकार को शीघ्र और दृढ़ इच्छा के साथ कार्यवाही करनी चाहिये। ऐसा करने पर कोई संदेह नहीं कि लोग सरकार का पूरा साथ देंगे। सरकार ने भारत भर में शान्ति और व्यवस्था कायम करने के लिए तुरंत कार्यवाही की। इस बीच मुसलमान, यद्यपि उनकी संख्या बहुत कम है, भारत से बाहर जाने शुरू हो गये हैं। इन मुसलमानों में से एक बड़ी संख्या उन मुसलमानों की है जो मूलतः पूर्वी बंगाल के हैं और पश्चिम बंगाल में केवल नौकरी या रोजगार के लिये आये थे। पाकिस्तान ने स्थिति की गम्भीरता को उस समय स्वीकार किया जब उसने देखा कि इस बार स्थिति पहले जैसी नहीं है। इस बार लोगों का आना एक तरफ से नहीं है। बल्कि दूसरी ओर से भी लोग आ रहे हैं। पिछली जनवरी से अब तक कम से कम दस लाख लोग पूर्वी बंगाल से पश्चिम बंगाल आ चुके हैं। कई लाख लोग त्रिपुरा और असम गये हैं। खबरों से पता चलता है कि हजारों लोग भारत की ओर आ रहे हैं। उनमें सभी वर्गों और स्तरों के लोग शामिल हैं।

आज का सबसे महत्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या अल्पसंख्यक पाकिस्तान में किसी तरह से सुरक्षा की भावना के साथ रह सकेंगे? किसी भी समझौते की परख इस बात से नहीं होगी कि उसके बारे में भारत के अन्दर अथवा विदेशों में क्या प्रतिक्रिया होती है, उसकी परख तो पाकिस्तान में रह रहे अभागे अल्पसंख्यकों अथवा उन लोगों की प्रतिक्रिया पर निर्भर करती है, जिनको भारत आने के लिये मजबूर किया गया है, जो मजबूर होकर भारत आ गये हैं। सवाल यह नहीं है कि पाकिस्तान के ऊंचे औहदों पर बैठे कुछ व्यक्ति इस बारे में क्या सोचते हैं अथवा क्या करना चाहते हैं। सवाल यह है कि आखिर सम्पूर्ण पाकिस्तान का ढांचा क्या है, सरकारी हलको, चाहे वे ऊंचे तबके के हों अथवा निचले तबकों के, की मानसिकता क्या है? वास्तव में वहां के लोगों के रवैये तथा "अंसार" जैसे संगठनों की गतिविधियों के कारण वहां हिन्दुओं का रहना दूभर हो

गया है। हो सकता है कुछ महीनों कोई बड़ी घटना न घटे और इस बीच अपने उदारवादी दृष्टिकोण के वशीभूत हो हम उनको आवश्यक वस्तुएं सप्लाई करते रहें और इस प्रकार उनकी ताकत और बढ़ती जाए। पाकिस्तान की तो यही कार्यपद्धति रही है। शायद अगला हमला वर्षा के मौसम में हो, जबकि संचार सार्धन एक प्रकार से ठप्प पड़ जाते हैं।

मैं इस समझौते में भागीदार बनने में असमर्थ हूं, जिसके मुख्य कारण हैः

एक—बंगाल समस्या को हल करने के लिए विभाजन के बाद से हम इस तरह के दो समझौते कर चुके हैं। पाकिस्तान ने उनका उल्लंघन किया और हमारे पास उसको रास्ते पर लाने का कोई साधन नहीं था। ऐसा कोई भी समझौता जिसका पालन अनिवार्य न हो, किसी भी प्रकार से समस्या का हल नहीं निकाल सकता।

दो—इस समस्या की जड़ पाकिसतान की इस्लामी राज्य की अवधारणा तथा उस पर आधारित अत्यंत सांप्रदायिक प्रशासन है। समझौते में इस महत्वपूर्ण चीज की उपेक्षा की गई है और नतीजा यह है कि हम आज भी उसी स्थिति में जिसमें हम समझौते से पूर्व थे।

तीसरे—भारत तथा पाकिस्तान को बराबर का दोषी माना जा रहा है, जबकि सच यह है पाकिस्तान आक्रमणकारी है। समझौते में यह व्यवस्था है कि इन दो देशों की प्रादेशिक अखण्डता के विरूद्ध किसी प्रकार के प्रचार की इज़ाज़त नहीं दी जायेगी और ऐसी कोई चीज़ नहीं की जायेगी जो दोनों में से किसी को युद्ध के लिए उकसाये। लेकिन कश्मीर के हमारे हिस्से के कुछ भाग पर पाकिस्तानी सेनाओं के काबिज़ रहते तथा पाकिस्तान के अधीन भाग में युद्ध की सक्रिय तैयारी चलते तो यह भी असंगत सी बात लगती है।

चौथे—घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि पाकिस्तान के सुरक्षा के आश्वासनों के आधार पर हिन्दू पूर्वी बंगाल में नहीं रह सकते। हमें इस बात को एक मूलभूत प्रस्ताव के रूप में स्वीकार करना चाहिए। लेकिन स्थिति यह है कि वर्तमान समझौते में अल्पसंख्यकों से कहा गया है कि उनकी सुरक्षा तथा सम्मान की रक्षा का भार पाकिस्तान सरकार पर है, जो जले पर नमक छिड़कने के बराबर है और हमारे द्वारा दिये गये पहले आश्वासनों के विपरीत है।

पांच—पीड़ित व्यक्तियों की प्रतिपूर्ति का कोई प्रस्ताव नहीं है, और न ही दोषी को कभी दण्ड दिया जा सकेगा, क्योंकि कोई भी व्यक्ति पाकिस्तान न्यायालय में गवाही देने का साहस नहीं कर सकेगा। ऐसा मैं अपने पिछले कटु अनुभव के आधार पर कह रहा हूं।

छः—हिन्दू लोग बड़ी संख्या में भारत आते रहेंगे और जो आ गये हैं, वे वापस जाने

को तैयार नहीं होंगे। दूसरी ओर जो मुसलमान पाकिस्तान चले गये हैं, वे अब लौट आयेंगे और समझौते पर अमल करने के हमारे निश्चय को देखते हुए वे भारत को नहीं छोड़ेंगे। इस प्रकार हमारी अर्थ-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जायेगी और देश के भीतर झगड़ों की संभावनाएं बढ़ेंगी।

सात—इस समझौते ने भारत में अल्पसंख्यकों को सुरक्षा प्रदान करने की आड़ में भारत में मुसलमान अल्पसंख्यकों की समस्या को फिर उभार दिया है और इस प्रकार इससे फूट डालने वाली वे शक्तियाँ फिर उभरकर सामने आयेंगी, जिन्होंने पाकिस्तान को जन्म दिया। यदि यह बात पूरी हो जाती है, तो इससे हमारे लिए नई समस्याएं पैदा होंगी, जो देखा जाए तो हमारे संविधान के ही विरूद्ध हैं।

मैं समझता हूं कि मेरे लिए वैकल्पिक कार्य-योजना पर चर्चा करने का न तो यह समय ही है—न ही अवसर। सपष्ट है कि यह उस समय तक नहीं की जा सकती जब तक कि सरकार द्वारा फिलहाल अपनाई गई नीति के परिणाम सामने नहीं आते जाते। मुझे उन लोगों के इरादों पर कोई शक नहीं है जिन्होंने समझौते को स्वीकार किया है। मैं तो यही चाहता हूं कि समझौता पर एक-तरफा अमल न हो। यदि यह समझौता सफल हो जाता है, तो मेरे लिए उससे ज्यादा खुशी की और क्या बात हो सकती है। यदि यह असफल रहता है तो वास्तव मैं यह एक बड़ा मंहगा और दुखद प्रयोग होगा। मैं उन लोगों से, जो समझौते में विश्वास रखते हैं, आदरपूर्वक यह आग्रह करना चाहूंगा कि वे पश्चिम बंगाल जाकर अपने दायित्व का निर्वहन करें। लेकिन वहां वे अकेले न जायें अपितु अपने परिवार अर्थात पत्नी, बहन तथा बेटियों को साथ लेकर जायें और पश्चिम बंगाल में अभागे हिन्दू अल्पसंख्यकों के साथ रहकर देखें। यह उनके विश्वास की वास्तविक परीक्षा होगी। यद्यपि इस समस्या, जिसका इतिहास में शायद कोई सादृश्य नहीं है, के हल के लिए सरकार द्वारा अपनाये गये दृष्टिकोण से मैं सहमत नहीं हूं, लेकिन मैं सभा को इस बात का विश्वास दिलाना चाहता हूं कि मैं इस बात से पूर्णरूप से सहमत हूं कि आज सबसे ज्यादा जरूरत भारत में शांति तथा सुरक्षा कायम करने की है। जहां एक ओर तुष्टीकरण की नीति के विनाशात्मक परिणामों की रोकथाम के लिए सही दिशा में तथा दृढ़ता और समय पर कार्य करने के लिए तथा दमन की नीति अपनाने से परहेज करने के लिए वर्तमान सरकार पर दबाव डाला जा सकता है तथा डाला जाना आवश्यक है, वहां दूसरी ओर देश में दुर्व्यवस्था तथा अनिश्चित्ता की स्थिति पैदा करने को कोई बढ़ावा नहीं दिया जाना चाहिए। यदि सरकार एक और मौका चाहती है, तो हमें साफतौर से यह समझ लेना चाहिए कि यह आखिरी मौका होगा और यह सरकार को अवश्य दिया जाना चाहिए। लेकिन सरकार नीति के आलोचकों की जुबान पर ताले लगाने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि समझौते में शामिल पक्षों में से एक पक्ष

ने सुनियोजित ढंग से अपने वायदों और वचनों को तोड़ा है। जब तक वह अपने कार्य से यह सिद्ध नहीं करता कि वह अपने वायदों तथा वचनों को निभायेगा, हमें उसके भावी वायदों पर कोई एतबार नहीं है। हमने जो यह चेतावनी दी है, उसका सरकार को स्वागत करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करके वह ज्यादा गंभीरता से तथा सतर्क होकर कार्य कर सकेगी। सरकार को भारत के वैध हितों की किसी भी प्रकार से बलि चढ़ने अथवा हानि से रक्षा करनी चाहिये।

जहां तक शरणार्थियों की समस्या का संबंध है, हमें उनके पुनर्वास के विशाल कार्य के बारे में भी सोचना होगा। पश्चिम बंगाल का वर्तमान प्रदेश, जो बहुत छोटा रह गया है, इसका भारी बोझ उठाने की स्थिति में नहीं है। यह एक कठिन कार्य है जहां सरकरी तथा गैर सरकारी, दोनों ही तत्व देश के हित के लिए कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर सकते हैं। इस प्रकार सरकार और उसके आलोचकों के बीच इस समस्या का, जिसका संबंध लाखों लोगों की खुशी तथा सम्पूर्ण देश की उन्नति से है, सामना करने के लिए सहयोग की हमेशा ही काफी गुंजाइश रहेगी।